ISSN 2277-5587
Indexed in ULRICH

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Volume-17 Issue - 4 October-December 2015 RNI No. RAJHIN/2011/40531

ज्ञानं भार: क्रियां विना

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 October-December 2015

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Deputy Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
BBD Govt. P.G. College, Chimanpura

Dr. Pankaj Gupta
Government P.G. College, **Kotputli**

Advisory Board

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Volume - 17 **Issue - 4** **October-December 2015**

1. ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याऐं एवं समाधान 1-4
डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह एवं ज्योति जोशी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

2. मेवाड़ का भौगोलिक परिवेश 5-8
डॉ. रुबी शर्मा, कोटा

3. मालवा शैली की लोककला में रंगों का उभरता स्वरुप 9-12
कंचन कुमारी, आगरा (उत्तर प्रदेश)

4. भारतीय लोकतंत्र में उत्तरदायित्व 13-16
डॉ. उमा बड़ोलिया, कोटा, डॉ. राजमल मालव, बून्दी

5. समकालीन परिदृश्य में गाँधी जी की प्रासंगिकता 17-20
डॉ. मुनेश कुमार पाठक, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

6. राजस्थानी साहित्य में संत जाम्भोजी : एक विवेचन 21-24
डॉ. सुमन यादव, जयपुर

7. श्रीमद् भागवद् गीता के त्रियोगों का मूलाधार : मनस्तत्त्व 25-27
प्रतिभा किरण, बून्दी

8. ग्रामीण विकास का सशक्त आधार : 73वां संवैधानिक संशोधन 28-32
डॉ. संतोष कुमार सिंह, रुद्रप्रयाग (उत्तराखण्ड)

9. दक्षिण एशिया में सार्क : चुनौतियाँ के आगे पस्त प्रगति 33-40
डॉ. प्रेमलता परसोया, कोटा

10. राज्यपाल की संवैधानिक प्रमुख के रुप में भूमिका 41-44
सरोज महला, जोधपुर

11. दण्ड विषयक धर्मशास्त्रीय अवधारणा 45-51
डॉ. हरकेश बैरवा, बून्दी

12. आचार्य उग्रादित्य का परिचय, समय व रचनाएँ 52-55
डॉ. मनीत शर्मा, जयपुर

13. शिक्षा और मनोसामाजिक सशक्तिकरण से ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार 56-57
मोनिका यादव, जयपुर

14. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में राजनीतिक सन्दर्भ 58-60
कविता मीणा, कोटा

15. **सामाजिक न्याय की अवधारणा का विकास तथा भारतीय संविधान** 61-68
विश्वनाथ प्रताप सिंह, जोधपुर

16. **ऊर्जा संरक्षण राज्य की प्रथम आवश्यकता** 69-73
डॉ. (श्रीमती) वसुधा अग्रवाल, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

17. **शेखावाटी के भित्तिचित्र : मुगल एवं ब्रिटिश काल में उनका विकास** 74-77
डॉ. चार्वी महला, नई दिल्ली

18. **गांधीवाद और स्वदेशी का समकालीन परिदृश्य : ग्रामीण विकास के संदर्भ में** 78-84
दीपक सिंह, जोधपुर

19. **भारत-चीन : बनते बिगड़ते रिश्ते** 85-87
अनिल कुमार शर्मा, जयपुर

20. **मदनमोहन मालवीय की शैक्षिक विचारधारा** 88-90
दिनेश कुमार गुप्ता एवं डॉ. साजिदा सादिक, जयपुर

21. **सूचना के अधिकार अधिनियम-2005 के अन्तर्गत लोक सूचनाधिकारियों के कर्त्तव्य एवं बाध्यताएँ** 91-93
रोमा यादव, जयपुर

22. **The Element of Pathos in Chekhov's Vanka and Tagore's The Home - Coming** 94-98
Dr. Jagriti Upadhyaya, Jodhpur

23. **Supremacy of Rule of Law and Democracy** 99-102
Prashant Chauhan, Muzaffarnagar (Uttar Pradesh)

24. **Working Capital Management of Small Scale Industries: With Special Reference to Ajmer District** 103-108
Vijay Kumar, Ajmer

25. **The Ricochet of Human Resource Development in Indian Banking Sector** 109-116
Hem Prabha Purohit, Jodhpur

26. **Nitrate Contamination In The Ground Water of Hindoli Block, Bundi District, Rajasthan, India** 117-119
Dr. Vandana Ankodia, Bundi

27. **Desining - A Lucrative Career** 120-123
Dr. Sabra Qureshi, Jodhpur

28. **Social Security Through Micro Insurance: Need of The Hour** 124-128
Devika Agarwal, Jaipur

29. **Employability through Handicraft Mega Cluster** 129-135
Bhawna Sharma, Jodhpur

ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याऐं एवं समाधान

डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, एम. बी. जी. पी. जी कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, (उत्तराखण्ड)
ज्योति जोशी
शोध छात्रा, एम. बी. जी. पी. जी कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शिक्षा मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य होने के साथ-साथ वांछनीय लक्ष्यों की पूर्ति का एक उपयोगी साधन भी है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व व बुद्धि का विकास कर उसे आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक कार्यो को सम्पन्न कराने के योग्य बनाती है। शिक्षा को एक ऐसे उपकरण के रुप में भी मान्यता दी गयी है, जिसकी सहायता से समाज में परिवर्तन व विकास के अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इसे समाज एवं राष्ट्र के लिये संजीवनी माना गया है।

मानवीय संसाधनों के पूर्ण विकास, परिवार में सुधार, बच्चों के चरित्र निर्माण, देश के उत्थान आदि के लिये बालिकाओं की शिक्षा बालको से भी अधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु भारत के लिये यह दुर्भाग्य का विषय है कि आज तक भी महिलाओं की शिक्षा का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। ग्रामीण क्षेत्रों तथा पर्वतीय क्षेत्रों में बालिकाओं की शैक्षिक दशा अभी भी शोचनीय है, जिसका कारण ग्रामीण समाज में व्याप्त अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियाँ, रुढ़िवादिता, पर्याप्त सुविधओं का अभाव एवं निर्धनता है। गैरोला ने अपने अध्ययन में पाया है कि उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा के क्षेत्र में काफी पिछड़ापन एवं विषमता विद्यमान है। उत्तराखण्ड की महिलाऐं ही इस पर्वतीय क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है परन्तु उनके सामाजिक-आर्थिक दायित्व इतने अधिक है कि उनका समुचित शैक्षिक विकास नहीं हो पाया है। आज भी उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक महिलाऐं बुनियादी शिक्षा से वंचित है।''[1]

यद्यपि सरकार ने इस दिशा में सुधार के लिये सकारात्मक कदम उठाया है, लेकिन अभी और प्रयास की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के बाद से आज तक के हमारे शैक्षिक प्रयासों के बावजूद हमारे ग्रामों की दशा में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आया है। हम किसी गॉव का शिक्षा पटल देखें तो उसमें बालिकाओं की शैक्षिक दशा में कोई प्रगति नहीं दिखाई देती। यह उपेक्षित शिक्षा पटल वास्तव में घोर चिन्ता का विषय है जहॉं हर जगह महिलायें पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है वहीं स्त्री शिक्षा की आवश्यकता एवं सामाजिक विकास में शिक्षित महिलाओं का योगदान एक सामाजिक मुद्दा बन गया है।

महात्मा गांधी कहते है कि शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करना है। जी.एच. थामसन के अनुसार-शिक्षा एक विशेष प्रकार का वातावरण है जिसका प्रभाव बालक के चिन्तन दृष्टिकोण तथा व्यवहार करने की आदतों पर स्थायी रुप से परिवर्तन के लिए डाला जाता है।

डॉ. अनंत सदाशिव अल्टेकर ने शिक्षा के सदर्भ में लिखा है कि- प्राचीन भारत में शिक्षा अंतर्ज्योति और शक्ति का स्रोत मानी जाती थी जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के संतुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन करती तथा उसे श्रेष्ठ बनाती है। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम समाज में एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रुप में रह सके। यह अप्रत्यक्ष रुप में हमें इहलोक और

परलोक दोनों में आत्मिक विकास में सहायता देती है।''[4] शिक्षा चेतना का संवर्धन करती है। इसके द्वारा प्राप्त प्रकाश से हमारे संशयों का उन्मूलन एवं कठिनाईयों का निवारण होता है। वस्तुत: शिक्षा कल्पवृक्ष की तरह मनुष्य की आशा-आकांक्षाओं को पूर्ण करने की शक्ति रखती है। मनुष्य की निरन्तर प्रगति का कारण यह शिक्षा ही है। इसलिए इसे मानव उन्नति की कुंजी कहा जा सकता है।''[5]

बालिकाओं की शिक्षा का अर्थ है पूरे परिवार की शिक्षा, समाज और राष्ट्र की शिक्षा। परिवार व समाज के लिये प्रथम शिक्षिका के रुप में एक सुशिक्षित स्त्री नैतिकतावादी तथ्यों को उचित रुप से परिवार व समाज में स्थापित कर सकती है। गोस्वामी के अनुसार समाज में आज शिक्षित स्त्री किसी भी कार्य क्षेत्र में पुरुष से पीछे नहीं है। चिकित्सा, शिक्षण और परिचर्चा के क्षेत्र में स्त्री पुरुष से अधिक कुशल सिद्ध हुई है।''[2]

महिलाओं की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकता को देखते हुये संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 1991 को बालिका वर्ष के रुप में मनाया गया, परन्तु भारत के लिये यह दुर्भाग्य का विषय है कि आज तक भी महिलाओं की शिक्षा का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में कुल 102.87 करोड़ लोगो में जहाँ सम्पूर्ण साक्षरता का प्रतिशत 64.84 था वहीं बालिकाओं के लिये यह साक्षरता मात्र 53.7 प्रतिशत थी, जबकि वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार एक अरब से भी अधिक जनसंख्या में 74.04 प्रतिशत सम्पूर्ण साक्षरता के अर्न्तगत महिलाओं की साक्षरता 65.46 प्रतिशत है। महिलाओं की साक्षरता में यह अल्पतम वृद्धि पर्याप्त नहीं है। चन्द्रपाल ने महिला चिन्तन से सम्बधित अपने लेख में स्पष्ट किया कि वर्तमान में महिला शिक्षा का उन्नयन तथा गुणात्मक विकास कैसे किया जाय यह चिंतन का विषय है।''[3]

साक्षरता के आंकड़ों से पता चलता है कि बालिकाओं की साक्षरता आज भी कम है। बालिकाओं की शिक्षा की स्थिति आज जो शोचनीय बनी हुई है उसका अहम् कारण लोगों की रुढ़िवादी मानसिकता, अभिभावकों की अशिक्षा, भौगोलिक स्थिति, पर्याप्त शैक्षिक सुविधाओं का अभाव आदि है, लेकिन सबसे बड़ी कमी बालिकाओं द्वारा बीच में ही शिक्षा छोड़ देना है।''[7] बी. सी. शाह एवं गीता शाह ने अपने अध्ययन में बताया है कि मैदानी क्षेत्र की अपेक्षा पर्वतीय क्षेत्र में बालिका शिक्षा से सम्बन्धित अधिकांश माध्यमिक विद्यालयों में पर्याप्त सुविधाऐं नहीं है।''[8] बुधोड़ी ने गढ़वाल मण्डल में माध्यमिक एवं तकनीकी शिक्षा के विकास का अध्ययन कर पाया कि गढ़वाल मण्डल के सरकारी स्कूलों में भौतिक सुख-सुविधाओं का अभाव है।''[6] यह उपेक्षित शिक्षा पटल वास्तव में घोर चिन्ता का विशय है और आवश्यकता इस बात की है कि हम उस उपेक्षा का विश्लेषण करे और सामाधान की ओर संकेत करें जिससे राष्ट्र के आधार एवं आत्मा के रुप में स्थित इन गाँवों की बालिकाओं की शिक्षा की दुर्दशा में सुधार आ सके।

अध्ययन के उद्‌देश्य-

1. ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाओं के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारणों का अध्ययन करना।
3. ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान बताना।

शोध प्रारुप- प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए जिला नैनीताल के भीमताल क्षेत्र के बोहराकून ग्राम के अर्न्तगत 60 बालिकाओं का प्रतिदर्श के रुप में चयन किया गया। प्रतिदर्श के चयन में उद्‌देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का चयन किया गया, तत्पश्चात् साक्षात्कार अनुसूची द्वारा बालिकाओं से जानकारी प्राप्त की गई।

उपलब्धियाँ - ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं एवं शैक्षिक पिछड़ेपन के कारणों को ज्ञात करने के लिए उत्तरदाताओं से उनके परिवार की मासिक आय को ज्ञात किया गया जिसे निम्न सारणी द्वारा दर्शाया गया है-

तालिका संख्या-1

बालिकाओं के परिवार की मासिक आय

मासिक आय	संख्या	प्रतिशत
5000-10000	10	16.67
10000-15000	34	56.67
15000-20000	09	15.00
20000-25000	07	11.66
25000 से ऊपर	00	0.00
योग	60	100

तालिका संख्या-1 से स्पष्ट होता है कि 56.67 प्रतिशत बालिकाओं के परिवार की मासिक आय 10000-15000, 16.67 प्रतिशत की 5000-10000, 15 प्रतिशत की 15000-20000, 11.66 प्रतिशत की 20000-25000 के मध्य है, 25000 से ऊपर किसी भी परिवार की मासिक आय नही है। बालिकाओं के परिवार की जो मासिक आय है वह उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही पर्याप्त नहीं है। आर्थिक स्थितियाँ सामाजिक जीवन एवं उत्तरदायित्वों को प्रभावित करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश परिवार गरीबी या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करते है। जिसके कारण शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण पक्ष को समझ पाने में असमर्थ होते है। बालिकाओं की शिक्षा गरीबी एवं जागरुकता के अभाव के कारण उस स्तर को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पायी है, जो होना चाहिए था।

तालिका संख्या-2

बालिकाओं के परिवार का स्वरुप

परिवार का स्वरुप	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त	48	80
एकांकी	12	20
योग	60	100

तालिका संख्या-2 से स्पष्ट होता है कि 80 प्रतिशत बालिकाऐं संयुक्त परिवारों से है तथा 20 प्रतिशत एकांकी परिवारों से है। एकाकी परिवारों में जीवन व्यतीत करने वाली बालिकाओं को शैक्षिक सुविधाऐं अधिक प्राप्त है जब कि संयुक्त परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण व्यक्ति अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताऐं ही पूर्ण नहीं कर पाते है, इस कारण बालिकाओं को शैक्षिक सुविधाऐं प्राप्त नहीं हो पाती है। ग्रामीण सामाजिक संरचना में संयुक्त परिवार का महत्व अभी भी बना हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सुविधाओं के अभाव के कारण अनेक परिवार सभी बालिकाओं के शिक्षा हेतु उचित प्रबन्ध करने की स्थिति में नहीं है। संयुक्त परिवार में प्राथमिकताऐं अलग-अलग होती है।

तालिका संख्या-3

बालिकाओं के स्कूल जाने सम्बन्धी प्रत्युत्तर

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	37	61.67
नहीं	23	38.33
योग	60	100

तालिका संख्या-3 से स्पष्ट होता है कि 61.67 प्रतिशत बालिकाऐं स्कूल जाती है, यद्यपि यह ऑकड़ा निम्न स्तर का नहीं है, किन्तु संतोषजनक भी नहीं है। 38.33 प्रतिशत बालिकाऐं आज भी स्कूल नहीं जा पा रही है। इनके स्कूल न जाने के कारणों में निर्धनता, अभिभावकों की अशिक्षा, एवं पर्याप्त सुविधाओं का अभाव है। भारतीय सामाजिक संरचना के मूल में लैंगिक समानता, स्वतंत्रता, भेदभाव एवं समग्र विकास का तत्व विद्यमान है। किन्तु कतिपय कारणों के आने के बाद शिक्षा जैसा मूलभूत तत्व भी सामाजिक विसंगतियों से ग्रसित हो गया है। पारिवारिक संरचना में अनेक स्तरों एवं अवसरों पर अवसर की समानता को रोका जाता है। जिसके कारण साक्षरता दर एवं रोजगार के अवसरों में अन्तर देखने को मिल रहा है।

तालिका संख्या-4

मेधावी बालिकाओं को छात्रवृत्ति मिलने के सम्बन्ध में प्रत्युत्तर

छात्रवृत्ति लाभ	संख्या	प्रतिशत
हाँ	08	13.33
नहीं	34	56.67
कभी-कभी	18	30.00
योग	60	100

तालिका संख्या-4 स्कूल में बालिकाओं को छात्रवृत्ति मिलने के सम्बन्ध में है। 13.33 प्रतिशत बालिकाऐं कहती है कि उन्हें छात्रवृत्ति मिलती है, 56.67 प्रतिशत कहती है उन्हें छात्रवृत्ति नहीं मिलती है जब कि 30 प्रतिशत बालिकाऐं कहती है कि उन्हें कभी-कभी छात्रवृत्ति प्राप्त होती है। राष्ट्रीय सर्वशिक्षा अभियान, स्कूल चलो, मध्यान्ह भोजन योजना के साथ-साथ छात्रवृत्ति, पुस्तकों, यूनीफार्म के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं को शिक्षा के प्रति प्रेरित किया जा रहा है, जिसके सार्थक परिणाम सामने आ रहे है। विभिन्न स्तरों पर संगठनात्मक सामंजस्य, छात्रवृत्ति वितरण में उत्तरदायित्व एवं पारदर्शिता लाने की जरुरत है।

तालिका संख्या-5

बालिकाओं के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारण

बालिकाओं के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारण	संख्या	प्रतिशत
आर्थिक तंगी	14	23.33
अभिभावकों की अशिक्षा	08	13.33
पर्याप्त शैक्षिक सुविधाओं का अभाव	11	18.33
जानकारी एवं जागरुकता का अभाव	06	10.00
उपरोक्त सभी	21	35.00
योग	60	100

तालिका संख्या-5 से स्पष्ट होता है कि बालिकाओं के शैक्षिक पिछड़ेपन के क्या-क्या कारण है। सर्वाधिक 35 प्रतिशत बालिकाऐं उपरोक्त समस्त कारणों को, 23.33 प्रतिशत आर्थिक तंगी, 18.33 प्रतिशत पर्याप्त शैक्षिक सुविधाओं के अभाव, 13.33 प्रतिशत अभिभावकों की अशिक्षा तथा 10 प्रतिशत बालिकाऐं जानकारी एवं जागरुकता के अभाव को अपने शैक्षिक पिछड़ेपन का कारण मानती है। भारतीय समाज अपने संरचनात्मक स्वभाव में ग्रामीण पितृसत्तात्मक है। जिसके कारण अपने आप लैंगिक भेदभाव का तत्व उभर कर सामने आ जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य परम्परागत तत्वों के साथ ही, शिक्षा के साथ भी भेदभाव विद्यमान है। संरचनात्मक सुविधाओं के अभाव के कारण बालिकाओं की शिक्षा का स्तर परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही स्तरों पर कम दिखाई पड़ रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में विगत दशकों में व्यापक परिवर्तन के बावजूद निर्धनता, गुणात्मक जीवन का अभाव, विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियों के बारे में जानकारी का अभाव आदि पक्ष ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के शिक्षा के स्तर को बढ़ाने में अवरोध का काम कर रहे है।

तालिका संख्या-6

बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याऐं

शिक्षा सम्बन्धी समस्याऐं	संख्या	प्रतिशत
अभिभावकों की अशिक्षा एवं रुढ़िवादिता	18	30
निर्धनता	13	21.67
स्कूल का गृहक्षेत्र से दूर होना	11	18.33
विद्यालयों की संख्या में कमी	08	13.33
परिवहन एवं सुगम मार्गों का अभाव	10	16.67
योग	60	100

तालिका संख्या-6 बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को प्रदर्शित करती है। 30 प्रतिशत बालिकाऐं अभिभावकों की अशिक्षा एवं रुढ़िवादिता को, 21.67 प्रतिशत निर्धनता, 18.33 प्रतिशत स्कूल का गृहक्षेत्र से दूर होने को, 16.67 प्रतिशत परिवहन एवं सुगम मार्गो के अभाव को तथा 13.33 प्रतिशत विद्यालयों की संख्या में कमी को अपनी शिक्षा सम्बन्धी प्रमुख समस्याऐं मानती है। व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा एक अहम् माध्यम है। भारत में शिक्षा की आधारिक संरचना प्रत्येक दशकों में मजबूत होती गयी है। शिक्षा को रोजगार से जोड़ने का प्रयास निरन्तर किया जा रहा है। ग्रामीण भारत में शिक्षा के विभिन्न पहलू एवं आयाम परम्परागत मूल्य, मान्यताओं से प्रभावित रहे है, उसे आधुनिक मूल्य, मान्यताओं एवं तकनीकों से जोड़ने की प्रक्रिया गतिमान है। लेकिन उपरोक्त तालिका इस संदर्भ की तरफ इंगित करती है कि अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

निष्कर्ष – प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याऐं आज भी विशाल रुप में विद्यमान है। ग्रामीण क्षेत्रों में वर्तमान में भी संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित है। परिवार की मासिक आय सदस्यों की तुलना में बहुत कम है, जिससे परिवार के सदस्यों की दैनिक आवश्यकताऐं ही पूरी नहीं हो पाती है। संयुक्त परिवार में, परिवार की प्राथमिकताऐं अलग-अलग होती है अनेक परिवार बालिकाओं की संख्या की अधिकता के कारण सभी बालिकाओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करने की स्थिति में नहीं है। जिस कारण वह अपनी बालिकाओं को स्कूल नहीं भेज पाते है। जो बालिकाऐं स्कूल जाती है उन्हें पर्याप्त शैक्षिक सुविधाऐं नहीं मिल पाती है। अशिक्षा, आर्थिक तंगी, जानकारी एवं जागरुकता का अभाव आदि बालिकाओं के शैक्षिक पिछड़ेपन के प्रमुख कारण बन रहे है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश परिवार गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करते है, जिसके कारण शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण पक्ष को समझ पाने में असमर्थ रहते है। गरीबी, जानकारी एवं जागरुकता के अभाव में बालिकाओं को उस स्तर की शिक्षा नहीं प्राप्त हो पाती है जो होनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त बालिकाओं की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं में स्कूल का गृह क्षेत्र से दूर होना, विद्यालयों की संख्या में कमी, निर्धनता, छात्रवृत्ति न मिलना, परिवहन एवं सुगम मार्गो का अभाव आदि है।

बालिकाओं की दिन-प्रतिदिन गिरती शैक्षिक स्थिति देश एवं समाज के लिए एक गंभीर चिन्ता का विषय है। समय रहते यदि इस क्षेत्र में सुधार के लिए कोई ठोस कदम न उठायें गये तो यह न केवल बालिकाओं को प्रभावित करेगा वरन् राष्ट्रीय विकास एवं सम्पूर्ण समाज की गति को भी अवरुद्ध करेगा।

समाधान

1. ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति को उन्नत बनाने के लिए इन क्षेत्रों में कन्या महाविद्यालय की स्थापना की जानी चाहिए।
2. प्रत्येक कन्या विद्यालय में अध्ययन हेतु उचित कक्ष एवं पर्याप्त शैक्षिक सुविधाऐं उपलब्ध करायी जानी चाहिए।
3. शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बालिका का अधिकार है इसलिए प्रत्येक अभिभावक के लिए यह जरुरी होना चाहिए कि वे अपनी बालिकाओं को नियमित रुप से स्कूल भेंजे ऐसा न करने वाले अभिभावकों को दण्डित किया जाना चाहिए।
4. स्कूलों में मेधावी छात्राओं के लिए वजीफे की सुविधा भी होनी चाहिए जिसकी सम्पूर्ण जानकारी शिक्षको द्वारा दी जानी चाहिए।
5. बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार को बालिकाओं के लिए नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।
6. रुढ़िवादिता एवं धर्मान्धता जैसे विचारों को समाप्त करने पर बल देना एवं बालिकाओं की शिक्षा हेतु राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक कार्यक्रम चलाना चाहिए।
7. दूरस्थ एवं अनौपचारिक शिक्षा का तीव्र विकास किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गैरोला, पी.एन., 'बुनियादी शिक्षा: उत्तराखण्ड की महिलाओं के संदर्भ में एक विश्लेषण', महिला जागृति एवं रचनात्मक सम्मेलन, श्रीनगर गढ़वाल, नवम्बर, 1996*
2. *गोस्वामी, सुबुद्धि, 'नारी शिक्षा से जुड़े कुछ सवाल: महिला एवं बाल विकास', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृष्ठ-5*
3. *चन्द्रपाल, 'महिला शिक्षा के अनसुलझे पहलू', 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली वर्ष-54, अंक-41, 2005 पृष्ठ 25*
4. *तोमर, लज्जाराम, 'भारतीय शिक्षा के मूल तत्व' सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली-55, पृष्ठ-20*
5. *प्रसाद, भगवान, शिक्षा का विकास, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृष्ठ-10*
6. *बुधोड़ी, के. बी., 'एन एवल्युलेएटिव स्टडी ऑफ ऐजूकेशन डेवलेपमेन्ट इन गढ़वाल डिवीजन सिन्स 1947', एडिटेड: एम.बी.बुच, थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन (1978-1983), एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली, 1981*
7. *रानी, सरिता, ''भारत में शिक्षा के उभरते क्षितिज और गहराती चुनौतियाँ में अवधारणा'' ओमेंगा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ 135-136*
8. *शाह, बी. सी., शाह, गीता, 'पर्वतीय एवं मैदानी क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के उन्मूलन का तुलनात्मक अध्ययन-मूलभूत व्यवस्थाओं के संदर्भ में', राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 15, अंक 1, 2013, पृष्ठ 24-29*

मेवाड़ का भौगोलिक परिवेश

डॉ. रुबी शर्मा
शोध परामर्शक, त्रिलोक शोध संस्थान, कोटा

shodhshree@gmail.com

मेवाड़ राज्य का ऐतिहासिक भारत के प्रादेशिक राज्यों में विशिष्ट स्थान है। मध्ययुगीन ऐतिहासिक संदर्भो में 'मेवाड़' नाम से विख्यात भू-भाग का 'मेदपाट' संज्ञा से उल्लेख मिलता है। छठी शताब्दी और उसके बाद के ऐतिहासिक स्त्रोतों में मेवाड़ भू-भाग के लिये मेदपाट संज्ञा का प्रयोग किया गया है। इस भू-भाग पर पूर्व में भेद अर्थात् मेव या मेर जाति की जनसख्या अधिक रही, अत: इस भू-भाग को मेवाड़ अथवा मेदपाट नाम से पुकारा जाने लगा।[1]

मेवाड़ का एक भाग अब भी मेवल कहलाता है, जो मेवों के राज्य का स्मरण दिलाता है मेवाड़ के देवगढ़ इलाके में तथा अजमेर-मेरवाड़ प्रदेश, जिसका अधिकांश भाग मेवाड़ से ही लिया गया है, अब तक मेरों की आबादी अधिक है। अनेक, विद्वान मेर (मेव, मेद) जाति की गणना हूणों में करते हैं, किन्तु मेर लोग, शाकद्विपी ब्राह्मणों के समान अपना निवास ईरान की ओर के शाकद्विप (शकस्तान) से बतलाते हैं, और मेर (मिहिर) नाम भी यही सूचित करता है, अत: यह सम्भव है कि यह जाति पश्चिमी क्षत्रपों के अनुयायी या वंशज हों। (ना.प्र.प. भाग-2 पृ. 235)[2]

मेवाड़ राज्य के चित्तीड़गढ़ एवं उसके निकटवर्ती भू-भाग को तीसरी शताब्दी में 'मालव राज्य' कहा जाता था। (नांदसा शिलालेख वि. सं. 282 ई. 225) चित्तीड़ के किले से 7 मील उत्तर में मध्यमिका नाम की प्राचीन नगरी के खण्डहर है और उसको उस समय 'नगरी' कहते थे। वहाँ से मिलने वाले अनेक तांबे के सिक्कों पर वि. सं. के पूर्व की तीसरी शताब्दी के आसपास की ब्रह्मी लिपि में 'मझिमिकाय शिबिजनपदस' (शिबिदेश की मध्यमिका का सिक्का) लिखा है। इससे अनुमान होता है कि उस समय मेवाड़ (या चित्तीड़ के आसपास का भाग) 'शिबि' नाम से प्रसिद्ध था। बाद में यही देश 'मेदपाट या मेवाड़ कहलाया और उसका प्राचीन नाम 'शिबि' लोगों द्वारा भुला दिया गया। (ना.प्र.प. भाग-2 पृ. 334-35)

जबलपुर के निकट स्थित करनवेल के शिलालेख में प्रसंगवश मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा हंसपाल, वैरीसिंह और विजयसिंह का वर्णन आया है। जिसमें उनको 'प्राग्वट' के राजा कहा गया है। अत: 'प्राग्वट' मेवाड़ का ही दूसरा नाम होना चाहिये। संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में पोरवाड़ महाजनों के लिये 'प्राग्वट' नाम का प्रयोग मिलता है और वे लोग अपना निकास मेवाड़ के 'पुर' कस्बे से बतलाते हैं, और प्राग्वट देश के नाम पर वे अपने को प्राग्वट वंशी कहते रहे हैं। (ना.प्र.प. भाग-2 पृ. 336)

मेवाड़ के ऐतिहासिक घटनाक्रम के समानान्तर ही इस प्रदेश में सांस्कृतिक व कलात्मक गतिविधियाँ भी संचालित होती रहीं और उनका विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस भू-भाग में मानव सभ्यता तथा विशेष रुप से भारतीय संस्कृति के विकास और उसके संरक्षण के लिये मानवीय प्रयास अत्यधिक प्राचीन काल से प्रारम्भ हो गये थे, जिनका प्रवाह वर्तमान समय तक चला आ रहा है। इस भू-भाग में उत्खनन से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य यहाँ पर पेलियोलिथिक सभ्यता के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। यद्यपि यह तथ्यात्मक है कि प्रागैतिहासिक काल पर्याप्त लम्बा रहा है, जिसकी व्याख्या यहाँ की चट्टानों, मैरिन्स, नदियों

के टेरेस, पाषाण औजारों तथा सिरेमिक अवशेषों में सुरक्षित प्रमाणों के आधार पर की जा सकती है।[3] पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य को सिद्ध करते हैं कि इस भू-भाग पर लगभग एक लाख वर्ष पूर्व, मानव सभ्यता के प्रागैतिहासिक युग के प्राचीन पाषाण काल के समय से ही मानव विचरण करने लगा था। (वी. एन. मिश्रा-द प्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ मेवाड़-मेवाड़ थ्रू द एजेज में प्रकाशित पृ. 1-6) अब तक प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर मेवाड़ का प्राचीन व मौलिक इतिहास (प्री एण्ड प्राटो हिस्ट्री) निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है:-

1. प्राचीन पाषाण काल
2. मध्य पाषाण काल
3. उत्तर पाषाण काल
4. ताम्र पाषाण काल (चाल्को लिथिक एज)
5. लौह युग

प्रागैतिहासिक काल :- मानव सभ्यता के विकास के प्रागैतिहासिक युग के प्रारम्भिक पाषाण काल, मध्यपाषाण काल, उत्तर पाषाण काल, ताम्र पाषाण काल तथा लौह युग आदि विभिन्न चरणों में होकर मेवाड़ के इतिहास ने ऐतिहासिक युग में प्रवेश किया है (वी. एन. मिश्रा - प्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ मेवाड़, मेवाड़ थ्रू द एजेज में प्रकाशित पृ. 1-6)[4]

1. **प्राचीन पाषाण काल :-** मेवाड़ की कई नदियों के किनारों पर प्रारम्भिक पाषाण काल से लेकर ताम्रपाषाण काल एवं लौह युग के मानवीय इतिहास के चिन्ह मिले हैं। चित्तौड़गढ़ के पास दो नदियों, गंभीरी एवं बेड़च के कछारों में, सिंगोली के पास चंबल नदी का कछार तथा सेनिटा गाँव के पास, उसके ढाल में उत्खनन किया गया, जिसके फलस्वरुप चॉपर्स (काटने के औजार), हथ कुल्हाडियाँ, क्लीवर्स (चीरने-फाड़ने के उपकरण) तथा लैक्स व स्क्रेपर्स (पाषाण शल्कल उपकरण व छीलने खुरचने के औजार) आदि प्राप्त हुए। एस. आर. राओ को स्पेनिटा से 19 औजार मिले, जिनमें तीन चॉपर्स, चार क्लीवर्स, आठ स्क्रेपर्स, एक अण्डाकार तथा शेष तीन अनिश्चित आद्धति के थे। लैक्स कलैक्टोनियन तकनीक के थे। इस प्रकार सोहन चॉपर्स तथा मद्रास लैक्स साथ-साथ प्राप्त हुए। दोनों प्रकार के उपकरण भैंसरोड़गढ़ तथा बाड़ोली से भी साथ-साथ प्राप्त हुए। (आई. ए. आर. 1953-54 पृ. 37, 1956-57 पृ.)[5] बामनी, रुपारेल, नह्लास, भीचोड़ और पारसोली नदियों के भागों से महत्वपूर्ण प्रागैतिहासिक पाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं जिनमें हथकुल्हाड़ियाँ, चॉपर्स तथा स्क्रेपर्स प्रमुख हैं। डॉ. वी. एन. मिश्रा के द्वारा बनास नदी तथा इसकी सहायक नदियों-कोठारी, खारी, बागन, बेड़च, कदमाली तथा गंभीरी नदियों की घाटियों में खोज कार्य किया गया जिसमें भीलवाडा जिले के प्रमुख स्थान है- हमीरगढ़, सरुपगंज, मंडपिया, बिगोद, जहाजपुर आदि। पुरातत्ववेत्ता डॉ. वी. एन. मिश्रा ने मेवाड़ के इन पुरापाषाण युग के निवासियों को एलियन संज्ञा दी है, जिनकी संस्कृति का प्रमुख लक्षण शिकार एवं आहार संग्रहकर्त्ता का रहा है (डॉ. वी. एन. मिश्रा-द प्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ द बेड़चबेसिन, साउथ राजस्थान, पूना 1960 पृ. 22)[6]

   बेड़च बेसिन में प्रागैतिहासिक उपकरण निम्न गाँवों से प्राप्त किये गये - दरोली, करणपुर, धीमारा, सरजना, वल्लभनगर, गड़रियावास, ठूकरवा, घनेत तथा नगरी। घनेत तथा नगरी से काफी संख्या में उपकरण प्राप्त हुए हैं। पुरातत्व विभाग तथा म्यूजियम जयपुर के श्री विजय कुमार के द्वारा नगरी (जिला चित्तौड़) से 123 पेलियोलिथ (पाषाण उपकरण) संग्रहित किये गये जिनमें 42 लैक्स, 15 कोर्स, 30 हथकुल्हाडियाँ, 21 क्लीवर्स तथा 14 चॉपर्स हैं। गंभीरी नदी पर तथा निम्बाहेड़ा के पास स्थित स्थान रथंजना से काफी बड़ी संख्या में हथकुल्हाड़ियाँ, क्लीवर्स और चॉपर्स प्राप्त हुए हैं। बागन नदी के उत्खनन से हाजिया खेड़ी, बेआवर, भूतिया तथा चम्पाखेड़ी गाँवों से पेलियालिथ प्राप्त हुए। वास्तव में इन गाँवो में, नदियों की रेत पाषाण उपकरणों के मामले में काफी समृद्ध है। कदमाली नदी से निम्बाहेड़ा के पास के इलाके से उपकरण प्राप्त किये गये थे। कदमाली नदी के तट पर, निम्बाहेड़ा के पास स्थित सिगोह पेलियेलिथ प्राप्ति का स्थान है। नदियों की घाटियों से संग्रह किये गये पाषाणोपकरण 'कार्टजाइट' के बने हुए हैं। धनेत, नगरी और गंभीरी नदी से प्राप्त पेलियोलिथ परिष्कृत नीले तथा गुलाबी रंग के कार्टजाइट के बने हैं।

   पाषाण के बने विविध प्रकार के हथियार-औजार जैसे काटने के औजार, हथकुल्हाडियाँ, चीरने-फाड़ने के उपकरण, पाषाण शल्कल उपकरण छीलने-खुरचने के औजार आदि जो मेवाड़ में बहने वाली नदियों के कछारों तथा मेवाड़ के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए हैं, (इण्डियन आर्कियोलॉजिकल-अ रिव्यू; 1953-54 पृ. 37, 1954-55 पृ. 58, 1955-56 पृ. 68, 1956-57 पृ. 6, 1958-59 पृ. 42, 1959-60 पृ. 39, 1961-62 पृ. 38, 1962-63 पृ. 8, 1963-64 पृ. 29)[7] की बनावट, आकार-प्रकार और उपयोग-प्रयोग के तरीकों के अध्ययन-विश्लेषण के आधार पर पुरातत्ववेत्ताओं का मत है कि मेवाड़ में विचरण करने वाले पाषणयुगीन मानव समूहों का प्रमुख कार्य पाषाण के मोटे-भद्दे औजार बनाना, शिकार करना और अपनी उदरपूर्ति के लिये आहार एकत्रित करना था। वे जंगली जानवरों को मारने के लिए लकड़ी के भाले और लाठियों का भी प्रयोग करते थे। वे जंगली हिरण, सूअर, हाथी, दरियायीघोड़ा, तथा अन्य कई (संप्रति विलुप्त) पशुओं का कच्चा मांस खाते थे (डॉ. वी. एन. मिश्रा-द प्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ द बेड़चबेसिन, साउथ राजस्थान, पृ. 22)।

2. **मध्य पाषाण काल:-** एचेयुएलियन संस्कृति की निरन्तरता के

क्रम में ही गंभीरी, बेड़च, नल्लास, पारसोली, वागन और कदमाली नदियों के किनारों व कछारो पर उत्खनन के फलस्वरुप पाषाणोपकरण प्राप्त हुए है। सर्वप्रथम राओ द्वारा गंभीरी, बेड़च, नल्लास और पारसोली से उपकरण प्राप्त किये। बी.एन. मिश्रा के द्वारा भीलवाड़ा व चित्तौड़ जिले में बनास व सहायक नदियों की घाटियों से पेलियोलिथ प्राप्त किये गये। बाद में सांकलिया, मिक्षा, सुन्दरराजन, सैनगुप्ता, एम. डी. खरे आदि के द्वारा चित्तौड़ व उदयपुर जिले में मध्यपाषाणयुगीन पाषाणोपरकणों के कुछ और स्थानों की खोज की गयी (आई.ए.आर. 1954-55 पृ.58, 1955-56 पृ.68, 1956-57 पृ.5-7, 1958-59 पृ.42, 1959-60 पृ.39, 1961-62 पृ.38, 1963-64 पृ.29-30)[8]

डॉ. बी. एन. मिश्रा के द्वारा वागन और कदमाली नदियों की घाटियों से संग्रहित किये गये मध्यपाषाण कालीन पाषाणोपकरणों का क्रमबद्ध व्यवस्थित अध्ययन किया। वागन के ये पाषाणोपकरण हाजिया खेड़ी, बेआवर, भूतिया तथा चम्पाखेरी गाँवों से एकत्रित किये गये हैं, जो कि प्राचीन पाषाण कालीन सभ्यता के बाद की मध्य पाषाण कालीन सभ्यता को विकासोन्मुखी प्रकट करते हैं। बेड़च बेसिन से प्राप्त पाषाणोपकरणों के अध्ययन से पुरातत्ववेत्ताओं का मत है कि पूर्व पाषाणकाल तथा मध्यपाषाणकाल के बीच में उपकरणों के प्रकार को लेकर कोई व्यवधान नहीं है, क्योंकि हथकुल्हाडियाँ, क्लीवर्स जो पूर्व पाषाणकाल मे क्वार्टजाइट पत्थर के बने थे वे मध्यपाषाणकाल में अच्छे किस्म के रामसैकाश्म और जैस्पर जैसे पत्थरों के बनाये गये, यद्यपि उनका आकार-तुलनात्मक दृष्टि से छोटा एवं पतला हो गया।

3. **उत्तर पाषाण काल:-** उत्तर पाषाण युग के उपकरण छोटे आकार के हैं। एस. आर. राओ के द्वारा सर्वप्रथम सन् 1954-55 में चित्तौड़ जिले में नदियों के किनारे स्थित बिछोड़, हरिपुरा, सिंघोली, बालूखेड़ा, बडी अचनेर, बेआवड बामनिया, तारा तथा कालीकुंजा से पाषाणोपकरण प्राप्त किये गये जो नोकदार, तीक्ष्ण-ब्लेड्स, ल्यूनेटेस ट्रेपेज है और यह अगेट, कार्टज, जेस्पर, चाल्सिडोनी आदि के बने हैं। भीलवाड़ा जिले के कुडिआस, देओली, मंगरुप से प्राप्त धारदार, नोकदार, छिद्रवाले हथियार प्राप्त हुए हैं। उदयुपर जिले के बड़ी बेदला, बीछड़ी, गारुआ, डबोक, मेंडेर, कानपुर, बीजना, मोरडाई, गोटिया व इंटाली गाँवों में और अधिक माइक्रोलिथिक स्थान खोजे गये (आ. ए. आर. 1954-55 पृ. 58, 1955-56 पृ. 68-69, 1956-57 पृ. 8, 1957-58 पृ. 43)।

बागोर:- बागोर कोठारी नदी के तट पर भीलवाड़ा जिले में स्थित है। यहाँ डक्कन कॉलेज, पूना तथा पुरातत्व विभाग राजस्थान के द्वारा उत्खनन कार्य किया गया, इस दृष्टि से यह स्थान काफी महत्वपूर्ण है। इस स्थान से उत्तर पाषाण काल से लेकर लौह युग तक की महत्वपूर्ण पुरातात्विक सामग्री प्राप्त हुई है, जिससे सभ्यता के आखेट करने व भोजन संग्रह करने का कार्य मुख्यत: प्रमाणित होता है। वे बर्तनों के उपयोग से अनभिज्ञ थे। वे पत्थरों से बने फर्श पर एक ही स्थान पर स्थायी निवास बनाकर रहने लगे क्योंकि उन्हें भोजन सामग्री सहजता से तथा काफी मात्रा में उपलब्ध हो जाती थी। वे कृषि और पशुपालन जैसे आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं से अनभिज्ञ थे। वे अपने मृतकों को अपने निवास स्थान के परिक्षेत्र में ही गाड़ते थे। शव का सर उत्तर-पश्चिम में रखते थे, तथा शव के साथ पशु मांस रखते थे। शवोत्सर्ग के ऐसे अवशेष बागौर आदि स्थानों पर मिले हैं, जो प्रकट करते हैं कि उनमें मृत्योपरान्त जीवन या अन्य योनी की भावना जन्म ले चुकी थी। (डॉ. बी. एन. मिश्रा- प्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री मेवाड़, मेवाड़ थ्रू द एजेज पृ. 5)[9]

4. **ताम्र पाषाण काल :-** मेवाड़ में उत्तर पाषाण काल के पश्चात् नवीन पाषाण काल (नीओ-लिथिक एज) के स्पष्ट अवशेष उपलब्ध नहीं हुए हैं। उत्तर पाषाण काल काफी लम्बे समय तक रहा और फिर ताम्रपाषाण युग मे परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होता है। धीरे-धीरे हथियारों व अन्य पाषाणोपरकण के साथ-साथ बर्तनो का उपयोग प्रारम्भ हो गया। बागोर उत्खनन फेज-II में निम्न गुणवत्ता के हाथ के बने हुए बर्तन उपलब्ध हुए।[10] ताम्रपाषाण कालीन पुरातात्विक प्रमाणों में कृषि एवं पशुपालन सभ्यता के अवशेष मुख्यतया बागोर, उदयपुर के निकट आहड़ तथा गिलूंड में क्रमश: कोठारी, आहड़ एवं बनास नदियों के तटों पर स्थित टीलों के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। ऐसे अनेक ताम्रपाषाण कालीन सभ्यता से संबद्ध स्थल है, जो बनास और उसकी सहायक नदियों की घाटियों में स्थित है और इनका विस्तार मेवाड़ क्षेत्र के उदयपुर, भीलवाड़ा तथा चित्तौड़ जिलों से लेकर राजस्थान के अजमेर तथा टोंक जिलों तक है।[11]

5. **आहड़ संस्कृति:-** श्री आर. सी. अग्रवाल, भूतपूर्व निदेशक, पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग राजस्थान द्वारा सर्वप्रथम आहड़ में उत्खनन कार्य करवाया गया था,[12] किन्तु प्रथम प्रायोगिक उत्खनन का कार्य मेवाड़ राज्य के रियासती शासन काल में, इस रियासत के पुरातत्व एवं सग्राहलय विभाग के विभागाध्यक्ष पंडित अक्षय कीर्ति व्यास द्वारा, श्री एन. चक्रवर्ती, अध्यक्ष पुरातत्व विभाग, भारत सरकार के मार्गदर्शन में सन् 1951-52 में सम्पन्न किया गया था।[13] श्री आर.सी. अग्रवाल द्वारा आहड़ मे किये गये उत्खनन कार्य के परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे और आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ दा इण्डिया द्वारा बनास नदी की घाटियों में विस्तृत सर्वे कार्य करते हुए लगभग 40 स्थान खोजे गये, जहाँ से काले व

> लाल रंग के बर्तन उपलब्ध हुए। श्री एच. डी. सांकलिया के निर्देशन में सन् 1961-62 में भारत सरकार द्वारा पुन: उत्खनन कार्य गिलूंड में कराया गया।

आहड़ क्षेत्र में पुरातात्विक उत्खनन के फलस्वरुप उपलब्ध बर्तनों से ज्ञात होता है कि आहड़ संस्कृति के लोग मृतिका पात्र निर्माण कला (सिरेमिक) से परिचित थे। इस स्थान से उपलब्ध हुए लाल व काले रंग के बर्तनों पर सुन्दर डिजाइनों के अंलकरण किये गये हैं। वे लोग अनाज को भरने की बड़ी-बड़ी और मोटी और मजबूत गोरियों से लेकर भोजन पकाने के मिट्टी के बर्तन, तश्तरी, कटोरे तथा लोटे के आकार के बर्तन तथा पानी भरने के सुन्दर बर्तन बनाते थे। वे उन्हें आग में इस प्रकार से पकाते थे कि बर्तनों का भीतरी व गले का भाग काला था बाहरी भाग लाल रंग का रहता था।[14]

गिलूंड में तांबे के अंश भी उपलब्ध हुए हैं। आहड तथा गिलूंड दोनो ही तांबा उत्पादक स्थान के पास है, अत: प्राचीन ताम्रपाषाणकालीन सभ्यता के लोगों को तांबा धातु के विषय में जानकारी थी और वे पृथ्वी से कच्चे खनिज के रुप में तांबा निकालना और उसे भट्टियों में गलाकर साफ करके, शुद्ध तांबे के औजार व उपकरण बनाने की विधि जानते थे। यह तथ्य आहड में प्रयोग की गयी धातु कार्य की भट्टियों से प्रमाणित होता है (डॉ. वी.एन. मिश्रा प्री एण्ड प्रोटो हिस्ट्री ऑफ मेवाड़) आहड़ में किये गये उत्खनन कार्य से प्राचीन बस्तियों के विषय में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त हुई है। आहड़ के लोग एक निश्चित स्थान पर बस्तियाँ बसा कर मिट्टी, पत्थर के घरों में रहते थे। मकानों की छत ढालू होती थी और उसे बांस से सहारा दिया जाता था। बडे चूल्हे बड़े परिवारों द्वारा काम में लिये जाते थे। वे गेहूँ, जौ, चावल, बाजरा, आदि पैदा करते थे और इन्हें खाते थे। ये भैंस, भेड़, बकरी, सुअर, कुत्ता, गधा आदि पशुओं का पालन भी करते थे। मांस भक्षण भी उनके समय में प्रचलित था। वे अपने पशुओं की संख्या बढ़ाते रहते थे। जिन स्थानों से पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, वे हैं, बालाथल, खेड़ी, जावर, गड़रियावास, बांसी, चम्पाखेड़ी, गिलूंड, मिरोली, छत्तरीखेड़ा, पाहूयां, मारमी, ऊंचा, जसामा, कोदूकोटा आदि। इन सभी स्थानों से प्राप्त हुए मृत्तिका पात्रों को मुख्यतया तीन समूहो में विभाजित किया गया है-1. लाल मृद् माण्ड, 2. मटमैले (ग्रे) मृद्मांड, 3.चित्रित काले व लाल मृद माण्ड (एच. डी. सांकलिया एस्केवेशन्स एट आहर पृ.216-220)[15]

ये तीनों मृदमाण्ड वर्ग आहड़ संस्कृति के क्रमिक एवं उत्तरोत्तर विकास की ओर इंगित करते हैं और यह भी स्पष्ट करते हैं कि जीवन की मूलभूत जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ भावनाओं और मानसिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिये सौन्दर्य बोध आहड़ सभ्यता के लोगों में विकसित हो चुका था, जिसने मेवाड़ भू-क्षेत्र के भावी सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास मे पर्याप्त योगदान दिया। आहड़ के लोग पूर्णतया किसान थे और उन्हें धातुकर्म का ज्ञान था।

6. लौह युग:- लौह के आविष्कार के कारण बहुत बड़ा परिवर्तन आया। डॉ. वी. एन. मिश्रा के अनुसार आहड़ की लौह कालीन बस्तियों के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उनका अस्तित्व पूर्व की बस्तियों के अनेक सदियों के पश्चात् आया। अर्थात् लौह संस्कृति के मानव समुदाय, ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति के समाप्त हो जाने के अनेक शताब्दियों के बाद आहड़ क्षेत्र में बसे। मेवाड़ भू-क्षेत्र के विभिन्न भागों से प्राप्त लौह संस्कृति के अवशेष इस मान्यता को स्वीकार करने में सहयोग करते हैं कि मेवाड़ में 500 ई.पू. से पहले लौह का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था और पूर्णतया सुव्यवस्थित ग्राम्य संस्कृति मेवाड़ भू-क्षेत्र में विकसित हो चुकी थी। वास्तव में यह पुरातात्विक तथ्य इस बात का प्रतीक है कि भारत में मानव संस्कृति के विकास के क्रम में मेवाड़ का भी अपना विशिष्ट स्थान एवं योगदान रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *डॉ.राजशेखर व्यास: मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राज.प्रकाशन, जयपुर पृ.सं.1*
2. *महा महोपाध्याय रामबहादुर गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. सं. 1*
3. *आर.वी.सोमानी: हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, चंपालाल रांका एण्ड कं. जयपुर पृ. सं. 10*
4. *डॉ.राजशेखर व्यास:मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राज. प्रकाशन, जयपुर पृ.सं.15*
5. *राम वल्लभ सोमानी:हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, चंपालाल रांका एण्ड कं.जयपुर पृ.सं.10*
6. *राम वल्लभ सोमानी:हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, चंपालाल रांका एण्ड कं.जयपुर पृ.सं.11*
7. *डॉ.राजशेखर व्यास:मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राज. प्रकाशन, जयपुर पृ.सं.15*
8. *राम वल्लभ सोमानी:हिस्ट्री ऑफ मेवाड़,चंपालाल रांका एण्ड कं. जयपुर पृ.सं.12*
9. *डॉ. राजशेखर व्यास:मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राज. प्रकाशन, जयपुर पृ.सं.17*
10. *राम वल्लभ सोमानी: हिस्ट्री ऑफ मेवाड़,चंपालाल रांका एण्ड कं. जयपुर पृ.सं.15*
11. *डॉ. राजशेखर व्यास: मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राज. प्रकाशन, जयपुर पृ.सं.17*
12. *राम वल्लभ सोमानी:हिस्ट्री ऑफ मेवाड़,चंपालाल रांका एण्ड कं. जयपुर पृ.सं.15*
13. *डॉ. राजशेखर व्यास:मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राज. प्रकाशन, जयपुर पृ.सं.17*
14. *डॉ. राजशेखर व्यास:मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राज. प्रकाशन, जयपुर पृ.सं.17*
15. *राम वल्लभ सोमानी:हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, चंपालाल रांका एण्ड कं. जयपुर पृ.सं.16*

मालवा शैली की लोककला में रंगों का उभरता स्वरुप

कंचन कुमारी
शोध छात्रा, दयालबाग एजुकेशनल इंसीट्यूट, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

पर्वतों में सुमेरु, पक्षियों में गरुण, व्यक्तियों में राजा श्रेष्ठ है, वैसे ही कलाओं में ''चित्रकला'' श्रेष्ठ मानी गई है।'' मानव की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का नाम कला है। भारत में चित्रकला के नमूने हमें अजन्ता से लेकर जैन, राजस्थान, पहाड़ी व मालवा शैलियों में परिलक्षित होते है। भारत एक प्राचीन सांस्कृतिक देश है। भारतीय चित्रकला का स्वरुप जितना प्रशस्त है, उतना ही इसका इतिहास पुरातन है। भारत में चित्रकला के प्राचीनतम नमूने प्रागैतिहासिक शैल चित्रों में मिलते है। जिनमें मिर्जापुर, भीमबेटका तथा बाघ की गुफायें प्रमुख है।विकास के साथ ऐतिहासिक युग में शुंग काल से गुप्त काल तक अजन्ता की गुफाओं में सुन्दर चित्रकारी की गयी। कागज पर चित्रों का निर्माण 11 वीं 12 वीं शती में शुरु हुआ और जैन धर्म से सम्बन्धित अधिकांश चित्र गुजरात और उसके आसपास के क्षेत्र में बनाये गये।

मानव जीवन का उद्देश्य क्रियाशीलता अथवा निर्माण में निहित है। रंग सदैव उत्साहवर्धन करते है। रंगों का प्राकृतिक गुण ही प्रकाश की किरणें होती हैं, जो अपनी तरंगदैर्ध्य से प्रकृति में व्याप्त जीवों और प्राणियों के अन्तर्मन के कंपन को ऊर्जा में परिवर्तित करती है। रंग-स्वाद हीन होते हैं, फिर भी प्राणी अपने अनुभव से रंग-स्वाद की अनुभूति करता है। जिसका प्रभाव उसके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रंगों का इस्तेमाल बहुत खूबसूरती से करना एक कलाकार बखूबी जानता है। पेण्टिंग एक ऐसी कला है जो जितनी मुश्किल है उतनी आकर्षक भी।चित्रकला में रसों की निष्पत्ति के लिये चित्रकला के प्रमुख तत्वों में समाहित रंगों का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि रंगों का चित्राकृति की स्वाभाविक प्रवृत्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता हैं मनुष्य अपने नेत्रों के माध्यम से जो कुछ भी देखता है उनमें रंगों का समावेश होता ही है, अत: यह कहना सर्वथा गलत नहीं होगा कि जीवन में रंगों का स्थान सर्वोपरि है और यही रंग हमें अपने सौन्दर्य के माध्यम से रसास्वादन या आनंदानुभूति के शीर्ष तक ले जाते है, क्योंकि आनन्द भाव सम्पूर्ण सृष्टि का सार है और हृदयगत भावनाओं की अन्तिम परिणति भी।

चित्रकला अर्थात रंगों के माध्यम से प्रदर्शित होने वाली कला से है, क्योंकि रंग एवं प्रकाश ही हमारे दृष्टिज्ञान के सरलतम तत्व हैं। चित्रकला में रंग एवं रंगों के पारस्परिक सम्बन्ध से सौन्दर्य की सृष्टि होती हैं। रंग दर्शक को, चाहे वह एक कलाकार हो या साधारण मानव, बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता हैं। रंग का मानवीय भावनाओं एवं विचारों से गहरा सम्बन्ध हैं। रंगों से मानव सदा ही आकर्षित रहा है। किसी भी कलाकृति को प्रदर्शित करने से रंग मुख्य आधार हैं। कला के क्षेत्र में आदि-अनादि काल से लेकर आज पर्यन्त विभिन्न परिवर्तन व प्रयोग हुए हैं तथा अनवरत जारी हैं। भित्ति चित्रण हो या लोककला,

बालकला, आदिमकला या आधुनिक कालीन चित्रकला की नवीन शैलियाँ, सभी तरह की चित्रण शैलियों में रंगों का अपना विशेष स्थान व प्रभाव रहा है।

किसी देश या राज्य की भौगोलिक स्थिति, उस स्थन की ऐतिहासिक घटनाओं और आर्थिक विकास को बहुत अधिक प्रभावित करती है। मध्यप्रदेश मध्यभारत का एक राज्य है, इसकी राजधानी भोपाल है।मध्य प्रदेश की सीमाएँ पांच राज्यों की सीमाओं से मिलती है। इसके उत्तर में उत्तर प्रदेश, पूर्व में छत्तीसगढ़, दक्षिण में महाराष्ट्र, पश्चिम में गुजरात, तथा पश्चिमोत्तर में राजस्थान है।

भारत की संस्कृति में मध्य प्रदेश जगमगाते दीपक के समान है जिसकी रोशनी की सर्वथा अलग प्रभा और प्रभाव है। यह विभिन्न संस्कृतियों की अनेकता में एकता का जैसे आकर्षक गुलदस्ता है,मध्य प्रदेश, जिसे प्रकृति ने राष्ट्र की वेदी पर जैसे अपने हाथों से सजाकर रख दिया है, जिसका सतरंगी सौन्दर्य और मनमोहक सुगन्ध चारों ओर फैल रहे हैं।

मध्य प्रदेश में पाँच लोक संस्कृतियों का समावेशी संसार है। ये पाँच संस्कृतिक क्षेत्र है:-

1. निमाड़
2. मालवा
3. बुन्देलखण्ड
4. बघेलखण्ड
5. ग्वालियर (चंबल)

प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्र या भूभाग का एक अलग जीवंत लोकजीवन, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, कला, बोली और परिवेश है। जीवनशैली, साहित्य, कला, वाचिक परम्परा मिलकर किसी अंचल की सांस्कृतिक पहचान बनाती है।

मालवा ज्वालामुखी के उद्गार से बना पश्चिमी भारत का अंचल है जो वर्तमान में मध्यभारत प्रांत के पश्चिमी भाग में स्थित है। मालवा का अधिकांश भाग चंबल नदी तथा इसकी शाखओं द्वारा संचित है।

पूर्वांचल, दक्षिणांचल, पश्चिमांचल, एवं उत्तरांचल के बीच भारत के हृदयस्थल में विद्यमान मालवा प्रदेश कवियों का व्यवहार क्षेत्र रहा है। आधुनिक मालवा क्षेत्र, मध्यप्रदेश के पश्चिमी सम्भाग के अर्न्तगत आता है। मध्यप्रदेश में लघु चित्र शैली का प्रारम्भ मालवा से हुआ और माण्डु के यही चित्रित कल्पसूत्र इस शैली के प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। मालवा में 15वीं शतीं में माण्डु कल्पसूत्र वाली शैली दिखाई देती है जिसमें अपभ्रंश की जकड़न से मुक्ति दृष्टिगोचर होती है।

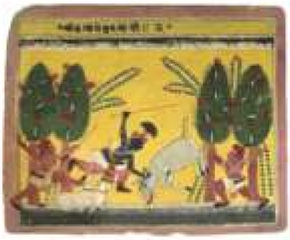

कृष्ण बाकासुर का वध करते हुए

मालवा महाकवि कालिदास की धरती है। यहाँ की धरती हरी-भरी, धन-धान्य से भरपूर रही है। मालवा का उक्त नाम मालव नामक जाति के आधार पर पड़ा इस जाति का उल्लेख सर्वप्रथम ई.पू. चौथी सदी में मिलता है, जब इस जाति की सेना सिकन्दर से युद्ध में पराजित हुई थी। ये मालव प्रारम्भ में पंजाब तथा राजपूताना क्षेत्रों में बस गयें। उन्होंने आकर दशार्ण तथा अवन्ति कोअपनी राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया।

मालवा चित्रकला 17वीं सदी में पुस्तक चित्रण की राजस्थानी शैली है जिसका केन्द्र मुख्यत: मालवा और बुन्देलखण्ड थे। भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से इसे कई बार ''मध्य भारतीय कालीन भी कहते चित्रकला है। यह मूलत: एक पारम्परिक शैली थी और इसमें 1636 की श्रंखला रसिकप्रिया और अमरुशतक जैसे प्रारम्भिक उदाहरणों के बाद ज्यादा विकसित होते नहीं देखा गया।पश्चिमी भाग, देवास, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम, मंदसौर आरि शामिल है। मालवा की चित्रकला परम्परा को प्रभावित किया। मालवा लघु चित्रों के विषय भी साहित्य व संयोग एवं वियोग की अवस्था पर आधारित है। मालवा लघु चित्रों की विषयवस्तु रामायण, महाभारत, भागवत् पुराण, कल्पसूत्र, रसवेली, रसिकप्रिया, लौरचन्द्रायन, रागमाला आदि पर आधारित है। मालवा के लघु चित्रों में आधुनिक संयोजन के सभी तत्वों का मिश्रण है। चित्रत्रि आयामी न होकर द्विआयामी है। चेहरे के बाहर निकलती बड़ी-बड़ी आँखे, कोणाकार चेहरे, सामान्य कद की स्त्री-पुरुष आकृतियाँ, विशद प्रतीक विधान तथा सोने की भरमार इन कल्पसूत्र चित्रों की विशेषता है।

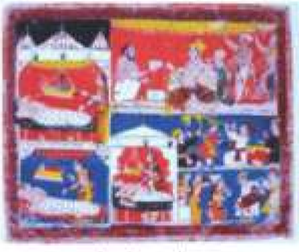

राम एवं उनके भाइयों का जन्म

छोटा पटल, पटल का विभाजन, एक खाने में एक अलग प्रसंग का चित्रांकन, चटक आधारभूत रंगों का व्यापक इस्तेमाल लोककला शैली के तत्वों का समावेश और भावप्रवण चेहरे मालवा के लघु चित्रों की पहचान है।

मालवा चित्रकला में बिल्कुल समतल कृतियाँ, काली और कत्थई

भूरी पृष्ठभूमि, ठोस रंग पर उभरी आकृतियों और रंगों में चित्रित वास्तुकला के प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है। इस शैली का सबसे आर्कषक गुण है। इनका आदिम लुभावनापन और सहजबालसुलभ दृष्टि है।इस शैली के अर्न्तगत बने चित्रों में चटकदार सीमित 'लाल, पीला, काला' रंग का प्रयोग किया गया है। इन चित्रों में अत्यन्त चटकदार रंगों का प्रयोग हुआ है।

गौतम बुद्ध से पहले सम्पूर्ण उत्तरी भारत महाजनपदों में विभक्त था। जैन साहित्यों के अनुसार मालवा की सीमा के अर्न्तगत अवन्ति या मालवा उनमें से एक महाजनपद था। 6वीं शताब्दी ई.पू. से पहले अवन्ति मालवा के इतिहास के बारे में कोई खास जानकारी नहीं है। डी. अ. भंडारकर के मतानुसार 6वीं सदी ई.पू. अवन्ति राज्य दो भागों में विभक्त था-

1. उत्तरी अवन्ति - राजधानी - उज्जयिनी, तथा
2. दक्षिण अवन्ति - राजधानी - महिष्मति।

6वीं सदी ई.पू. वीतिहोत्र नामक वंश ने हैहक राजवंश को हटाकर अवन्ति में अपनी राजनीतिक सत्ता की स्थापना की। परन्तु तुरन्त बाद ही प्रद्योतों के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। प्रद्योत वंश के अभ्युदय के साथ यहाँ के इतिहास के बारे में साक्ष्य मिलने शुरु हो जाते हैं।-

प्रद्योत वंश
नन्दों के अधीन मालवा
मौर्ययुगीन मालवा
जनपदकालीन मालवा
शुंग काल में मालवा
सतवाहन कालीन मालवा
मालवा में शकों का शासन
नंद वंश कालीन मालवा
गुप्तकालीन मालवा
समुद्रगुप्त का शक विजय
रामगुप्त
चन्द्रगुप्त द्वितीय
कुमारगुप्त
स्कन्दगुप्त
वर्द्धन वंश
गुप्तोत्तरकालीन मालवा
परवर्ती गुप्तकालीन मालवा
पुष्यभूतिवंश
प्रद्योत वंश

आज से 600 वर्ष पूर्व लोकनायक कबीर ने लिखा था, देश मालवा गहर गंभीर, डग-डग रोटी, पग-पग नीर। तब से लेकर अब तक इन शब्दों को इतनी बार दोहराया गया कि ये शब्द स्वयं इतिहास का हिस्सा बन गये। लेकिन आज मालवा की हालत डग-डग नीर के स्थान डग-डग पीर हो गयी है। नीर पानी के स्थान पर पीर-पीड़ा का संकेत कबीर ने अपनी वाणी में तभी दे दिया था। कालजयी साहित्यकास ने दूर दृष्टि से जो कुछ युग सत्य को देखा और लिखा था उसकी प्रासंगिकता आज और भी बढ़ गयी है।

बांगड़ देश लूवन का घर है,
तहं जिनि जाहं दाझन का डर है।
सब जग देखों कोई न धीरा,
परत धूरी सिर कहत अबीरा।
न तहां सरवर न तहां पाणी,
तहां सतगुरु न साधु वाणी।
देश मसलवा गहर गंभीर,
डग-डग रोटी, पग-पग नीर।
कहै कबीर धरत मन माना,
गूंगे का गुड़ गूंगै जाना।

वर्तमान में जहाँ मालवा और रेगिस्तान का सम्बन्ध है आज की परिस्थिति में मालवा की स्थिति रेगिस्तान जैसी बनती जा रही है।

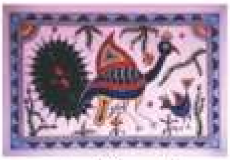
मधुबनी चित्रकारी

लोककला युगान्तर से चली आ रही है। लोककला का मानव जीवन के इतिहास से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है जो सभ्यता के साथ प्रारम्भ हुई और उसके साथ चलती चली रही है। लोककला जन साधारण की सहज अभिव्यक्ति का ही एक स्वरुप है। यह कलाएँ लोक मानस से प्रेरणा व पोषण पाती है एवं उसी को प्रतिबिम्बत करती है तथा हमारी संस्कृति का संवर्धन करने के साथ ही लोक मानस को जीने का साहस प्रदान करती है।

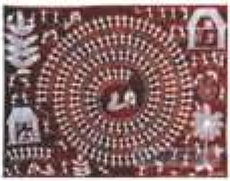
बरली (लोककला)

लोककला में चटक, सपाट रंगों का आधारभूत व्यापक प्रयोग देखा जा सकता है व लोककला में प्रकटीकरण सरल व स्पष्ट होता है। यह कला इतनी सरल व स्पष्ट होती है कि इसे समझना बहुत आसान है। लोककला का विकास समाज के परम्परागत विचारों विश्वासों आस्थाओं और रीतिरिवाजों पर आधारित है। लोक चित्रकला आदिम कला का ही स्वरुप है। यहाँ लोक शब्द का तात्पर्य

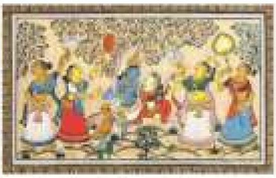

पटचित्र (लोककला)

सामान्य जीवन है। इसमें जन्म से मृत्यु तक सारी गतिविधियाँ आ जाती है। लोककलाऐं हमारे देश में लोक परम्पराओ संस्कृति का दर्पण है।

लोक संस्कृति का अहम भाग है लोककला। भैगोलिक स्थितियाँ लोक चित्रों के रंग संयोजन को प्रभावित करती है। लोक संस्कृति में चित्रों की प्राचीनता भाषा से भी प्राचीन है।भारत की ग्रामीण उडीसा लोक चित्रकारी के डिजाइन बहुत ही सुन्दर व आर्कषक है जिसमें धर्मिक और आध्यात्मिक चित्रों को उभारा गया है। भारत की सर्वाधिक प्रसिद्ध लोकचित्र कलाएँ हैं बिहार की मधुबनी चित्रकारी, उड़ीसा राज्य की पटचित्र, आन्ध्रप्रदेश की निर्मल चित्रकारी और इसी तरह लोक के अन्य रुप हैं। लोक संस्कृति में विभिन्न रंगों का प्रयोग हुआ है। ये रंग मानव की भावनाओं को भी व्यक्त करते है। मोटे तौर पर सफेद् रंग पवित्रता, स्वच्छता, शान्ति, तेजस्विता, व सत्व का, लाल रंग रजस, सर्वाधिक उत्तेजक व आकर्षक और काला तमस का प्रतीक होता है। लाल रंग अग्नि और ओज का द्योतक है, पीला फूल के गुणों को दर्शाता है। नीला रंग आकाश का है जो शान्ति, माधुर्य, ईमानदारी, आशा और लगन का व्यापक और सुखद् रंग है। हरा रंग प्रकृति में व्याप्त है, इस कारण समृद्धि और आनन्द् का प्रतीक तथा तटस्थ व ताजगी प्रदान करने वाला है। पीले और लाल रंगों के मिश्रण से बना नारंगी रंग वैराग्य का दर्शाता है, जबकि लाल और नीले वर्ण बैंगनी रजस जो कि राजसी रंग दर्शाता है। जो समृद्धि, वैभव व शौर्य का प्रतीक है।

वर्तमान में भारतीय लोककला अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर स्थापित होकर लोकप्रिय हो चुकी है क्योंकि भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता के साथ आध्यात्मिकता के भाव भी जुड़े है। इसमें सदैव से मानव कल्याण एवं हृदय तत्व की प्रधानता का भाव भी है। सर्वे भवन्तु सुखिन: का भाव लोक संस्कृति का आधार है।

भारतीय संस्कृति मूलत: आध्यात्मिक है। आध्यात्मिकता में सफेद् रंग का विशेष महत्व होता है। जैसा कि बताया जा जुका है यह पवित्रता, स्वच्छता, शान्ति, तेजस्विता व सत्व का प्रतिक है भारतीय संस्कृति में अध्यात्म के साथ उत्सवधर्मिता को भी सम्मिलित किया गया है। इसी कारण प्रसन्नतादायक पीले रंग को हिन्दू लोक संस्कृति में विशेष स्थान दिया गया है। वैसे तो चौक पूरना एक प्रथा जो कि सभी वर्गों में प्रचलित है, साथ ही भारत के हर कोने में भी इसका चलन है। चौक पूरने में पीला रंग शुभ माना जाता है। इसके लिए हल्दी के साथ एपन (पिसा हुआ चावल के आटे का घोल) से गोबर से लिपि हुई भूमि पर बनाया जाता है। जिसमें ब्रहमा, विष्णु, महेश को चित्रित किया जाता हैं।

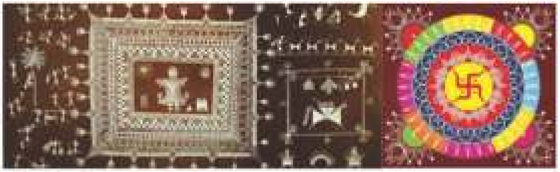

महाराष्ट्र की लोक चित्रकारी रंगोली (अल्पना)

भारत के हर प्रदेश में कला की अपनी एक विशेष शैली और पद्धति है जिसे लोककला के नाम से जाना जाता है। लोककला के अलावा भी परम्परागत कला का एक अन्य रुप है जो अलग-अलग जनजातियों और देहात के लोगों में प्रचलित है। अपने परम्परागत सौंदर्य भाव और प्रामाणिकता के कारण भारतीय लोककला की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सम्भावना बहुत प्रबल है। भारत की ग्रामीण लोक चित्रकारी के डिजाइन बहुत ही सुन्दर हैं जिसमें धार्मिक और आध्यात्मिक चित्रों को उभारा गया है। मालवा शैली के इन चित्रों में समय एवं वातावरण का विषयानुरुप सफल चित्रण दर्शनीय है। जिसमें लोककला के तत्व दृष्टिगोचर होते है।लोककला शैली के तत्वों को समावेश और भावप्रवण चेहरे मालवा के लघु चित्रों की पहचान है। मालवा कला लोककला जो शास्त्रीय बन्धनों से मुक्त है इसी कारण इसकी ऐतिहासिक परम्परा का अपना अलग रुप है। मालवा लघु चित्रण में लोककला के तत्व में काव्य और कलाओं को एक ही धरातल पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की गयी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *अविनाश बहादुर शर्मा- भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली*
2 *उपाध्याय एवं शर्मा- भारत में जनजातीय संस्कृति, मध्यप्रदेश ग्रन्थ अकादमी, भोपाल*
3 *वाचस्पति गैरोला- भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, इलाहाबाद,1972.*
4 *हरिहरनिवास, द्विवेदी एवं विनयगोविन्द-मध्यभारत का इतिहास भाग-एक, ग्वालियर,1956.*
5 *उपाध्याय, भगवत् शरण- भारतीय कला का इतिहास, नई दिल्ली, 1984.*
6. *www.wikipidia.org.com*
7. *www.google.com./malwa+miniature+painting.*

भारतीय लोकतंत्र में उत्तरदायित्व

डॉ. उमा बड़ोलिया
व्याख्याता, राजकीय जानकी देवी बजाज कन्या महाविद्यालय, कोटा
डॉ. राजमल मालव
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

shodhshree@gmail.com

राजनीतिक दर्शन में 'दायित्व' तथा 'उत्तरदायित्व' में तकनीकी रुप से भेद है। जब कोई जिम्मेदारी या कर्त्तव्य व्यक्ति द्वारा राज्य के प्रति निर्वहन किया जाए, तब वह 'दायित्व' कहलाता है, किन्तु जब वह राज्य द्वारा व्यक्ति के प्रति निर्वहन किया जाए, तब वह 'उत्तरदायित्व' कहा जाता है। अर्नेस्ट बार्कर ने राजनीतिक कर्त्तव्यों का विभाजन इसी प्रकार द्विविध रुप में किया है।

यह सामान्य और सर्वमान्य आदर्श है कि दायित्व व उत्तरदायित्व-इन दोनों को परस्पर व्यावर्तक नहीं, अपितु पूरक होना चाहिए। यह अपेक्षा तो उचित है, किन्तु क्या यह आदर्श यथार्थ भी बन पाया है?

हम राज्य के त्रिविध रुपों (एकतन्त्र, अल्पतन्त्र व लोकतन्त्र) को देख चुके हैं व इसके साथ शासन के भी विविध रुपों (राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र, धर्मतन्त्र, सैन्यतन्त्र, निरंकुशतन्त्र, लोकतन्त्र आदि) की न्यूनाधिक चर्चा कर चुके हैं। यदि एक प्रणाली के रुप में देखा जाए, तो लोकतन्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी तन्त्र में स्पष्टत: जनता के प्रति उत्तरदायी होने की व्यवस्था नहीं है। अन्य से भी अपेक्षा ऐसी की जा सकती है और की जाती भी रही है किन्तु उसमें राज्य के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने का न तो विधान होता है और न ही संविधान। आदर्श रुप में या सिद्धान्त रुप में हम इसे स्वीकार भी कर लें, तो यह व्यवहार में सिद्ध होता प्रतीत नहीं होता। दूसरी ओर लोकतन्त्र में उत्तरदायित्व को न केवल आदर्श के रुप में स्पष्ट स्वीकृति मिली है, बल्कि तमाम विसंगतियों के बाद भी बड़ी सीमा तक इसे चरितार्थ भी किया जा सका है।

अब्राहम लिंकन ने लोकतन्त्र के लोककल्याणकारी राज्य के आदर्श को ध्यान में रखते हुए उसे जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा किया जाने वाला शासन कहा था किन्तु व्यवहार में यह शासन न तो समस्त जनता के द्वारा होता है और प्राय: न ही समस्त जनता के लिए हो पाता है। शासन द्वारा शासित तो सभी हो ही जाते हैं, किन्तु उसका कल्याणकारी शासन सब तक समान रुप से नहीं पहुँच पाता।

शासन या राज्य के उत्तरदायित्व को रुपांकित करने के लिए सामान्यतया तीन मानकों का प्रयोग होता है-

(i) जनता के मौलिक अधिकारों की संवैधानिक व व्यावहारिक स्थिति
(ii) जनता की शासन तक पहुँच तथा शासन की पारदर्शिता
(iii) शासन द्वारा जनता के लिए किए जाने वाले विकास एवं कल्याणकारी कार्य

किसी देश के संविधान में मौलिक अधिकारों का पर्याप्त प्रावधान होना उसके लोकोत्तरदायी होने का प्रथम चरण है। राज्य को सर्वप्रथम यह सुनिश्चित करना होता है कि उसकी संप्रभुता की आन्तरिक सीमा किस स्तर तक मौलिक अधिकारों को अक्षुण्ण रखती है। राज्य यदि अपने नागरिकों के लिए कुछ करना चाहता है, तो सर्वप्रथम वह यह तय कर ले कि वह सामान्य स्थिति में जनता के सिर पर सवार नहीं रहेगा। इसी से जुड़ी दूसरी बात है कि राज्य इतना अशक्त भी न हो जाए कि वह जनता के पैरों-तले आ जाए और बहुसंख्यक या

प्रभुत्वशाली वर्ग अल्पसंख्यक व दुर्बल वर्ग को दमित-शोषित करने लगे। इसे उसे न्याय तथा कानून-व्यवस्था से नियमित करने में भी सक्षम होना चाहिए।

द्वितीय महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्य स्वयं जनता तक किसी सीमा तक पहुँचता है और जनता को स्वयं तक कितना पहुँचने देता है। लोकतन्त्र की सबसे बड़ी शक्ति संभवत: इसी स्तर पर परिलक्षित होती है और उसे अन्य शासनतन्त्रों से पृथक करती है। शासन की और शासन तक पहुँच के साथ तीन अन्य तथ्य भी आवश्यक होते हैं-शासन की सक्रियता, कुशलता तथा पारदर्शिता। इसमें अन्तिम तत्व आज सर्वाधिक प्रमुख माना जाता है और इसी कारण सूचना के अधिकार को मौलिक तो नहीं किन्तु विधिक अधिकार बनाया जा चुका है।

तृतीय महत्वपूर्ण मानक है-शासन द्वारा किये जा रहे विकास व कल्याण के कार्य। शासन निर्बलों और निर्धनों को आवश्यक सहायता या सम्बल ही नहीं उपलब्ध कराता, अपितु सक्षम और योग्यों की क्षमता को विकासार्थ प्रयुक्त करने हेतु वातावरण भी तैयार करता है।

लोकतन्त्र में भी, जो कि लोक के प्रति उत्तरदायित्व को ही आधार मानकर स्थापित होता है। जो व्यक्ति लोकोन्मुख होकर सत्ता प्राप्त करता है, वह शीघ्र ही लोकोत्तर होने का प्रयास करने लगता है। लेनिन ने ठीक ही कहा है-जतना तब तक छली जाती रहेगी, जब तक कि वह यह न जान ले कि सत्ता का एक अलग वर्ग ही होता है। सर्वहारा की तानाशाही करने वाले साम्यवाद के प्रतिष्ठाता ने स्वयं इसका आशय शायद पूरा नहीं समझा। जनता पर शासन तो सभी करते हैं, पर व्यवहारत: जनता के द्वारा शासन कम ही हो पाता है और इसी कारण वह जनता के लिए शासन नहीं बन पाता।

समाधान क्या है?

यदि हम लोक के प्रति उत्तरदायित्व को राज्य की अनिवार्यता बनाते हैं, तो यह एक उचित आदर्श है। पर कब, किसने ऐसे आदर्श नहीं रखे। जब कौटिल्य ने राजा के लिए या प्लेटो ने कुलीनों के लिए या रूसो ने लोकनायक के लिए आदर्श बनाए थे, तब क्या कोई कमी रखी थी? आदर्श धराशायी हुए।

फिर क्या स्वयं लोक को ही उसका उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है? अराजकतावादी तो ऐसा ही मानते हैं। उनके अनुसार कोई शासन सुशासन हो ही नहीं सकता, जब तक कि स्व-शासन न बन जाए। पर यदि लोक स्वयं शासन में समर्थ होता, तो इतने दिनों तक राज्य का शासन चल ही कैसे पाता? शासन की आवश्यकता केवल विधि की व्यवस्था के लिए ही नहीं है, बल्कि व्यवस्थित विकास के लिए भी है अन्यथा तमाम अशक्तजन अपने हाल पर छोड़ दिये जा सकते हैं।

यदि दायित्व राज्य की संप्रभुता का आधार है, तो उत्तरदायित्व जनता का अधिकार है। दोनों अन्तर्बद्ध पहलू हैं। कर्त्तव्य की अपेक्षा दोनों से ही होनी चाहिए। यही नियन्त्रण और सन्तुलन का सिद्धान्त है। एक का अनुत्तरदायी होना दूसरे को अराजक या निरंकुश बना सकता है।

यह तो सैद्धान्तिक बात हुई, व्यवहार में ऐसे सन्तुलन का आधार क्या है? इसके लिए हम उत्तरदायित्व के मानकों से ही सूत्र निगमित कर सकते हैं और जो सूत्र प्रबल होकर उभरते हैं वे आज लगभग संपूर्ण विश्व में प्रभुत्व में आ चुके हैं-

(i) विधि का शासन
(ii) लोकतन्त्र
(iii) लोक नियोजन

15 अगस्त 1947 को भारत अंग्रेजी दासता से स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता के सुख की अनुभूति भारतीयों के लिए अनोखी थी साथ ही एक नये संघर्ष व चुनौतियों का बोझ हमारे सिर पर था। यह संघर्ष था न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, एकता, बंधुत्व के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था का संचालन।

26 जनवरी 1950 को दुनिया के सबसे बड़े लिखित संविधान को हम भारत के लोगों ने स्वीकार कर अपने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्थाओं के लोकतान्त्रिक मार्ग को चुना। हमने गरीबी पिछड़ापन, निरक्षरता, शोषण, असमानता, अभाव बेरोजगारी की समाप्ति के स्वप्न देखें। क्षेत्र, भाषा, धर्म सम्प्रदाय के आधार पर बिखराववादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगेगा यह आशा भारतीय जनता को थी।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के ग्राम स्वावलम्बन, पिछड़ो का विकास, दरिद्रनारायण की पूजा, स्वदेशीकरण, राजनीति से जनसेवा जैसे सिद्धातों व विचारों को व्यवहार में प्राप्त किया जा सकेगा ऐसी उम्मीद जनता को थी। लोकतन्त्र के पश्चिमी मॉडल को अपनाकर संविधान में अप्रत्यक्ष निर्वाचन व वयस्क मताधिकार के आधार सरकार का गठन करने, लोकप्रभुत्ता, लोकनिर्णय की शक्ति के आधार पर लोककल्याणकारी व लोकोत्तरदायी सरकार के निर्णय के प्रावधान किये गये। जनता के सर्वांगीण विकास व महत्व को सर्वोपरि मानकर एक सहअस्तित्व परक समाज की स्थापना का उद्देश्य रखा गया।

शासक व शासितों के समान हित पर आधारित शासन प्रणाली में सार्वजनिक मताधिकार, विधि के समक्ष समानता व जनता की प्रशासन में सहभागिता सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया। जिससे भारत में एक श्रेष्ठ नैतिक सामाजिक आधारशिला रखी जा सके इसके लिए विशेषाधिकारों को समाप्त कर भारतवासियों में अवसर की समानता मूल अधिकारों के अन्तर्गत की गई।

यह माना गया कि ऐसा करके आधुनिक युग के तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूल्य मानवतावाद, लिंग समानता और धर्म निरपेक्षता स्वत: प्राप्त हो सकेंगे। जनता अपने लोकतान्त्रिक अधिकारों का

प्रयोग इतनी योग्यता से करेगी कि राष्ट्रीय व सामाजिक हित में संविधान द्वारा स्थापित उच्च आदर्शों को प्राप्त किया जा सकेगा और संसद की सम्प्रभुशक्ति का उपयोग राष्ट्रनिर्माण, व्यक्ति-निर्माण में किया जा सकेगा। सत्ता का दुरुपयोग न हो इसके लिए निष्पक्ष, नियतकालिक चुनाव, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति स्वतन्त्र न्यायपालिका, स्वायत्त कार्यपालिका के प्रावधान संविधान में किये गये। कहने का तात्पर्य है कि संविधान निर्माण के समय जो भी सपने भारत को लेकर नेतृत्व के मन मस्तिष्क में थे पूर्ण रुप से प्राप्त करने के लिए कोई भी चूक न हो ऐसी व्यवस्था की गई। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को आधुनिक लोकतान्त्रिक उदारवादी साधनों व संस्थाओं से लैस किया गया।

मॉरिस जोन्स के अनुसार भी देश की राजनीतिक व्यवस्था की अभिव्यक्ति तीन प्रमुख प्रकृतियों, आधुनिक, रुढ़िवादी और सन्त परम्परा में होती है। औपचारिक संरचनाओं, संस्थाओं जिसमें नेतृत्व का व्यवहार प्रमुख है में आधुनिक प्रकृति देखने को मिलती है, वहीं सामाजिक संरचनाओं में रुढ़िवादी प्रवृत्ति देखने में आई है। जैसे ही राजनीति में आधुनिक औपचारिक संस्थाओं पर रुढ़िवादी व गैर राजनीतिक तत्व सक्रिय होने लगती है भारतीय राजनीति अपना विशिष्ट रुप लेने लगती है। वैसे भी बिना सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवस्था से जुड़े राजनीतिक व्यवस्था के विकास की दिशाएँ खुलती नहीं है।

आज भारतीय राजनीति उपरोक्त दोनों प्रकृतियों के कारण संक्रमण के दौर से गुजर रही है। यद्यपि भारत में सत्ता हस्तान्तरण के समय कभी भी रक्तपात या अन्य गड़बड़ी नहीं हुई है और खुद भारतीयों को अपने आपको दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र मानने में गर्व अनुभव होने लगा है, लेकिन ऐसी बहुत सी बातों को गिनवाया जा सकता है जो भारत में लोकतन्त्र के साथ-साथ चल रही है और लोकतन्त्र उनके साथ चल रहा है।

एक मुख्य बात यह है जिसे देखकर लगता है कि प्रामाणिक और भरोसेमन्द लोगों का संसद में पहुँचना कम हो गया है बल्कि न के बराबर है जिससे भारतीय संसद व लोकतन्त्र की गरिमा को गहरी चोट पहुँची है। आज देश की राजनीतिक व्यवस्था जिन चुनौतियों का सामना कर रही है उनमें से एक आदर्श जनप्रतिनिधियों का अभाव एक संकट है, चुनौती है। देश की राजनीति में एक दो को छोड़कर अन्य कोई भी जनप्रतिनिधि ऐसा नहीं है जो जनता में सरकार व्यवस्था व राजनीति के प्रति विश्वास जगा सकें।

प्रथम आम चुनाव से लेकर आज तक प्रत्येक राजनैतिक दल व नेता देश को बचाने के लिए जनता का आवहान करता आया है। गरीब उन्मूलन असमानता को समाप्त किया जाना, ग्रामों का विकास स्वावलम्बन, महिलाओं के समान अधिकार, रोजगार विस्तार, आरक्षण, धर्म निरपेक्षता, आतंकवाद का खात्मा जैसे मुद्दों को चुनावी शस्त्रों के रुप में उपयोग किया जाता रहा है। आजादी के 69 वर्ष बीत ताने पर भी यहीं सब मुद्दे विकास के साथ जोड़कर आज भी राजनीति के केन्द्र बिन्दु है। तो क्या हमने अभी तक कुछ नहीं किया।

यदि हमारी संसद और विधानसभाओं से जूते चप्पल सहित हिंसात्मक कार्यवाहियाँ, विरोध, काम का बहिष्कार, सदस्यों का निलम्बन आम बात हो गई है। सरकारें देश के उद्योगपतियों के फायदों के लिए उनके इशारे पर कार्य करती है, आये दिन न्यायपालिका की अवमानना की जाती है अपराधियों का बोलबाला राजनीति में बढ़ता जा रहा है उन पर निर्णय सालों साल नहीं होता, राष्ट्रीय बजट का महत्वपूर्ण भाग नेताओं की सुरक्षा व यात्राओं पर व्यय होता है, हर तरह से सक्षम नेताओं को बिजली, पानी, मकान, चिकित्सा जैसी सुविधायें नि:शुल्क की जाती हो तो उन सब व्यवस्थाओं का क्या अर्थ रह गया जो सत्ता के दुरुपयोग को रोकने विशेषाधिकार को खत्म कर समानता स्थापित करने के लिए संविधान निर्माताओं ने की थी।

विकास के नाम पर राजनीति करने वाले राजनेता क्या यह देख पाने में सक्षम है कि आज भी भारत में निरक्षर वयस्कों की संख्या 28.7 करोड़ है और 19 करोड़ से ज्यादा लोग कुपोषित है। 30 करोड़ लोगों के पास बिजली नहीं पहुँची है और 1/3 भारतीयों के पास शौचालय सुविधा नहीं है। हमारी शहरी और ग्रामीण आबादी का बड़ा हिस्सा आज भी बुनियादी सेवाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधाओं से महरुम है। सार्वजनिक परिवहन जनता के लिए पर्याप्त नहीं है। छोटे किसान, जिनके पास सभी को सेहतमंद भोजन देने की क्षमता है, वे खुद उन कृषि और व्यापार नीतियों के तले दबकर मर रहे है जो कॉर्पोरेट मुनाफे को तरजीह देती है। अब तक ऐसे 3 लाख किसान मर चुके है। आज भी देश में गरीबी एक बड़ी समस्या है।

राजनीति कर देश में उलटी प्राथमिकताएँ घोषित करना दूसर समस्या है जिससे जनता को भ्रमित किया जाता है। सभी क्षेत्रों में नीतियों को लागू करने में राजकाज बुनियादी जरुरत है, नौकरशाही की अड़चने और नकारात्मक रवैया अच्छे से अच्छे इरादे की कब्र खोद सकता है। इसी से जुड़ी तीसरी समस्या है भ्रष्टाचार की समस्या यह देश को अन्दर से खोखला करने वाली समस्या है जो दिनों दिन बढ़ती व नये-नये रुप ग्रहण करती जा रही है।

आज भ्रष्टाचार नेताओं व सरकारी कर्मचारियों तक सीमित नहीं है बल्कि समाज के हर वर्ग में समान रुप से पनपा है। पॉलिटिक्स एण्ड इकोनॉमिक्स रिस्क कंसल्टेंसी की रिपोर्ट में भारत, इन्डोनेशिया, फिलीपीन्स ये तीन देश सबसे भ्रष्ट देश माने गये है।

भ्रष्ट जनप्रतिनिधियों ने सरकारी धन को निजी धन की तरह दुरुपयोग किया तथा जनता के हर नाम के लिए दक्षिणा लिये बिना नहीं किया। आज भ्रष्टाचार का आवश्यकता से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। कई नेताओं व अधिकारियों के पास इतना धन है जिसकी कल्पना भारत का आम आदमी नहीं कर सकता।

भारतीय राजनीति का एक पहलू यह भी है कि केन्द्र सरकार के पास 10 नये राज्य बनाने के प्रस्ताव है इनमें पूर्वांचल, बुंदेलखण्ड, उत्तरप्रदेश, विदर्भ, सौराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा, गोरखालैंण्ड, मिथिलाचंद (बिहार) सम्मिलित है।

वर्तमान में अच्छे दिन लाने के वादे के साथ सत्ता में आई मोदी सरकार प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सपने के भारत की सरकार बनती

नजर आ रही है, उम्मीद जगी थी कि यह सरकार देश में विद्यमान आंतरिक असंतोष को बातचीत के जरिए दूर करने का प्रयास करेगी लेकिन केन्द्र सरकार की एकला चालों और निर्णय थोपने की संस्कृति अब राज्यों में भी फैलती जा रही है।

सरकार की विदेशी निवेश पर बढ़ती निर्भरता भी चिंता का विषय है। महात्मा गाँधी ने कहा था ''हमने विदेशों के दान के बजाय हमारी धरती जो कुछ पैदा कर सकती है उस पर निर्वाह कर सकने की योग्यता और साहस होना चाहिए अन्यथा हम एक स्वतन्त्र देश की तरह रहने के हकदार नहीं होंगे।

मोदी जी का कहना है कि भारत की सारी समस्याओं का हल विकास से निकलता है, देश में बढ़ती सामाजिक, आर्थिक असमानताओं, बढ़ता जातिवाद और साम्प्रदायिकता जैसी चुनौतियों पर खड़ा नहीं उतरता। कहीं उनका मेन इन इंडिया का नारा ग्रीक त्रासदी समीप ले जाने वाला न हो जायें।

हमें देश के वर्तमान परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में चार बातों पर चिंतन मनन करना होगा।

(1) राष्ट्र निर्माण व्यक्ति निर्माण

(2) स्वाधीनता आन्दोलन

(3) शासक व शासित वर्ग

(4) संवैधानिक व्यवस्था का संचालन

उपरोक्त बातों पर विचार करते हुए भारतीय राजवैज्ञानिकों को भारतीय समाज के संदर्भ में उत्तरदायित्व पूर्ण अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है।

भारतीय समाज व राज्य को राष्ट्रवाद के सहारे एक बार फिर से समतापरक व सहअस्तित्ववादी देश के रुप में एकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है। आवश्यकता है एक नई समझ जो हमारे इतिहास के साथ सहज रुप से जुड़ाव रखती हो, विकसित करने की। भारतीय सभ्यता की पहचान को नष्ट होने से बचाना होगा इसके लिए उस वर्ग के गठबन्धन को तोड़ना होगा जो भारतीय आम जनता के आत्मविश्वास को कुचलने के लिए तत्पर है।

हमें सोचने पर विवश होना है कि प्रजातान्त्रिक समाजों में यह प्रतिनिधि वर्ग कहाँ से आता है? क्या वह जनाकांक्षा की स्वस्थ अभिव्यक्ति है या दबाव समूहों व शक्ति केन्द्रों के समीकरणों की उपज है, किन गुणों के चलते जनप्रतिनिधि बनें, जनाकांक्षा कैसे बनती है, क्या यह ठोस समय से आकार लेती है या फिर आकर्षक प्रचार, वेशों की चमक, प्रलोभन मुद्दों पर हावी होते है। आखिर कब लोकतन्त्र जीवन शैली के रुप में प्रतिष्ठित हो पायेगा।

वास्तव में स्वतन्त्रता के बाद भारतीय संविधान को आत्मार्पित करके भारतीय नागरिक विकास के पथ पर चलते-चलते अपने कर्त्तव्यपालन और कर्म से दूर होकर केवल अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्षरत है। वह व्यवस्था का हिस्सा बनने के बजाय व्यवस्था से बहुत कुछ अपने लिए चाहता है। नियत कालिक चुनावों में उसी नेतृत्व को अपना समर्थन दे देता है। जिससे अपने लिए बहुत कुछ पाने की आशा उसे दिखती है और अगले पाँच सालों वह सब सहता है जो बहुमत के नाम पर उसे दिया जाता है।

जनता को सोचना समझना होगा कि बहुमत की सरकारें भी डर कर रेत में सिर घुसा सकती है। जनप्रिया नेतृत्व के विकल्प के साथ उसने संकल्पवान होने की गारंटी भी जनता को लेनी होगी। डिजिटल इंडिया से सरकारी प्रणाली में सुधार होने, चीजों की बर्बादी रुकने, लोगों की पहुँच बढ़ने और नागरिकों के अधिकार सम्पन्न बनने की संभावना है।

शुद्ध भोजन, पानी, बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएँ, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा भारत को जिन चीजों की दरकार है, उनकी सूची बहुत लम्बी है। कुछ असाधारण नागरिकों ने इन्हें आमजनता तक पहुँचना अपनी जिंदगी का लक्ष्य बनाया है और ऐसे देशवासी ही हमारे देश की सूरत बदलने के लिए काफी है।

अन्ततः यह कहना उचित है कि शासन के रथ और सारथि पर बहुतों को आपत्ति हो सकती है, किन्तु इसमें शायद ही किसी को आपत्ति होगी कि उसके दायित्व और उत्तरदायित्व रुपी पहिए जैसे भी हों, पर हों समान ही।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *तथ्य भारती जून 2015 पेज नं. 20*
2. *हिन्दुस्तान टाईम्स*
3. *टाईम्स ऑफ इण्डिया*
4. *समाज एवं राजनीति दर्शन डॉ. कृष्णकान्त पाठक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।*
5. *भारत का राजनीतिक संकट, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली*
6. *भारत की राजनीति के महाप्रश्न, सूर्यकान्त बाली, नवोदय सेल्स दरियागंज, नई दिल्ली*
7. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के नूतन क्षितिज, हरगोविन्द पन्त, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर*
8. *भारतीय राजनीति के नये आयाम, श्रीमति राजेश जैन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर*
9. *भारतीय राजनीति सिद्धान्त और व्यवहार, मान चन्द खण्डेला, पोइन्टर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर*
10. *बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वतन्त्र भारत, कृष्णवीर डोण, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर*

समकालीन परिदृश्य में गाँधी जी की प्रासंगिकता

डॉ. मुनेश कुमार पाठक
व्याख्याता, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुनस्यारी, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

गाँधी जी का संपूर्ण जीवन दर्शन है क्योंकि वे विचारक, नेता, समाज सुधारक ही नहीं वरन् राजनीतिक चिंतन को नया मोड़ देने वाले सक्रिय मनीषी थे। वे एक ऐसे दीप थे जिसका प्रकाश समस्त विश्व में फैला। उन्होंने सत्य, अहिंसा और सेवा के आदर्शों को स्थापित कर मानवीय न्याय और विकास के उच्चतम मूल्यों को पोषित किया। गाँधी जी ने पवित्र लक्ष्यों को प्राप्त करने में कभी भी साधनों की पवित्रता से समझौता नहीं किया। जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए उन्होंने शरीर को ही प्रयोगशाला बनाया था और परिणामों को मानवीय विकास के लिए अनिवार्य नैतिक कर्त्तव्यों के रुप में परिभाषित किया। उनके लिए सिद्धान्त और व्यवहार में कोई विरोधाभास नहीं था और न ही सार्वजनिक और निजी जीवन में कोई विभेद था। आइन्सटीन ने लिखा है, ''संभव है आगे आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही यह विश्वास कर सकें कि इस प्रकार का हाड़-मांस का मनुष्य कभी इस धरती पर विचरण करता था।''[1] संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गाँधीवादी विचारधारा केवल लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व ही नहीं करता बल्कि मानव अस्तित्व और प्रगति की बुनियादी जरुरतों को स्वीकार करता है। इस दृष्टि से गाँधी जी के विचार हमारे लिए पथ प्रदर्शक के साथ-साथ प्रासंगिक भी हैं।

गाँधी जी एक ऐसे सशक्त भारत का निर्माण करना चाहते थे जो प्रेम, सत्य और अहिंसा पर आधारित हो, विषमता के स्थान पर समानता हो और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो। उन्होंने इन नवीन व्यवस्था को सर्वोदय की संज्ञा दी थी अर्थात् सभी का उदय हो और सभी विकास करें। जाति, धर्म, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेदभाव न हो। अर्थात्, ''सर्वेभवन्तु सुखिन: सर्वे भवन्तु निरामया:'' में गाँधी जी का अटूट विश्वास था। उनका मानना था कि मानव जाति को इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भले ही लम्बी प्रतिक्षा करनी पड़े, पर इसने मनुष्य को अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने की कुँजी दी है और अंधकारपूर्ण जीवन में आशा का द्वार खोल दिया है।

गाँधी जी एक ऐसा आदर्श राज्य बनाना चाहते थे जिसमें हिंसा और क्रांति का कोई स्थान नहीं होगा। उस राज्य में केन्द्रीकरण की भावना भी नहीं होगी तथा समाज में शोषण और वर्ग रहित व्यवस्था होगा। उन्होंने ऐसी व्यवस्था को रामराज्य कहकर पुकारा। गाँधी जी के अनुसार, ''मेरे सपनों के राम राज्य में राजा और रंक, दोनों के अधिकार समान हैं।''[2] ऐसे राज्य में राज्य का कार्य क्षेत्र कम से कम होगा। गाँधी जी के अनुसार वही राज्य पूर्ण है जहाँ पर जनता पर कम से कम शासन हो। उनका मानना था कि व्यक्ति और राज्य नैतिकता के अधीन रहेंगे जिससे न तो व्यक्ति अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर सकेगा और न ही राज्य अपनी सत्ता का। अधिकारों से अधिक, कर्त्तव्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है उनके विचार से कर्तव्य पालन के बिना किसी भी अधिकार की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि व्यक्ति में कर्तव्य पालन की क्षमता नहीं है तो अधिकार प्राप्त हो जाने पर भी उसकी रक्षा करने में असमर्थ होता है और इसलिए प्राप्त किया हुआ अधिकार व्यर्थ हो जाता है।

गाँधी जी ने धर्म को जीवन और समाज का आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किया। गाँधी जी के अनुसार धर्म का आशय किसी संकुचित धर्म से नहीं वरन् सामंजस्य स्थापना से है। गाँधी जी के अनुसार धर्म का वही अर्थ है जो नैतिकता का है। नैतिकता का सार मानव-मात्र की सेवा करना है। मानव जीवन से पृथक किसी भी धर्म के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। गाँधी जी की मान्यता थी कि धर्म मनुष्य के जीवन की धुरी है तथा राजनीति अपनी तमाम बुराइयों के बावजूद भी मुनष्य के लिए अनिवार्य है। इसलिए उन्होंने राजनीति में आध्यात्मीकरण किया। उनके अनुसार राजनीति शक्ति के लिए संघर्ष नहीं है बल्कि मानव की सेवा का साधन है। एक राजनीतिज्ञ जो मानव सेवा से प्रेरित होगा, वह धार्मिक हुए बिना नहीं रह सकता। इस प्रकार न्याय और सत्य की स्थापना होगी क्योंकि धार्मिक व्यक्ति किसी भी प्रकार के अत्याचार, शोषण और अन्याय को नहीं अपनाएगा। गाँधीजी के शब्दों में, ''मेरे लिए धर्म रहित राजनीति की कोई सत्ता नहीं। राजनीति धर्म का साधन मात्र है। धर्म रहित राजनीति मूल्य का जाल है क्योंकि उसमें आत्म का हनन होता है।''[3]

गाँधी जी की लोकतंत्र में गहरी आस्था थी। गाँधी जी ने लिखा है, ''लोकतंत्र के बारे में मेरी धारणा है कि इसमें सबसे निर्बल व्यक्ति को भी वही अवसर प्राप्त होने चाहिए जो कि सबसे शक्तिशाली को प्राप्त होते हैं।''[4] इस दृष्टि से वे सत्ता के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली को गाँव के लिए वे अधिक उपयुक्त समझते थे। वे चाहते थे कि स्वयं व्यक्तियों द्वारा ग्राम का शासन चलाया जाए, ग्राम पंचायतों से जिलों के प्रशासन अधिकारी चुने जाएँ, जिलों के प्रशासन के लिए प्रतिनिधि चुने और प्रांतीय प्रशासन देश के लिए प्रतिनिधि चुने। ऐसी व्यवस्था से बहुमत की तानाशाही स्थापित नहीं हो सकेगी।

गाँधी जी बुनियादी शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे तत्कालीन शिक्षा को व्यर्थ मानते थे। अत: उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास माना। इसलिए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो तथा विद्यार्थी को ऐसी दस्तकारी की शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे भविष्य में स्वावलम्बी बन सकें। अर्थात् वे अपनी जीविका का उपार्जन सरलता से कर सकें। गाँधी जी के शब्दों में, ''मैं बच्चे की शिक्षा का श्री गणेश उसे कोई दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा का आरम्भ करे उसी क्षण उसे उत्पादन के योग्य बनाकर करूंगा। इस प्रकार प्रत्येक स्कूल आत्म-निर्भर हो सकता है।''[5]

गाँधी जी के विचार में स्वदेशी आत्म-निर्भर, स्वावलम्बी और जरुरत आधारित आर्थिक अवधारणा है जिसमें पूर्ण रोजगार 'अधिकतम लोगों के द्वारा उत्पादन' पर आधारित होता है। यह व्यक्तिगत और सामाजिक सरोकारों में समन्वय स्थापित करता है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में स्वदशी एक विकल्प प्रस्तुत करता है। स्वदेशी का मतलब हर क्षेत्र में आत्मनिर्भरता से है। गाँधी जी के अनुसार, ''स्वदेशी की भावना का अर्थ है हमारी वह भावना जो दूर को छोड़कर अपने समीपवर्ती प्रदेश का ही उपयोग करना सिखाती है।''[6] उनकी मान्यता थी कि लोगों को अपने देश में ही बनी वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए ताकि यहाँ की अर्थव्यवस्था मजबूत हो। इसका सांकेतिक अर्थ यह भी था कि लोग अपनी संस्कृति और आजादी के साथ लगाव अनुभव करें ताकि वे यूरोपीय विचारों और संस्थाओं का अंधानुकरण न करने लगे। उनका यह पक्का विश्वास था कि किसी भी देश का विकास उसकी अपनी संस्कृति और मूल्यपरम्परा के अनुरुप ही हो सकता है, दूसरी संस्कृतियों की नकल से नहीं।

गाँधी जी ने शरीर श्रम के सिद्धान्त के अंतर्गत यह शिक्षा दी कि प्रत्येक मनुष्य को उपयुक्त शारीरिक श्रम करके अपने उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में योग देना चाहिए। इससे न केवल लाखों-करोड़ों लोगों की आवश्यकताएँ पूरी करने में सहायता मिलेगी बल्कि समाज में श्रम की गरिमा भी बढ़ेगी। उन्होंने हर तरह के श्रम को बराबर महत्व देने की वकालत की ताकि ऊँच-नीच आधारित किसी भी तरह की कोई श्रेणीबद्ध संरचना न बन पाए और मानव मात्र को महत्व मिले।

गाँधी जी के लक्ष्यों और कार्यक्रमों में साम्प्रदायिक एकता और सद्भावना का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। गाँधी जी के शब्दों में ''साम्प्रदायिक एकता का अभिप्राय केवल हिन्दू और मुस्लिम एकता से ही नहीं वरन् उन सब लोगों के बीच एकता से है जो विश्वास करते हैं कि भारत उनका घर है, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय को मानने वाले हों।''[7] गाँधी जी के अनुसार साम्प्रदायिक एकता न केवल ऐतिहासिक जरुरत है बल्कि एक सामाजिक जरुरत भी हैं। यदि किसी भी देश में साम्प्रदायिक एकता को हानि पहुँचाती है तो उस देश का विकास लम्बे समय के लिए बाधित हो जाएगा और देश प्रगति नहीं कर सकेगा।

गाँधी जी ने महिलाओं को सशक्त बनाने का पुरजोर समर्थन किया। उनका मानना था कि जब तक महिला सशक्त नहीं होगी देश का विकास नहीं हो सकता। यदि सामाजिक न्याय को हासिल करना है तो महिलाओं की समानता को स्वीकार किया जाना बेहद जरुरी है। उन्होंने नारी शिक्षा पर बल देते हुए कहा कि जैसे-जैसे वे शिक्षित होती जाएंगी वे दिखाई देने वाली असमानताओं के प्रति अधिक जागरुक और संवेदनशील होती जाएंगी। गाँधी जी ने दहेज प्रथा का कारगर तरीके से विरोध किया। उन्होंने दहेज प्रथा के बारे में कहा कि इस प्रथा में एक अंतर्निहित बुराई है। यह मानवीय सम्बन्धों को कमतर करने के साथ ही उसका स्वरुप भी बिगाड़ देती है और सम्बन्ध गंभीर रुप से प्रभावित होते हैं। गाँधी जी ने महिला के उच्च चारित्रिक गुणों का वर्णन किया है और उसे प्रेम, मूक, तपस्या, श्रद्धा, दयालुता की मूर्ति बताया है। गाँधी जी के शब्दों में, ''स्त्री को अबला कहना उसको लज्जित करना है। यह पुरुष का स्त्री के प्रति

अन्याय है। यदि बल का अर्थ पशु बल है तो निश्चित ही स्त्री, पुरुष से निर्बल है क्योंकि उसमें पशुता कम है। किन्तु यदि बल का अर्थ नैतिक बल है तो स्त्री, पुरुष से ऊँची है।''[8]

गाँधी जी गाँवों के विकास के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि यदि हमें भारत का विकास करना है तो सबसे पहले गाँवों में बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। गाँधी जी के अनुसार, ''ग्राम स्वराज में मेरी कल्पना है कि वह एक ऐसा पूर्ण गणतंत्र होगा जो अपनी मुख्य आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसी पर निर्भर नहीं रहेगा बल्कि परस्पर सहयोग से काम लेगा।''[9] कुल मिला करके गाँधी जी पंचायती राज व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि ग्राम पंचायतों को अपने अधिकारों का प्रबन्ध और प्रशासन करने के सभी अधिकार दे दिये जाए। इनके मामले में राष्ट्रीय और प्रान्तीय सरकारें का हस्तक्षेप और नियंत्रण कम हो जाएगा। स्वयं गाँधी जी ने कहा था, ''आजादी नीचे से शुरु होनी चाहिए। हर एक गाँव में प्रजातन्त्र या पंचायत राज होगा इसका मतलब यह है कि हर एक गाँव को अपने पाँव पर खड़ा रहना होगा- अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होगी ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके।''[10]

गाँधी जी राष्ट्रवादी थे, उनका राष्ट्रवाद में अटूट विश्वास था। राष्ट्रवाद का अर्थ है राष्ट्र के प्रति निष्ठा। कुल मिलाकर राष्ट्रवाद वह प्रवृत्ति है, जो जीवन के मूल्यों के तारतम्य में राष्ट्रीय व्यक्तित्व को एक उच्च स्थान प्रदान करती है। गाँधी जी के राष्ट्रवाद के चिंतन में अपने राष्ट्र को किसी अन्य राष्ट्र को हेय दृष्टि से देखना से बढ़कर है। व्यक्ति की पहचान राष्ट्र से होती है न कि राष्ट्र की पहचान व्यक्ति से होती है। वे राष्ट्र के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने के पक्ष में थे। उनका राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रवाद से प्रेरित था।

गाँधी जी युद्ध के प्रबल विरोधी थे। उनका मानना था कि इतिहास इस बात का प्रमाण है कि युद्ध ने विश्व में नफरत की भावना को आगे ही बढ़ाया है। अत: इस स्थिति में परस्पर सहिष्णुता की भावना को प्रचारित करना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार, ''जब तक युद्ध के कारणों को नहीं समझा जाएगा और उनको नष्ट नहीं किया जाएगा तब तक युद्ध को रोकने के सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे। क्या आधुनिक युद्धों का प्रमुख कारण दुनिया की तथा कथित दुर्बल प्रजातियों के शोषण के लिए मची अमानवीय होड़ नहीं है''[11] इसलिए यह आवश्यक है कि शांति का मार्ग अपनाया जाए। शांति का मार्ग नि:स्त्रीकरण, अहिंसा, प्रेम पर टिका है।

गाँधी जी पर्यावरण के प्रति अधिक संवेदनशील दिखाई देते हैं। मानव और प्रकृति के बीच सम्बन्धों को लेकर गाँधी जी के विचार, ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की वैदिक अवधारणा से प्रेरित है जिसमें पृथ्वी को जीवों का बहुत बड़ा परिवार माना गया है। औद्योगिक विकास के कारण पृथ्वी के जीवन पर सिर्फ दबाव ही नहीं पड़ रहा है, यह खतरे में भी पड़ गया है। सौर प्रणाली में तमाम भौतिक और रासायनिक परिवर्तन हो रहे हैं, जो गंभीर चिंता का विषय बने हुए हैं। गाँधी जी इस बात पर बल देते थे कि धरती के संसाधनों को समूची मानवता के लिए ईश्वर का उपहार समझकर मौजूदा और आने वाले पीढ़ियों को ध्यान में रखकर इस्तेमाल किया जाना चाहिए। प्रकृति में संतुलन बहुत ही नाजुक चीज है और पारिस्थितिकी तंत्र में थोड़ी से गड़बड़ी प्राकृतिक संतुलन को तबाह करने के लिए पर्याप्त है। गाँधी जी के शब्दों में, ''प्रकृति अपने नियमों के तहत निरंतर कार्य करती है। लेकिन लोग नियमित रुप से उनका उल्लंघन करते हैं।''[12] उनका मानना हैं कि हमें प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हुए तथा संसाधनों को अनावश्यक इस्तेमाल से बचाते हुए पर्यावरण को स्वच्छ रखना हमारी जिम्मेदारी है।

मूल्यांकन

वास्तव में गाँधी जी उस मनोस्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें विचार स्वयं जीवन पद्धति बन जाता है। एक ऐसी जीवन पद्धति जिसमें भूत, वर्तमान, भविष्य की चिंताओं को मानवीय इच्छा शक्तियों और संवेदनाओं से संतुलित करते हुए सद् मूल्यों को जीवन का आधार बनाया जाए। गाँधी दर्शन दरअसल चिंताओं और समाधान का दर्श है जिसमें मूल्य और नैतिकता समाहित हैं। सभी विषयों का समावेश है जिसका आधार मूल्य और नैतिकता है जो मानवता की परिचायक है।

भारतीय जीवन पद्धति पर गाँधीजी के विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा हैं। भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षाणिक आदि पक्षों पर गाँधी के सिद्धान्त की व्यावहारिक झलक दिखलाई पड़ती है। भारतीय संविधान के भाग-3 (मौलिक अधिकार), भाग-4 (राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त) और भाग-4(क) के अंतर्गत मौलिक कर्तव्य, अन्त्योदय, सर्वोदय से जुड़े ग्रामीण विकास (भारत निर्माण), पूरा (PURA), शिक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, मनरेगा या फिर वर्तमान का मेक इन इण्डिया, नमामि गंगे और भारत स्वच्छता अभियान सभी में गाँधी जी का मार्गदर्शन हमारे पास है।

समाजिक विचारों के रुप में गाँधी जी धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, क्षेत्र पर आधारित भेदभाव के विरोधी थे। आज भी गाँधी बन्धुआ श्रम, मधनिषेध, नक्सलवाद, अलगाववाद, आतंकवाद, स्त्री शक्तिहीनता सभी को दूर करके स्वस्थ्य माहौल बनाने का प्रयास निरंतर चल रहा है। जहाँ तक आर्थिक विचारों का प्रश्न है गाँधी जी का सर्वोदय काम कर रहा है। बड़े-बड़े औद्योगिक घराने अपने सामाजिक दायित्वों को ट्रस्टीशिप की भाँति निभा रहे है।

यदि वैश्विक प्रभाव को देखें तो गाँधी जी के विचारों की स्वीकार्यता लगातार बढ़ रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ गाँधी जी के दर्शन की मूल भावना का ही द्योतक है। पर्यावरण के प्रति वैश्विक चिंता हो या फिर मानव के प्रति जीओ और जीने दो के मानवाधिकारों के बुनियादी सोच का अंतर्राष्ट्रीय अंहिसा दिवस या शांति पुरस्कारों की व्यवस्था सभी पर गाँधी जी एक साथ प्रतिदीप्त होते हैं।

निरंतर इस संघर्षशील वातावरण में गाँधीवाद सहयोग और शांति का वह मार्ग है जिस पर चलकर ही वैश्विक संकटों और समस्याओं की चुनौतियों को सम्यक हल तक पहुँचा जा सकता है। गाँधीवाद मानवीय जीवन के सम्यक विकास की रुपरेखा के प्रस्तुतीकरण की वह मानसिकता है, जो एक साथ स्वतंत्रता, समानता, भातृत्व, न्याय के लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व ही नहीं करती है बल्कि मानव अस्तित्व और प्रगति की बुनियादी जरुरत है। सत्य और अहिंसा पर आधारित गाँधी जी का व्यवहारिक दर्शन, परमार्थ एवं त्याग की भावना का संचार कर उदारता, समता, करुणा, सहयोग, पारदर्शिता, सत्याग्रह, निर्मलता के मूल्यों को स्थापित करता है। आज संपूर्ण समाज पर अनियंत्रित विकास की प्रतिछाया शरीर, मन और आत्मा पर पड़ी है जिसने शांति और सुरक्षा की वृहद् पारीस्थितियों को जन्म दिया है। इन सभी समस्याओं का समाधान और संतुलन मात्र गाँधी जी के बताए मार्ग से ही संभव है। गाँधी जी के संसार में साध्य-साधन की पवित्रता, सत्य-अहिंसा, सम्यक धर्म-नैतिकता, शिक्षा, सेवा, सर्वोदय, अंत्योदय, कर्तव्य, अधिकार सभी को संतुलित और व्यवस्थित करने की एक मात्र असीम योग्यता है। इसलिए आज 21वीं सदी में गाँधी जी को लेकर नए प्रयोग की जरुरत है क्योंकि उपभोग के नियमन और इच्छाओं के नियंत्रण का उनका संदेश मानवता के भविष्य की रक्षा के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *आइन्सटीन, अल्बर्ट द्वारा उद्धत अनिल दत्त मिश्र, ''गाँधी जी एक अध्ययन,'' पीयर्सन, 2012, पृष्ठ संख्या-250.*
2. *गाँधी, महात्मा, यंग इण्डिया, 13.10.1921, पृष्ठ संख्या-325.*
3. *गाँधी, महात्मा द्वारा उद्धत धर्मवीर चन्देल, ''गाँधी चिन्तन के विभिन्न पक्ष,'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2012, पृष्ठ संख्या-30.*
4. *गाँधी, महात्मा, ''मेरे सपनों का भारत,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-21.*
5. *गाँधी, महात्मा, ''ग्राम स्वराज्य,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-43.*
6. *गाँधी, महात्मा, '''ग्राम स्वराज्य,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-55.*
7. *गाँधी, महात्मा, यंग इण्डिया, 11.05.1921, पृष्ठ संख्या-148.*
8. *गाँधी, महात्मा, यंग इण्डिया, 21.07.1921, पृष्ठ संख्या-116.*
9. *गाँधी, महात्मा, ''मेरे सपनों का भारत,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-172.*
10. *गाँधी, महात्मा, ''पंचायत राज,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-08.*
11. *गाँधी, महात्मा, ''मेरे सपनों का भारत,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-216.*
12. *गाँधी, महात्मा द्वारा उद्धत धीरेन्द्र मोहन दत्ता, ''द फिलोसॉफी ऑफ महात्मा गाँधी,'' द यूनवर्सिटी ऑफ विस्कोंसिन, मैडीसन,1953, पृष्ठ संख्या-21.*

राजस्थानी साहित्य में संत जाम्भोजी : एक विवेचन

डॉ. सुमन यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस.एस.जैन सुबोध पी.जी. महाविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियों ने यहां के परम्परागत धर्मो तथा पंथों के उत्थान एवं विकास में विशेष भूमिका का निर्वहन किया है। प्रारम्भ में यहां वैदिक धर्म ही प्रचलित था। राजस्थान में मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व हिन्दू धर्म व जैन धर्म निर्विघ्न रुप से पल्लवित हो रहे थे। मुस्लिम आक्रमण के समय हिन्दू धर्म का विभाजन कई सम्प्रदायों में हो गया था। राजस्थान के अनेक शासकों ने तो शक्ति (देवी) को अपनी आराध्य या कुलदेवी के रुप में स्वीकार कर लिया था और उसकी अराधना कई स्वरुपों में की जाती थी जैसे - बीकानेर में करणी माता, जोधपुर में नागणेची, मेवाड़ में बाण माता और जयपुर में शिला माता इनकी कुल देवियों के रुप में पूजा की जाती है।

राजस्थान में हिन्दु धर्म भी अनेक सम्प्रदायों में विभक्त था और इन विभिन्न सम्प्रदायों में धर्म के नाम पर कोई विवाद नहीं होता था, परन्तु मुसलमानों के राजस्थान में प्रवेश करते ही यहां के धार्मिक वातावरण में हलचल मच गयी। मुस्लमानों ने अजमेर को अपना केन्द्र बनाया और उसके बाद राजस्थान के अन्य भागों में फैलना प्रारम्भ कर दिया। मन्दिरों की प्रतिष्ठित मूर्तियों को खंडित कर हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाई। इस प्रकार के संक्रमण काल में राजस्थान में भी कई सन्तों का आविर्भाव हुआ।

इन सन्तों ने अपने धार्मिक विचारों के माध्यम से हिन्दू और मुस्लमानों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने सगुण तथा निर्गुण भक्ति में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। धार्मिक क्षेत्र में इस प्रकार के परिवर्तनों के समावेश को धार्मिक आन्दोलन की संज्ञा दी जाती है। भक्ति आन्दोलन के पल्लवन-प्रस्फुटन का सर्वाधिक उपयुक्त उर्वर क्रिया क्षेत्र प्रतीत होता है। पारम्परिक पौराणिक भक्ति के पूर्व परिचित वातावरण में सन्तों ने भक्ति आन्दोलन को गतिशील बनाया। दिग्भ्रमित मानव का दिशा निर्देशन किया। उन्हें जीवन जगत की उहापोह से निकाल कर 'श्रम-साधना' के लिए प्रेरित किया।
राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन को प्रारम्भ करने का प्रयास पंच पीरों द्वारा किया गया। यथा -

पाबू हरबू रामदेव मांगलिया मेहा।
पांचू पीर पधारिज्यो गोगाजी जेहा।।

राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन भक्ति आन्दोलन की प्रबलता, राजस्थान का इस्लाम का प्रवेश, हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में समन्वयात्मक भावना का उदय, नवीन साहित्यिक ग्रन्थों का सृजन आदि के कारण प्रारम्भ हुआ।

राजस्थान की संत परंपरा और साहित्य अपूर्व शौर्य और आत्मबलिदान की गाथाओं से सुवासित, राजस्थान की ऋषि-मनीषी वाणी गंध से अलंकृत एवं आपूरित उस रस मग्न जनचेतना का अलभ्य सूत्र है जिसने पांच सौ साल निरंतर निरक्षर जनमानस को जीवनामृत का दान दिया और सबको समान रुप से समरसता के विशाल प्रांगण में बाँधकर रखा है। वीरगाथा काल की नैराश्मयी अवसान बेला पर संतों ने नये

क्षितिज प्रस्तुत किये जिसको छूने के लिये समाज की सामूहिक चेतना को जगाया, नेतृत्व दिया, छूआछूत और जातीय भेदभाव से परे सात्विक संतोष बांटा और सामाजिक समरसता का राम रसायन तैयार कर वह अमृत बिखेरा जो उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक फैल गया। राजस्थान के सांस्कृतिक पुर्नजागरण में सार्थक भूमिका निभाते हुए भारतीय समाज को टूटने और बिखरने से बचाया।

राजस्थान की संत संस्कृति का उर्वर क्षेत्र परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में सुधार और परिष्करण का प्रभाव था। व्यक्ति को समाज का आधार मानकर उसके जीवन के नैतिक मानकों की पुन: प्रतिष्ठा इस संस्कृति की श्रेष्ठ उपलब्धि थी। यह मात्र संयोग नहीं माना जा सकता कि जांभोजी ने विश्नोई संप्रदाय, हरिदास निरंजनी ने निरंजनी संप्रदाय, लालदास ने लालदासजी संप्रदाय की स्थापना की थी। स्पष्ट है कि उक्त संप्रदाय हिंदू, जैन, बौद्ध तथा इस्लामी संप्रदायों के स्थानापन्न नहीं माने जा सकते। वस्तुत: वह किसी भी वर्गजातीय व सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों और भेदभावों से पूर्णत: परे है। इसका आधार ''हरि को भजे सो हरि का होई'' था। इन संप्रदायों में दीक्षित होने के साथ अनुयायियों के पूर्ववर्ती वर्ग जाति भेद समाप्त हो जाते थे। इन संप्रदायों के सिद्धान्त तथा आचरण संहितायें शास्त्रोक्त तथा प्रमाणवाद से आवृत्त नहीं थीं। संतों ने जाति व्यवस्था को सुरक्षित रखते हुए वैचारिक क्रान्ति के द्वार पर समाज को खड़ा किया था। इसका मूल आधार समरसता, समभाव और समन्वय था।

राजस्थान का संत साहित्य, भारतीय संत परंपरा में और विशेषत: हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में एक अमूल्य निधि है। जितने संत मध्ययुग में राजस्थान में हुए, जितने पंथ व संप्रदाय चले वे सभी इसके प्रमाण और परिणाम में सिद्ध हैं। इन संतों ने व्यापक रुप से भारतीय लोक मानस को प्रेरित और प्रभावित किया। राजस्थान का संत साहित्य हमारी जातीय संस्कृति का, उसके समन्वयात्मक स्वरुप का स्वच्छ दर्पण है। यही कारण है कि उसमें अनेक धारायें स्वत: प्रवाहित होती हैं।

साहित्य मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने का काम करता है। साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य को पशुतुल्य बताया गया है क्योंकि वह साहित्य ही है जो मनुष्य को न केवल मानव अपितु पशु-पक्षियों और सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के सुख-दुख से उसका साक्षात्कार करवाकर उसे संवेदनशील बनाता है। कविता मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। एक संवेदनशील मनुष्य दूसरे प्राणी के सुख, दु:ख और पीड़ा से परिचित होकर उसकी सहायता करने के लिए तत्पर होता है और कविता मानव को संवेदनशील बनाने का यह पुनीत कार्य अनवरत रुप से करती आ रही है।

साहित्य समाज का दर्पण है। वह एक दर्पण की भांति समाज की समस्त घटनाओं का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है साहित्य जनहित की सोच का प्रतीक है साहित्य जनता की भावनाओं को समाज के सम्मुख प्रस्तुतकर युग परिवर्तन की शक्ति को समाहित किये हुए रहता है यही कारण है कि राजस्थान को जहां एक ओर अपने युद्धवीर सूरमाओं पर गर्व है वहीं अपने साहित्यकारों, इतिहासकारों, कवियों एवं संतो पर भी गर्व हैं जिन्होंने अपनी कलम एवं वाणी के द्वारा जनाक्रोश को समझते हुए अपनी निरपेक्ष, व्यावहारिक एवं ऐतिहासिक सूझबूझ का परिचय देते हुए जनाक्रोश से जनचेतना का मार्ग प्रशस्त किया।

साहित्य एक काल में किसी एक जाति अथवा समाज की सम्पूर्ण संस्कृति की उपज होता है। उसके वर्तमान में संस्कृति का समूचा इतिहास निहित होता है। किसी समय में साहित्य संस्कृति के उस समय के आत्मदर्शन को और अस्मिता-बोध को प्रतिबिम्बित करता है। राजस्थान का सन्त-साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। राजस्थान की भक्ति परम्परा प्राय: निर्गुण, सगुण तथा योग-परक तत्व के समन्वय समावेश से युक्त रही है। मध्यकालीन भक्ति परम्परा के प्रमुख साधनात्मक पंथों, मार्गो का विकास हुआ था जिनमें प्रमुखत: विश्नोई संप्रदाय, जसनाथी संप्रदााय, निरंजनी, दादूपंथी, लालदासी एवं रामस्नेही आदि संत-संप्रदायों के अतिरिक्त पूर्ववर्ती सिद्ध-नाथ तथा लोक-देवता परम्परा के प्रति भी जनमानस का समान रुप से समर्थन, संरक्षण और श्रद्धाभाव अभिव्यक्ति होता रहा है। सन्तों ने अपनी पूर्ववर्ती साधना-पद्धतियों, दार्शनिक विचारधाराओं को परिष्कृत करके युगानुरुप परिस्थितियों के आलोक में अपने आत्मदर्शन को प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति की वह परम्परा जो वैदिक काल से निरन्तर प्रवाहमान थी। उसे युगानरुप परिपुष्ट करने में इन सन्तों का विशेष योगदान रहा है। डॉ. रामकुमार वर्मा भी निर्गुण साधकों की रचनाओं को सन्त काव्य मानते हुए कहते हैं, ''यद्यपि भक्ति संबंधी काव्य रचना करने वाले सभी कवियों को सन्त कहा जा सकता है तथापि सन्त काव्य उन्हीं कवियों की वाणियों का नाम है जिन्होंने निर्गुण सम्प्रदाय के अन्तर्गत काव्य-रचना की है।'' प्राय: निर्गुण कवियों को सन्त और सगुण कवियों को भक्त कहने की परम्परा चल पड़ी है। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने भी कबीर, दादू, रैदास आदि निर्गुण कवियों को ही सन्त कहा है और हिन्दी-साहित्य में 'सन्त' शब्द निर्गुण सन्त साधकों के लिए आरुढ़ हो गया है। निर्गुण काव्यधारा, सन्त मत एवं सन्त-साहित्य पर्याय बन गये हैं। आज सन्त-साहित्य से तात्पर्य उन रचनाओं के समूह से है जिनकी रचना निर्गुण सन्त साधकों द्वारा हिन्दी या उसकी संबद्ध लोकभाषाओं अथवा बोलियों में की गई है। सन्त कबीरदास निर्गुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि रहे हैं। धर्म की रुढ़िवादिता और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध उत्तरी भारत में रामानन्द, कबीर, नानक, रैदास आदि सन्तों ने अपनी शिक्षाओं द्वारा जो एक सुधारवादी आन्दोलन प्रारंभ किया, उन्हीं से प्रेरणा लेकर राजस्थान में भी धन्ना व पीपा ने धार्मिक क्षेत्र में निर्गुणवादी एक नई विचारधारा

को जन्म दिया। धन्ना व पीपा के बाद जाम्भोजी, जसनाथजी, सन्त दादू, लालदास, चरणदास तथा रामस्नेही सम्प्रदाय के आचार्यो ने धर्म के आडम्बरों यथा व्रत, तप, उपवास, पूजा-पाठ, मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा करना, सन्यास लेना आदि तथा जाति-व्यवस्था का विरोध किया और मानव की समानता एवं ईश्वर की सर्व-व्यापकता का प्रचार करते हुए मानव-समाज को सहज जिज्ञासा और ध्यान के द्वारा उसकी उपासना करने तथा अन्तर्मुखी होकर नाम-स्मरण मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। इन सन्तों ने न तो गृहस्थी का परित्याग किया, बल्कि समाज में सक्रिय सदस्य के रुप में रहते हुए अपने आदर्शो से समाज को सुधारने की कोशिश की तथा अपने व्यक्तिगत जीवन से एक नया आदर्श उपस्थित किया, इसी कारण इनके विचार सभी वर्ग के लोगों को प्रभावित कर सके।

इस परम्परा को देखते हुए हम कह सकते हैं कि मध्यकालीन भारत में धर्म-सम्प्रदायों की विशाल परम्परा विद्यमान थी। सन्तों ने बड़े तटस्थ भाव से विभिन्न धर्मो एवं सम्प्रदायों की मान्यताओं एवं परम्पराओं का चिन्तन-मनन किया। व्यावहारिक दृष्टि से जनकल्याण हेतु उनकी उपयोगिता का विचार करके सभी धर्मो एवं सम्प्रदायों की ग्रहणशील मान्यताओं को स्वीकार करके तथा त्याज्य मान्यताओं का विवेकपूर्ण त्याग करके जनकल्याणार्थ धर्म का ऐसा स्वरुप प्रस्तुत किया जो सार्वभौमिक, सर्वकालिक एवं उदार दृष्टिकोण लिए हुए था। सन्तों का उद्देश्य कविता करना नहीं था। उन्होंने तो समाज का उद्बोधन करने के लिए, जन जीवन में चेतना लाने के लिए, रुढ़ियों-परम्पराओं को तोड़नें के लिए अपने क्रांतिकारी विचार समाज के समक्ष प्रस्तुत किये। उनका साहित्य जन-मानस का साहित्य है। वे लोक-धर्म के संस्थापक एवं संस्कृति के प्रतिष्ठापक बने। उनका साहित्य हिन्दू-मुस्लिम कर्मकाण्ड, ब्राह्याडम्बर, संकुचित आचार-विचार तथा रुढ़िग्रस्त दुराग्रहों से उठाकर मानवीय प्रेम की आधारशिला पर प्रतिष्ठित हुआ। संतों ने अपने युग की समग्र चेतना को आत्मसात कर उसे युगीन आधुनिक दृष्टि से सम्पन्न कर, समस्त अवनतिमूलक रुढ़ियों, अन्धविश्वासों का खण्डन कर मनुष्य के हाथ में सत्यासत्य को परखने का विवेक प्रदान किया। उनकी भाषा, उनकी लिपि, उनकी विचार पद्धति उनकी आस्था के शब्द वाणियों के माध्यम से सामान्य जन के पास पहुंचे। सन्तों ने व्यक्तित्व को पहचान कर परम्पराओं, मान्यताओं का अन्धानुकरण न करके स्वविवेक का परीक्षण करके सत्य को स्वीकार करने का विश्वास सर्वसाधारण में उत्पन्न किया।

मध्यकाल में राजस्थान में अनेक संत हुए जिन्होंने यहां के धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलन को गति प्रदान की। जिन्होंने हिन्दू तथा इस्लाम में प्रचलित आडम्बरों तथा रुढ़ियों का खंडन कर समाज के वास्तविक स्वरुप को समझने का निर्देश किया ऐसे सन्तों में जाम्भोजी का नाम सर्वप्रथम है। जिनका जन्म 1451 ई. में नागौर जिले के पीपासर नामक गांव में हुआ ये जाति से पंवार राजपूत थे। जाम्भोजी बाल्यावस्था से ही मननशील थे माता-पिता की मृत्यु के बाद जाम्भोजी ने अपना घर छोड़ दिया और सभा स्थल बीकानेर चले गए तथा वहीं पर सत्संग एवं हरिचर्चा में अपना समय गुजारते रहे। 1482 ई. में उन्होंने कार्तिक कृष्ण अष्टमी को विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की[1]

जाम्भोजी चिन्तनशील एवं मननशील थे उन्होंने उस युग की सांप्रदायिक संकीर्णता कुप्रथाओं एवं अन्धविश्वासों का विरोध करते हुए कहा था कि।

सुण रे काजी, सुण रे मुल्ला, सुण रे बकर कसाई।
किणरी थरपी छाली रोसी, किणरी गाड़र गाई।।
थवणा थूजै पहाड़ पूजै, वे फरमान खुदाई।
गुरु चेले के पाए लागे, देखोलो अन्याई।।

जाम्भोजी सामाजिक दशा को सुधारना चाहते थे, ताकि अन्धविश्वास एवं नैतिक पतन के वातावरण को रोका जा सके और आत्मबोध द्वारा कल्याण का मार्ग अपनाया जा सके। जाम्भोजी ने पवित्र जीवन व्यतीत करने पर बल दिया। ईश्वर के बारे में उन्होंने कहा।[2]

तिल मां तेल पोहप मां वास,
पांच पंत मां लियो परगास।

जाम्भोजी ने जाति भेद का विरोध करते हुए कहा था कि उत्तम कुल में जन्म लेने मात्र से व्यक्ति उत्तम नहीं बन सकता, उन्होंने कहा –

तांहके मूले छोति न होई।
दिल-दिल आप खुदायबद जागै,
सब दिल जाग्यो लोई।

जाम्भोजी 1526 ई. में तालवा नामक ग्राम में परलोक सिधार गये। उनकी स्मृति में विश्नोई भक्त फाल्गुन मास की त्रयोदशी को वहां एकत्रित होते हैं और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। जाम्भोजी की शिक्षाएं, सबदवाणी एवं उनका नैतिक जीवन मध्ययुगीन धर्म सुधारक प्रवृति के प्रमुख अंग हैं।[3]

जाम्भोजी द्वारा प्रवर्तित विश्नोई सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए 29 नियमों का पालन करना आवश्यक है इस संबंध में एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है-

उणतीस धर्म की आंकड़ी, हृदय धरियो जोय।
जम्भेश्वर कृपा करें, बहुरि जभ न होय।।

जाम्भोजी की शिक्षाओं पर अन्य धर्मो का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने जैन धर्म से अहिंसा एवं जीवन दया का सिद्धान्त तथा इस्लाम धर्म के मुर्दो को गाड़ना, विवाह के समय फेरे न लेना आदि सिद्धान्त ग्रहण किये हैं। उनकी शिक्षाओं पर वैष्णव सम्प्रदाय तथा नानकपंथ का भी बड़ा प्रभाव है।[3]

वे शिल्पियों के पैरों तले दबाकर बनाई जाने वाली काष्ठ और पाषाण की प्रतिमाओं का पूजन करने और उनसे मोक्ष मांगने वालों को

अत्यल्प बुद्धि वाला बताते थे।[5]

विश्नोई सम्प्रदाय मूर्तिकला में विश्वास नहीं करता है। अत: जाम्भोजी के मन्दिर और साथरियों में किसी प्रकार की मूर्ति नहीं होती है। इस सम्प्रदाय के लोग जात पांत में विश्वास नहीं करते है। श्री जम्भसार लक्ष्य से इस बात की पुष्टि होती है कि सभी जातियों के लोग इस संप्रदाय में दीक्षित हुए। उदाहरण स्वरुप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तेली, धोबी, खाती, नाई, डमरु, भाट, छीपा, मुसलमान, जाट एवं साई आदि जाति के लोगों ने मंत्रित जल (पाहल) लेकर इस सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की।[6]

राजस्थान में जोधपुर तथा बीकानेर राज्य में बड़ी संख्या में इस सम्प्रदाय के मंदिर और साथरियां बनी हुई हैं। मुकाम (तालवा) नामक स्थान पर इस सम्प्रदाय का मुख्य मन्दिर बना हुआ है। इस सम्प्रदाय के अन्य तीर्थस्थानों में जांझेलाव, पीपासर, संभराथल, जांगलू, लोहावर, लालासर आदि तीर्थ विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। इनमें जांभोलाव विश्नोइयों का तीर्थराज तथा संभराथल मथुरा और द्वारका के सदृश माने जाते हैं।[7] विश्नोई सम्प्रदाय का राजस्थान से बाहर भी प्रचार हुआ पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में बने मंदिर इस बात की पुष्टि करते हैं। जाम्भोजी की शिक्षाओं का विश्नोइयों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इसीलिए इस सम्प्रदाय के लोग न तो मांस खाते हैं और न शराब पीते हैं। इसके अलावा वे अपनी ग्राम की सीमा में हिरण या अन्य किसी पशु का शिकार भी नहीं करने देते हैं।[8] इस सम्प्रदाय के सदस्य पशु हत्या किसी भी कीमत पर नहीं होने देते हैं। बीकानेर राज्य के एक परवाने से पता चलता है कि तालवा के महंत ने दीने नामक व्यक्ति से पशु हत्या की आशंका के कारण उसका मेढ़ा छीन लिया था।[9]

ग्रामीण पंचायतों के अलावा बड़े पैमाने पर भी विश्नोइयों की एक पंचायत होती थी, जो जांभोलाव एवं मुकाम पर आयोजित होने वाले सबसे बड़े मेले के अवसर पर बैठती थी। विभिन्न मेलों के अवसरों पर लिये गये निर्णयों से पता चलता है कि इस पंचायत की निर्णीत बातें और व्यवस्था का पालन करना सभी के लिए अनिवार्य था और जो व्यक्ति इसका उल्लंघन करता था, उसे विश्नोई समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था।[10]

विश्नोई गांव में कोई भी व्यक्ति खेजड़े या शमी वृक्ष की हरी डाली नहीं काट सकता था। इस सम्प्रदाय के जिन स्त्री पुरूषों ने खेजड़े और हरे वृक्षों को काटा था, उन्होंने स्वेच्छा से आत्मोसर्ग किया था। इस बात की पुष्टि जांभोजी संबंधी साहित्य से होती है।[11]

इस प्रकार जाम्भोजी एवं उनके विश्नोई सम्प्रदाय समाज में प्रचलित विभिन्न आडम्बरों को दूर करने का प्रयत्न करते हुए एवं नैतिक नियमों पर बल देते हुए राजस्थान में धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि उन्होंने अनेक परम्परागत मान्यताओं का समर्थन किया तथापि समाज प्रचलित रुढ़ियों और अन्धविश्वासों पर निर्मम प्रहार करते हुए नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके समाज के नैतिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण में सुधार करने के सतत-सशक्त प्रयास किए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *श्री जम्भ गीता, पृ. 274*
2. *डॉ. एस.एल. नागौरी एवं कान्ता नागौरी, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 108*
3. *जाम्भोजी रा गीत, बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ. 19-20, जी.एन. शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, पृ. 229*
4. *रिपोर्ट ऑन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजपूताना स्टेट्स, 1875-76 ए.डी. रिपोर्ट मर्दुम शुमारी, राजस्थान मारवाड़, पृ. 93-94, दी कास्ट ऑफ मारवाड़, 1894 ए.डी., राजपूताना गजेटियर, वोल. 3ए, मुंशी सोहनलाल, तवारिख राज्य श्री बीकानेर, 1890 ई., ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग-प्रथम, किशोर सिंह, बार्हस्पत्य : करनी चरित्र।*
5. *जंभ गीता, सबद 71, पृ. 274*
6. *साहबराम, श्री जंभसार, पृ. 273-74.*
7. *पीपासर की ख्यात, बस्ता नं. 22, ग्रथांक, 31*
8. *चारण रामनाथ, रत्नू, इतिहास राजस्थान, पृ. 11*
9. *परवाना, मह कथा, कौंसिल राज श्री बीकानेर, संवत् 1930, पोष सुदी 14*
10. *लिखित मुकाम मेले की (हस्तलिखत), संवत् 1872, फाल्गुन सुदी*
11. *श्री जंभसार साखी संग्रह, पृ. 11, 14*

श्रीमद् भागवद् गीता के त्रियोगों का मूलाधार : मनस्तत्त्व

प्रतिभा किरण
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

shodhshree@gmail.com

श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा अगाध और असीम है। यह सम्पूर्ण विश्व में अभिनन्दनीय, पूज्यनीय एवं वन्दनीय ग्रन्थ है। पूर्व और पश्चिम विद्धत्समूह यह स्वीकार करते हैं कि गीता केवल भारतीय धार्मिक विचार ही नहीं है, अपितु भारतीय दार्शनिक विचारणा का मधुमय प्रेरक, वाचक-सूचक, निर्देशक, उपदेशक, सुदृढ़ संदेशी निष्कर्षित तत्त्व है। गीता के संदेश सार्वभौमिक सिद्ध हुए हैं।

उल्लेखनीय है -

सर्वोपनिषदों गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधिर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतम् भरतम्।।

अर्थात् गीता उपदेशामृत ''उपनिषदों का सारतत्त्व है। इसमें मानव को मानव बनाने से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक की जीवन यापन पद्धति की सद्प्रेरणा संग्रहित है।

मानवीय जीवन यापन पद्धति में गीता का दर्शन मात्र सिद्धान्त नहीं है बल्कि उसका जीवन में पूर्ण उपयोग भी है। श्रीमद्भगवद्गीता एक अलौकिक विचित्र ग्रंथ है। इसमें साधक के लिए आवश्यक सामग्री का समावेश है चाहे वह किसी भी देश का, किसी भी वेश का, किसी भी सम्प्रदाय का, किसी भी वर्ण का, किसी भी आश्रम का, कोई व्यक्ति क्यों न हो।

इसका कारण यह है कि इसमें किसी समुदाय-विशेष की निन्दा या प्रशंसा नहीं है, प्रत्युत वास्तविक तत्त्व का ही वर्णन है, वास्तविक तत्त्व (परमात्मा) वह है, जो परिवर्तनशील प्रकृति तथा प्रकृतिजन्य पदार्थों से सर्वथा अतीत और सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि में नित्य-निरन्तर एकरस-एकरुप रहने वाला है। जो मनुष्य जहाँ है और जैसा है, वास्तविक तत्त्व वहाँ वैसा ही पूर्णरुप से विद्यमान है। परन्तु परिवर्तनशील प्रकृतिजन्य वस्तु एवं व्यक्तियों में राग-द्वेष के कारण उसका अनुभव नहीं होता है। सर्वथा राग-द्वेष रहित होने पर ही उसका अनुभव किया जा सकता है।

समता अर्थात् नित्ययोग का अनुभव कराने के लिए गीता में तीन योग-मार्गों का वर्णन किया गया है - कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। स्थूल, सूक्ष्म और काम्य इन तीनों शरीरों का संसार के साथ अभिन्न सम्बन्ध है अतः इन तीनों को दूसरों की सेवा में लगा दे, यह कर्मयोग हुआ, स्वयं इनसे असङ्ग होकर अपने स्वरुप में स्थित हो जाए, यह ज्ञान-योग हुआ और स्वयं भगवान को समर्पित हो जाए यह भक्तियोग हुआ।

इन तीनों योगों को सिद्ध करने के लिए अर्थात् अपना उद्धार करने के लिए मनुष्य को तीन शक्तियाँ प्राप्त हैं -
(1) करने की शक्ति (बल)
(2) जानने की शक्ति (ज्ञान)
(3) मानने की शक्ति (विश्वास)

नि:स्वार्थ भाव से संसार की सेवा करने की शक्ति के लिए जो कर्मयोग है, जानने की शक्ति अर्थात् अपने स्वरुप को जानने के लिए जो ज्ञानयोग है, मानने की शक्ति अर्थात् अपने को भगवान का मानकर सर्वथा भगवान में समर्पित होने के लिए जो भक्तियोग है, ये तीनों ही योग मार्ग परमात्मा प्राप्ति के स्वतन्त्र साधन हैं। अन्य सभी साधन इन तीनों के ही अन्तर्गत आ जाते हैं।

गीता के इन तीनों योगों के मूल में मनस्तत्त्व ही है। मन के पृथक-पृथक विवर्तो के स्वरुप के आधार पर ही गीता में तीनों योगों की व्याख्याएँ की गई हैं। मन ही चूँकि बन्धन में पड़ता है एवं मन की मुक्ति ही समस्त योगों का मूलाधार भी है। अत: मनस्तत्त्व ही गीता के योगों का आधार है। गीता मन: विज्ञान का एक अद्वितीय ग्रन्थ है, जो तीनों योगों के माध्यम से मन की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

मन के चार विवर्त माने गए हैं –

(1) अव्ययमन (2) सत्वमन (जीवात्मा)
(3) प्रज्ञान मन (4) इन्द्रिय मन

गीता के पृथक-पृथक योगों का आधार इन मनों को ही बनाया गया है –

(1) अव्ययमन – यह हृदयावच्छिन्न पुरुष है।

सृष्टि का मूलाधार अव्यय स्वयम्भू है। यह मन ही सृष्टि का रचनाकार है। गीता में श्रीकृष्ण ने जगह-जगह पर अपने व्यक्तस्वरु प को लक्ष करके उन्होंने अपने विषय में प्रथम पुरुष अव्यय पुरुष, ईश्वर रुप होने का वर्णन किया है।

जैसे – **"प्रकृति मेरा स्वरुप है" (गीता 9.8)**
"जीव मेरा अंश है" (गीता 17.7)
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अंत ऊर्ध्वं न संशय:।।

अर्थात् तू मुझमें मन एवं बुद्धि को लगा उसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा और संशयरहित ईश्वर को प्राप्त कर लेगा।

कृष्ण ने अपने विश्वरुप दर्शन से अर्जुन को यह प्रत्यक्ष अनुभव करा दिया कि सारी चराचर सृष्टि मेरे व्यक्त रुप से ही साक्षात भरी हुई है।

(2) सत्व मन – ईश्वराव्यय का जो मन चिद्ब्रह्म की सृष्टि की ओर उन्मुख हुआ, सभी को मूलाधार बनाता है, वही महन्मन सत्वमन है। यही मन भोक्ता है, यही सर्वज्ञमन है, ईश्वर (अव्ययमन) और जीवात्मा (सर्वज्ञमन) सदा साथ रहते हैं, परन्तु भोक्ता केवल जीवात्मा ही है।

इस जीवात्मा (सत्वमन) के देह धारण के तीन निमित बताए गए हैं – सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण।

चूँकि ये तीनों ही गुण बन्ध का कारण हैं तथा जीवात्मा को बाँधने का निमित है अत: कृष्ण अर्जुन को त्रिगुणातीत होने के लिए कहते हैं।

त्रैगुण्यविषयो वेदा निस्त्रैण्यो भवार्जुन। (गीता 2.85)

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो सत्वमना समत्व बुद्धि से युक्त होकर कर्मफल का त्याग कर देता है, वही जन्म के बन्धन से मुक्त होकर परमेश्वर के दु:ख विरहित पद को जा पहुँचता है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिण:।
जन्म बन्ध विनिर्युक्ता: पदं गच्छन्त्यनामयम्।। (गीता 2.51)

जब तक यह जीवात्मा इस भौतिक संसार में रहता है, उसे नाना परिग्रह संसाधन उपलब्ध होते हैं, उनसे जो शरीर बनता है वह भुक्तान्न अन्न का परिग्रह करता है, उस अन्न द्वारा निर्मित सूक्ष्म शरीर ही प्रज्ञान मन है।

(3) प्रज्ञान मन – यह मन इन्द्रियों का प्रेरक है, वह प्रज्ञान मन ही बुद्धि, धृति आदि नामों से अभिहित है। इन्द्रिय एवं इन्द्रिय मन से प्रज्ञान मन की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है।

इस प्रज्ञान मन को बुद्धि, धृति आदि नामों से अभिहित किया गया है।

ऋयदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश:।
इन्द्रियाणीन्दियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
विषया विनिवर्तन्ते निहारस्य देहिन:।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते।।

अर्थात् जिस प्रकार कछुआ अपने (हाथ-पैर आदि) अवयव सब ओर से सिकोड़ लेता है उसी प्रकार जब कोई पुरुष इन्द्रियों के (शब्द, स्पर्श आदि) विषयों से (अपनी) इन्द्रियों को खींच लेता है, तब कहना चाहिए कि उसकी बुद्धि स्थिर हुई, इस प्रज्ञान मन को आत्मनिष्ठ बनाना ही बुद्धि-योग है।

अर्थात् जब मनुष्य समस्त इन्द्रियों एवं मन को प्रज्ञान मन से वश में कर लेता है, समत्वदर्शी बन जाता है, तब ही वह स्थितप्रज्ञ कहलाने के योग्य है।

(4) इन्द्रिय मन – संकल्प विकल्पात्मक रुप वाला इन्द्रिय मन बड़ा चंचल होता है। यही मन सुखदु:खादि का अनुभव करता है। मनुष्य अपनी कर्मेन्द्रियों को तो वश में कर लेता है, किन्तु इस मन का निग्रह अत्यन्त कठिन है।

'इन्द्रियाणां हि चरतां, यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां, वायुर्वानव मिवाम्भसि।।
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वश:।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

अर्थात् मन के निग्रह के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह करना सब साधनों का मूल है। विषयों में व्यग्र होकर इन्द्रियाँ इधर-उधर दौड़ती रहे तो आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने की बुद्धि ही नहीं हो सकती। कृष्ण स्वयं कहते हैं कि विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों में से जिस इन्द्रिय के साथ यह मन लग जाता है, अकेली वह इन्द्रिय ही पुरुष की प्रज्ञा (प्रज्ञान मन) का हरण कर लेती है।

'इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भसि।।'

इस प्रकार इन विविध मनों को अन्तिम स्तर से प्रारम्भ करते हुए, अव्यय मन में प्रतिष्ठित करना ही मोक्ष हैं, फिर वही व्यक्ति जन्मबन्ध से मुक्त हो जाएगा।

गीता में कहा गया है –

''कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढ़ मिथ्याचार: स उच्यते।।
(गीता 16.30)

''यास्त्वन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियै: कर्मयोगमसक्त: स विशिष्यते।।
(गीता 17.3)

अर्थात् जो मूढ़ (हाथ-पैर) आदि कर्मेन्द्रियों को रोककर मन में इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन किया करता है, उसे मिथ्याचारी अर्थात् दांभिक कहते हैं। परन्तु हे अर्जुन ! जो मन से इन्द्रियों का आकलन करके केवल कर्मेन्द्रियों द्वारा अनासक्त बुद्धि से योग प्रारम्भ करता है, उसकी योग्यता विशेष अर्थात् श्रेष्ठ है। अर्थात् यह स्पष्ट है कि गीता के अनुसार मन: निग्रही पुरुष ही त्रिगुणात्मक योगों का आश्रय ले सकता है। मुमुक्षु व्यक्ति ज्ञान, कर्म अथवा भक्ति जिस किसी भी योग का आश्रय लेकर अपने उद्देश्य पूर्ति तक पहुँचे, किन्तु उसके लिए मनस्तत्त्व को समझकर उसका निग्रहण ही प्रथम सोपान है, अत: यह स्पष्ट है कि गीता के त्रिगुणात्मक योगों का मूल मनस्तत्त्व ही है। मन के विभिन्न विवर्तों को गीता में विभिन्न योगों के प्रथमत: आधारभूत तत्त्व के रुप में बताया है एवं मनस्तत्त्व के सभी विवर्तों को सम्यक् व्याख्या की है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *श्रीमद्भगवद्गीता - (9/8)*
2. *श्रीमद्भगवद्गीता - (17/7)*
3. *श्रीमद्भगवद्गीता - (10/20)*
4. *श्रीमद्भगवद्गीता - (12/8)*
5. *श्रीमद्भगवद्गीता - (2/85)*
6. *श्रीमद्भगवद्गीता - (2/51)*
7. *श्रीमद्भगवद्गीता - (2/67)*
8. *श्रीमद्भगवद्गीता - (16/30)*
9. *श्रीमद्भगवद्गीता - (17/3)*
10. *श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य - लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक*
11. *श्रीमद्भगवद्गीता महात्म्यम् - गीता प्रेस, गोरखपुर*

ग्रामीण विकास का सशक्त आधार : 73वां संवैधानिक संशोधन

डॉ. संतोष कुमार सिंह
व्याख्याता, श्री अ.प्र.ब.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अगस्त्यमुनि, रुद्रप्रयाग (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

भारत की आत्मा गांवों में बसती है क्योंकि भारत गांवों का देश है जहां देश की लगभग 73 प्रतिशत जनता निवास करती है। देश की उन्नति तभी सम्भव है जब गांवों की उन्नति होगी। एक सफल प्रजातन्त्र के लिए यह आवश्यक है कि प्रजातंत्र की सबसे छोटी व मुख्य इकाई ग्राम पंचायतों का सर्वांगीण विकास हो तथा वे अधिकार सम्पन्न व सशक्त हों। सफल प्रजातंत्र के लिए सम्पूर्ण समाज में सुख समृद्धि एवं समानता का होना महत्वपूर्ण शर्त है। यदि हम देश का विकास चाहते हैं तो गांवों के विकास पर ध्यान देना आवश्यक होगा। इस संदर्भ में यहां गांधी जी ने कहा था, ''सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति नहीं चला सकते। वो तो नीचे से हर गांव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिए, ताकि सत्ता के केन्द्र जो अभी दिल्ली, कलकत्ता या बम्बई जैसे बड़े शहरों में है, मैं उसे भारत के सात लाख गांवों में बांटना चाहूंगा। लोकतंत्र का सार वास्तव में विभिन्न वर्गो के लोगों के समस्त शारीरिक, आर्थिक और आध्यात्मिक संसाधनों के सर्व कल्याण के लिए जुटाने की कला और विज्ञान है।''[1]

इसे हम देश का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि देश के गांव आज भी अविकसित हैं व उनकी शासन के अधिकारों की दृष्टि से स्थिति दयनीय है। इसी कारण स्वतंत्रता के छः दशक बीत जाने पर भी गांवों में वह अपेक्षित परिवर्तन नहीं हुआ जिसकी परिकल्पना हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने की थी। सरकार का उपेक्षापूर्ण रवैया व ग्रामीण क्षेत्रों का पिछड़ापन ग्राम्य विकास में बहुत बड़ी बाधा रही है। निर्धनता व पिछड़ापन ग्राम पंचायतों के लिए आधुनिक विकास के मार्ग में बहुत बड़ा अवरोधक है; जिस कारण सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन व उनके उद्देश्यों की प्राप्ति एक चुनौती पूर्ण कार्य रहा है। ग्राम पंचायतों की स्थापना ग्रामीण जीवन में सुधार, उन्नति व विकास हेतु की गई है। स्थानीय स्वशासन अधिकार सम्पन्न हो इसके लिए सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न योजनाएं बनाई गई।

वस्तुत: स्थानीय स्वशासन भारतवर्ष के लिए शासन की नई कल्पना नहीं है, बल्कि भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय संस्थाओं का अस्तित्व रहा है। वैदिक युग में भी ग्राम सभाएं विद्यमान थी। महाभारत काल में पंचायतों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। भारत में स्थानीय शासन का इतिहास प्राचीन है राजा की शक्ति पर ग्राम सभा जो मूलत: ग्राम की एक सभा होती थी और उस ग्राम के प्रशासन से सम्बन्धित समस्याओं को देखती थी, का प्रभावशाली नियंत्रण स्वीकार किया गया था। ग्रामों की यह सभा ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्षों का भी नियमन करती थी। सामूहिक श्रम के उत्पादन के उचित वातावरण हेतु ग्राम सभाओं को उत्तरदायी माना जाता था। इन ग्राम सभाओं का गठन एक पांच सदस्यीय आयोग के रुप में होता था। मनुस्मृति, रामायण, मेगस्थनीज की पुस्तक इण्डिका, कौटिल्य की पुस्तक अर्थशास्त्र, बौद्ध काल, सल्तनत काल में भी स्थानीय शासन का स्वरुप दिखाई देता है। ब्रिटिश शासन काल में भी स्थानीय शासन का साकार रुप हमें 1909 का भारत सरकार अधिनियम, 1919 का भारत सरकार अधिनियम और 1935 का भारत सरकार अधिनियम के द्वारा मिलता है।

भारत में स्थानीय स्वशासन की दिशा में जो नई पहल हुई वह मुख्यत: राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की सोच का परिणाम थी। गांधी जी आधुनिक भारत में ग्राम स्वराज्य के लिए गांव पंचायत के सबसे बड़े समर्थक थे। गांधी जी ने लिखा है, ''ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरुरतों के लिए अपनी पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा; और फिर भी बहुतेरी जरुरतों के लिए- जिनमें दूसरा का सहयोग अनिवार्य होगा- वह परस्पर सहयोग से काम लेगा।''[2] उनकी स्वराज की संकल्पना को बाद में भारतीय संविधान निर्माताओं ने मूर्त रुप प्रदान किया। आजादी के पश्चात् भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में कहा गया है,'' राज्य ग्राम पंचायतों के गठन करने के लिए कदम उठाएगा और उसको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रुप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।''[3] इस कथन में यह विश्वास झलकता है कि ग्राम पंचायतों के संगठन से आत्मनिर्भरता, समृद्धि, खुशहाली तथा प्रबन्धन का समावेश इनमें हो सकेगा। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में एक नया मोड़ नेहरु[4] के उस कथन से आया जिसमें उन्होंने ग्रामीणों को अधिकार देने और अपने विकास के मार्ग को स्वयं तय करने के सम्बन्ध में कहा था, ''गांव के लोगों को अधिकार सौंपने चाहिए। उनको काम करने दो, चाहे वे हजार गलतियां करें। इससे घबराने की जरुरत नहीं है। पंचायतों को अधिकार दो।'' इस कथन ने भारत की जनता को एक ऐसा शस्त्र प्रदान करने का कार्य किया जिससे वे अपनी भूख, गरीबी और अशिक्षा जैसी सदियों पुरानी बुराईयों को दूर करने में जागरुक हो सके।

आजादी के पश्चात् पंचायत राज व्यवस्था लागू करने के लिए विभिन्न मुद्दों पर विशेषज्ञों द्वारा विचार-विमर्श के आधार पर वर्ष 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की स्थापना की गई किन्तु जागरुकता के अभाव में ग्रामीणों ने रुचि नहीं दिखाई जिससे यह कार्यक्रम सफल नहीं हो सका। सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता के बाद बलवन्त राय मेहता समिति (1957) का गठन किया गया। इस समिति ने अपनी सिफारिशें 24 नवम्बर 1957 को भारत सरकार के सम्मुख रखी। इन्हीं सिफारिशों के आधार पर 02 अक्टूबर 1959 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरु द्वारा राजस्थान के नागौर से पंचायती राज व्यवस्था का शुभारम्भ किया गया। लोकतांत्रिक व्यवस्था अर्थात् पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए समय-समय पर अनेक कार्य किये गए। जैसे- अशोक मेहता समिति (1978), जी.के.वी. राव समिति (1985), एल.एम. सिंघवी समिति (1986), पी.के. थुंगन समिति (1988) और 73वां संशोधन विधेयक (1992) मुख्य है।

73वां संवैधानिक संशोधन

सही मायने में 73वां संवैधानिक संशोधन स्थानीय स्वशासन की इकाईयां राजनीतिक वैधता की प्रक्रिया में मौलिक भूमिका निभाती है तथा लोगों में भागीदारी की भावना विकसित करने का अवसर प्रदान करती है। लोगों की शासन में सहभागिता लोकतंत्र का हृदय स्थल अथवा सार है। जिस व्यवस्था में सरकार के संचालन में लोगों की सहभागिता, अधिक निरन्तर, सक्रिय, रचनात्मक और निकट की होगी वह व्यवस्था लोकतंत्र के लिए आदर्श के उतने ही समीप समझी जाएंगी। स्वतंत्र भारत ने यह अनुभव कर लिया कि स्थानीय स्वशासन की इकाईयां वास्तव में लोकतंत्र की आधारशिला होती है।

73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 से लागू किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग-9 जोड़ा गया जिसका शीर्षक 'पंचायत' है। इसके द्वारा अनुच्छेद 243 में पंचायतों से सम्बन्धित अनेक प्रावधान किये गए है जिसमें 16 अनुच्छेदों को शामिल किया गया है। 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम5 की मुख्य बातें निम्न है :-

- ➢ ग्राम सभा ग्राम स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कार्यों का पालन कर सकेगी, जो किसी विधानमण्डल द्वारा निर्धारित शक्तियों का प्रयोग तथा कार्यों को सम्पन्न करेगीं। -अनुच्छेद 243 (ए)
- ➢ प्रत्येक राज्य में ग्राम, मध्यवर्ती व जिला स्तर पर पंचायतों का गठन किया जाएगा। -अनुच्छेद 243 (बी-1)
- ➢ मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत का उन राज्यों में गठन नहीं किया जा सकेगा, जिसकी संख्या 20 लाख से अधिक न हो। -अनुच्छेद 243 (बी-2)
- ➢ राज्य विधामण्डल द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अनुरुप पंचायतों का गठन किया जाएगा। -अनुच्छेद 243 (सी-1)

प्रत्येक पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रक्रिया से किया जाएगा। जिसमें सम्पूर्ण पंचायत क्षेत्र को उतने ही निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जाएगा जितने सदस्य उस क्षेत्र से निर्वाचित किए जाएंगें। पंचायत के सदस्यों की संख्या का निर्धारण जनसंख्या के अनुपात में किया जाएगा।-अनुच्छेद 243 (सी-2)

राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा ग्राम पंचायतों के प्रमुखों का मध्यवर्ती पंचायतों में तथा मध्यवर्ती पंचायतों के न होने पर जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा तथा इसी प्रकार मध्यवर्ती पंचायतों के प्रमुखों का जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा।-अनुच्छेद 243 (सी-3)

पंचायत का प्रमुख तथा पंचायत के अन्य सदस्य, चाहे वे पंचायत क्षेत्र के निर्वाचन क्षेत्र से प्रत्यक्षत: निर्वाचित हो या न हो, वे पंचायतों की सभाओं में वोट देने के अधिकार से युक्त होंगे।-अनुच्छेद 243 (सी-4)

ग्राम स्तरीय पंचायतों के प्रमुख का निर्वाचन राज्य विधानमण्डल द्वारा अनुमोदित विधि के प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा। -अनुच्छेद 243 (सी-5 ए)

मध्यवर्ती या जिला स्तरीय पंचायतों के प्रमुखों का निर्वाचन ग्राम पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाएगा।-अनुच्छेद 243 (सी-5 बी)

- प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए सीटें आरक्षित होंगी। यह सीटें पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्धारित की जाएगी। यह सीटें एक पंचायत में चक्रानुक्रम से विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षित की जाएगी।-अनुच्छेद 243 (डी-1)

- अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित स्थानों में कम से कम एक तिहाई स्थान अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।-अनुच्छेद 243 (डी-2)

- प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले कुल स्थानों में से न्यूनतम एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाएंगे (जिसमें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थान भी सम्मिलित हैं)। ये सीटें चक्रानुक्रम से एक पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रो में आरक्षित की जाएंगी।-अनुच्छेद 243(डी-3)

- प्रत्येक पंचायत की कार्यावधि 5 वर्ष होगी। इसकी कार्यावधि की समाप्ति के पूर्व ही नए चुनाव कराये जाएंगे। यदि पंचायत को पांच वर्ष से पूर्व ही भंग कर दिया जाता है तो 6 माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व चुनाव कराए जाएंगे।-अनुच्छेद 243 (ई)

- राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां प्रदान करेंगे जो कि उन्हें स्वशासन की संस्था के रुप में कार्यरत बना सके तथा जिनसे पंचायतों आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार कर सके एवं ग्यारहवीं अनुसूची में समाहित विषयों सहित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को क्रियान्वित कर सके।-अनुच्छेद 243 (जी)

- राज्य विधानमण्डल पंचायतों को विनिर्दिष्ट कर, शुल्क, चुंगी एवं फीस लगाने एवं संग्रहित करने के लिए अधिकृत करेगा। सम्बंधित राज्य सरकार राज्य की आकस्मिक निधि से पंचायत को पर्याप्त सहायता एवं अनुदान देगी।-अनुच्छेद 243 (एच)

- राज्यों के राज्यपाल इस अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के अंदर तथा इसके बाद प्रत्येक पांच वर्ष पश्चात् पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और समुचित सिफारिशें करने के लिए वित्त आयोग का गठन करेंगे। ये सिफारिशें राज्यों की संचित निधि से सहायता अनुदान आदि से सम्बन्धित होंगी। राज्यपाल इन सिफारिशों को इस व्याख्या के साथ कि इन सिफारिशों को लागू करने के लिए क्या प्रयत्न किए गए, राज्य विधान मण्डल में रखवाएगा।-अनुच्छेद 243 (आई)

- राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों द्वारा खाते तैयार करने तथा इन खातों की लेखा परीक्षा सम्बंधी प्रावधानों का निर्माण करेगा।अनुच्छेद 243 (जे)

- राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य आयुक्त से संरचित राज्य चुनाव आयोग ही मतदाता सूचियों को तैयार करने में अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण रखेगा तथा वही पंचायतों के समस्त चुनावों का संचालन करवाएगा।अनुच्छेद 243 (के-1)

ग्यारहवीं अनुसूची में कानून बनाने का अधिकार पंचायत को सौंपा गया है। ये 29 विषय हैं- (1) कृषि, कृषिप्रसार सहित (2) भू-सुधार एवं मृदा संरक्षण (3) लघु सिंचाई, जल प्रबंध एवं जल संभर विकास (4) पशुपालन, दुग्धशाला एवं मुर्गीपालन (5) मत्स्य पालन (6) सामाजिक वानिकी एवं फार्म वानिकी (7) लघु वन उत्पाद (8) खाद्य संसाधन उपयोगों सहित लघु उद्योग (9) खादी, ग्राम एवं घरेलू उद्योग (10) ग्रामीण विकास आवास (11) पेयजल, (12) ईंधन और चारा (13) सड़कें, पुलिया, सेतु, घाट, जलमार्ग एवं संचार के अन्य साधन (14) विद्युत वितरण सहित ग्रामीण विद्युतीकरण (15) ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोत, (16) गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (17) प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा (18) तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा (19) प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा (20) पुस्तकालय (21) बाजार एवं मेले (22) सांस्कृतिक क्रियाकलाप (23) प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र एवं उपचार केन्द्रों सहित स्वास्थ्य एवं स्वच्छता (24) परिवार कल्याण (25) महिला एवं बाल विकास (26) सामाजिक कल्याण जिसमें विकलांग और मन्दबुद्धि लोगों का कल्याण शामिल हैं (27) कमजोर वर्गों का कल्याण, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कल्याण (28) जल वितरण व्यवस्था (29) सामुदायिक सम्पत्ति का रख-रखाव।

चुनौतियां

73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा उपरोक्त समस्त अधिकार व उत्तरदायित्व पंचायतों को देकर विकास की एक नवीन धारा प्रवाहित हुई है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि इस संविधान संशोधन के माध्यम से देश में शक्तिशाली स्वायत प्रशासन का क्रांतिकारी मार्ग प्रशस्त हुआ है। इस संशोधन के परिणामस्वरुप ग्रामीण क्षेत्रों के चहुंमुखी विकास के स्वर्णिम युग का श्री गणेश हुआ है किंतु इसके सामने चुनौतियां भी उभर कर सामने नजर आ रही है जो निम्न हैं :-

- अधिकांश गांवों में आज भी जातिवाद व्यापक रुप से विद्यमान है; जिसके फलस्वरुप आरक्षित श्रेणी का व्यक्ति निर्वाचित होता है तो उसके साथ बैठना सामान्य जाति के सदस्य अपना अपमान समझते हैं।

- ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में आज भी

संतोषजनक सुधार नहीं हो पाया है। यदि कोई आरक्षित श्रेणी की महिला आगे बढ़कर कार्य करना भी चाहती है तो उसे समाज स्वीकार नहीं करता।

- ज्यादातर महिलाओं में इस बात का भय व्याप्त रहता है कि त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था में भागीदारी से उनके घरेलू दायित्वों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस क्षतिपूर्ति की व्यवस्था इस प्रणाली में नहीं है।

- यह भी देखा गया है कि यदि कोई निर्वाचित अनुसूचित जाति या जनजाति सदस्य पंचायत में कोई निर्णय लेता है तो अन्य सदस्य उसका सहयोग नहीं करते।

- अनेक निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपने अधिकारों को उचित जानकारी प्राप्त नहीं होती। इसका कारण अशिक्षा एवं प्रशिक्षण का अभाव है।

- यह भी देखने में आ रहा है कि गांव में गुटबन्दी होने के कारण छोटे-मोटे झगड़े होते है; जिसके फलस्वरूप जनकल्याण की योजनाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

- पंचायत चुनावों के कई क्षेत्रों में यह देखा गया है कि समाज के प्रभावशाली व्यक्ति अपने ही पत्नी, बहन, मां या किसी अन्य सम्बन्धी महिला को चुनावों में उम्मीदवारों के रुप में खड़ा कर देते है; जो बाद में उन्हीं के कहने पर काम करती है। इसका अभिप्राय यह है कि महिलाओं को केवल आरक्षण कोटा पूरा करने के लिए निर्वाचित किया जा रहा है जबकि वास्तव में पुरुष सत्ता का प्रयोग कर रहे है।

- अनेक स्थानों पर यह भी देखने पर आ रहा है कि पंचायत की बैठकों में महिलाओं के स्थान पर उनके पति अथवा अन्य रिश्तेदार बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं और चयनित महिलाओं के हस्ताक्षर उनके घरों पर जाकर करा लेते है। इससे न केवल महिला भागीदारी प्रभावित होती है बल्कि यह लोकतांत्रिक परम्परा के विरुद्ध है।

मूल्यांकन

सरकार राष्ट्र के संविधान की उद्देशिका में वर्णित सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करने के लिए पूर्ण कटिबद्ध है। स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं और समाज के पिछड़े वर्ग की प्रथम व्यापक राजनीतिक भर्ती का यह क्रम अभी प्रारंभ ही हुआ है। समाज के सभी वर्गों ने इस पंचायत राज व्यवस्था के क्रियान्वयन को नजदीकी से देखा एवं अनुभव किया है। पंचायत राज व्यवस्था का आगे चलना वाला अबाध क्रम अब ज्यादा प्रतिस्पर्धा पूर्ण होगा। नेतृत्व के लिए ज्यादा योग्य एवं व्यवस्था को समझने वाले लोग प्रतिस्पर्धा में आएंगे। ग्रामों के विकास की पूर्ण जिम्मेदारी पंचायतों पर आ गई है एवं ग्राम सभा के माध्यम से आम जनों की सहभागिता का स्तर भी बढ़ा है।

पंचायत राज व्यवस्था के अन्तर्गत तीनों स्तरों की पंचायत को संवैधानिक इकाई के रुप में दर्जा दिया गया ताकि स्वशासन की यह इकाईयां अधिक सुदृढ़ हो सके तथा मजबूती से स्थानीय स्वशासन एवं सुशासन की अवधारणा को व्यवहारिक स्वरुप दिया जा सके। इस ऐतिहासिक कदम ने पंचायत राज संस्थाओं के माध्यम से आम ग्रामीण जन समुदाय के लिए स्वशासन में भागीदारी हेतु नई दिशा का निर्माण किया और पंचायत में महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा हाशिये पर स्थित लोगों के लिए आरक्षण के माध्यम से संवैधानिक भागीदारी सुनिश्चित हुई ताकि स्थानीय सहभागी नियोजन द्वारा समेकित विकास का स्वप्न साकार हो सके। दूसरी तरफ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि आरक्षण की व्यवस्था से सभी स्तरों पर भागीदारी तो सुनिश्चित हुई है किन्तु सशक्तीकरण का स्वरुप भीतर से उत्पन्न नहीं हो सका है।

भारत के त्रि-स्तरीय पंचायत चुनाव में महिलाओं का आरक्षण कोटा 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत से करने का प्रयास कियागया था। तत्पश्चात 27 अगस्त 2009 को संविधान की धारा 243(डी) को संशोधित करने के प्रस्ताव का अनुमोदन किया गया ताकि पंचायत के तीनों स्तरों की सीटों और अध्यक्ष के 50 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित किए जा सके। इसी क्रम में 26 नवम्बर 2009 को लोकसभा में 110वां संवैधानिक संशोधन विधेयक पेश किया गया किन्तु यह पास नहीं हो सका। इसके बावजूद भी बिहार पहला राज्य था जिसने 33 प्रतिशत अनिवार्य आरक्षित सीटें होने के बावजूद वर्ष 2006 के पंचायत चुनाव में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण रखा था। अन्य राज्यों- उत्तराखण्ड, छत्तीसगढ़, केरल, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, सिक्कम आदि ने अपने पंचायत चुनाव अधिनियम को कारगर तरीके से लागू किया है। दूसरे तरफ कुछ ऐसे भी राज्य है जहां 50 प्रतिशत आरक्षण लागू नहीं हो पाया है। गांवों में समानता की बिगुल जरा देर से बजती है क्योंकि वहां परिवर्तन एक मुश्किल चीज है पर यह भी सच है जो परिवर्तन गांवों में स्वीकार कर लिया जाता है वह स्थाई हो जाता है। बेशक पंचायतों के ढांचों में आधा-आधा की अवधारणा ऊपर से आरोपित की गई है; इसलिए इसे मानसिक रुप से स्वीकार करने में समय लगेगा। कुछ राज्यों में यह आरक्षण 50 प्रतिशत से ऊपर तक पहुंच गया है।

भारत में 2.51 लाख पंचायतें हैं, जिसमें 2.39 लाख ग्राम पंचायतें, 6405 ब्लाक पंचायतें और 589 जिला पंचायतें या जिला परिषद् शामिल हैं। इनके कुल निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या 29.16 लाख है। भारत में पंचायत राज व्यवस्था के माध्यम से एक मौन लोकतांत्रिक क्रांति हो रही है जो अभी राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक

रूप से भले ही दिखाई न दे रही है पर उसकी धीमी आंच भारतीय लोकतंत्र को मजबूत बना रही है। आज भारत में 14 लाख से अधिक महिला निवार्चित प्रतिनिधि हैं जो दुनिया के किसी भी देश में नहीं है। इतना ही नहीं अगर पूरी दुनिया के निर्वाचित प्रतिनिधि की संख्या जोड़ी जाए तो भी वह संख्या इन भारतीय निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों से कम ही है। पंचायत स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी ने राजनीतिक संस्कृति को भी विकसित किया है। निर्वाचित महिलाएं सामाजिक कल्याण परियोजनाओं पर ध्यान केन्द्रित कर रही है जिससे गांवों का अधिक समग्र हो सके। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम (एमजीनरेगा) को एक अधिकार आधारित योजना के रूप में लागू किया गया है जो रोजगार पैदा करने की दिशा में भारत के प्रयासों में होने वाले महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक है। इसका प्राथमिक उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को प्रत्येक वित्त वर्ष के दौरान 100 दिनों की रोजगार की गारण्टी प्रदान कर उनकी आजीविका को सुरक्षित करना है। यह विश्व के इतिहास में सबसे बड़ा सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम है। एमजीनरेगा की देखरेख का दायित्व ग्राम सभा को सौंपा गया है ताकि वे आजीविका का सुरक्षा में अपना योगदान दे सके। पंचायती राज व्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) में राजीव गांधी पंचायत सशक्तीकरण अभियान (आरजीपीएसए) को शुरु किया गया है। इस प्रमुख कार्यक्रम में उन सभी छोटी योजनाओं को जो पंचायत राज मंत्रालय के अन्तर्गत आते हैं, शामिल कर लिया गया है। सरकार को प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के माध्यम से जागरुकता उत्पन्न करने की आवश्यकता है ताकि जनता अपने दायित्वों को समझ सकें। हमें आशा करनी चाहिए कि आने वाले दिनों में यह पंचायती राज व्यवस्था लोगों की आकांक्षाओं और विश्वास का और भी सशक्त कर पाएगी; जिससे सही मायने में लोकतंत्र का वृक्ष मजबूत होगा क्योंकि यह स्वशासी संस्था लोकतंत्र की आधारभूत इकाई है। दूसरी तरफ ग्राम पंचायत को सच्चे अर्थों में सशक्त करने हेतु अभी सरकार द्वारा व्यवहारिक और ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है तभी पंचायतों में विकास का नवीन मार्ग प्रशस्त होगा और 73वें संवैधानिक संशोधन की उपयोगिता भी सिद्ध हो सकेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *गांधी, महात्मा, ''मेरे सपनों का भारत,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-21.*
2. *गांधी, महात्मा, ''ग्राम स्वराज्य,'' नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2010, पृष्ठ संख्या-31.*
3. *भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ संख्या-40.*
4. *नेहरु, जवाहर लाल, द्वारा उद्धृत पुखराज जैन और बी.एल. फाड़िया, ''भारतीय शासन एवं राजनीति,'' साहित्य भवन, आगरा, पृष्ठ संख्या-641.*
5. *भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ संख्या- 127-135.0*

दक्षिण एशिया में सार्क : चुनौतियाँ के आगे पस्त प्रगति

डॉ. प्रेमलता परसोया
व्याख्याता, जानकी देवी बजाज राज.कन्या महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

एक क्षेत्र उस भौगोलिक ईकाई को कहा जा सकता है, जिसके राष्ट्रों में ऐतिहासिक, विरासत, राजनीतिक मूल्यों, सांस्कृतिक पहचान, आर्थिक हितों आदि के आधार समरुपता हो और उनमें किन्हीं समान योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन किया जा सकता हो। दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्र भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, भूटान व मालदीव सभी सांस्कृतिक व ऐतिहासिक आधारों पर काफी समानता लिए हुए है। प्राचीन काल में यह क्षेत्र अत्यधिक समृद्ध था तथा दूर-दूर से इसका व्यापार होता था परन्तु अधिकांश का ब्रिटिश सरकार ने खूब शोषण किया जिससे गरीबी, बेरोजगारी, अल्पविकास इनकी पहचान बन गई। सभी राज्य घाटे की अर्थव्यवस्था और घाटे के व्यापार तथा व्यापार असन्तुलन की समस्याओं से जूझ रहे है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी यूरोप के देश राजनीतिक तथा आर्थिक एकीकरण के लिए प्रयास कर रहे थे क्योंकि युद्धोपरान्त यूरोप की गिरी प्रतिष्ठा को एकमात्र एकीकृत व संयुक्त प्रयासों से ही पुनर्जीवित किया जा सकता था। इसमें सामूहिक विकास की भावना बलवती होती दिखाई दे रही थी। इसके तहत् यूरोपीय आर्थिक समुदाय... जैसे संगठनों की स्थापना की गई ताकि यूरोपीयन संसाधनों का प्रथमत: यूरोप के लिए ही उपयोग हो तथा एकीकृत यूरोप का पुन: विश्व राजनीति पर प्रभाव स्थापित हो सके।

दक्षिण एशिया भी भौगोलिक दृष्टि से ऐसा क्षेत्रहै जिस पर विश्व की महाशक्तियों, समृद्ध देशों की नजर लगी रहती है, ऐसे में इस क्षेत्र के देशों ने भी इसके विकास तथा एकीकरण के लिए सोचना शुरु किया क्योंकि इसके देश अलग-अलग अपना वर्चस्व स्थापित नहीं कर सकते थे तथा आर्थिक विकास के लिए भी ये काफी कुछ दूसरे देशों पर निर्भर थे। अत: अब ये दक्षिण एशिया के राष्ट्र अपने आपको सशक्त एवं समर्थ बनाने को प्रयत्नशील हुए और परिणाम के रुप में 1985 में 'दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन' अर्थात सार्क नामक संगठन दक्षिण एशिया के महत्वपूर्ण प्रतीक के रुप में उभर कर आया। तत्समय इसमें भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान तथा मालदीव आदि सात राष्ट्र शामिल थे तथा अफगानिस्तान को तालिबान... आदि कारणों से शामिल नहीं किया गया था। 2007 में नई दिल्ली में आयोजित 14 वें शिखर सम्मेलन में अफगानिस्तान को भी इसमें शामिल कर लिया गया है और इसमें में कुल आठ सदस्य हो गये है। इन आठों राष्ट्रों में क्षेत्र व आकार एवं आर्थिक स्थिति के आधार पर काफी अन्तर पाया जाता है।

इन राष्ट्रों की अवस्थिति तथा सामान्य जानकारी निम्न चित्र द्वारा समझी जा सकती है -

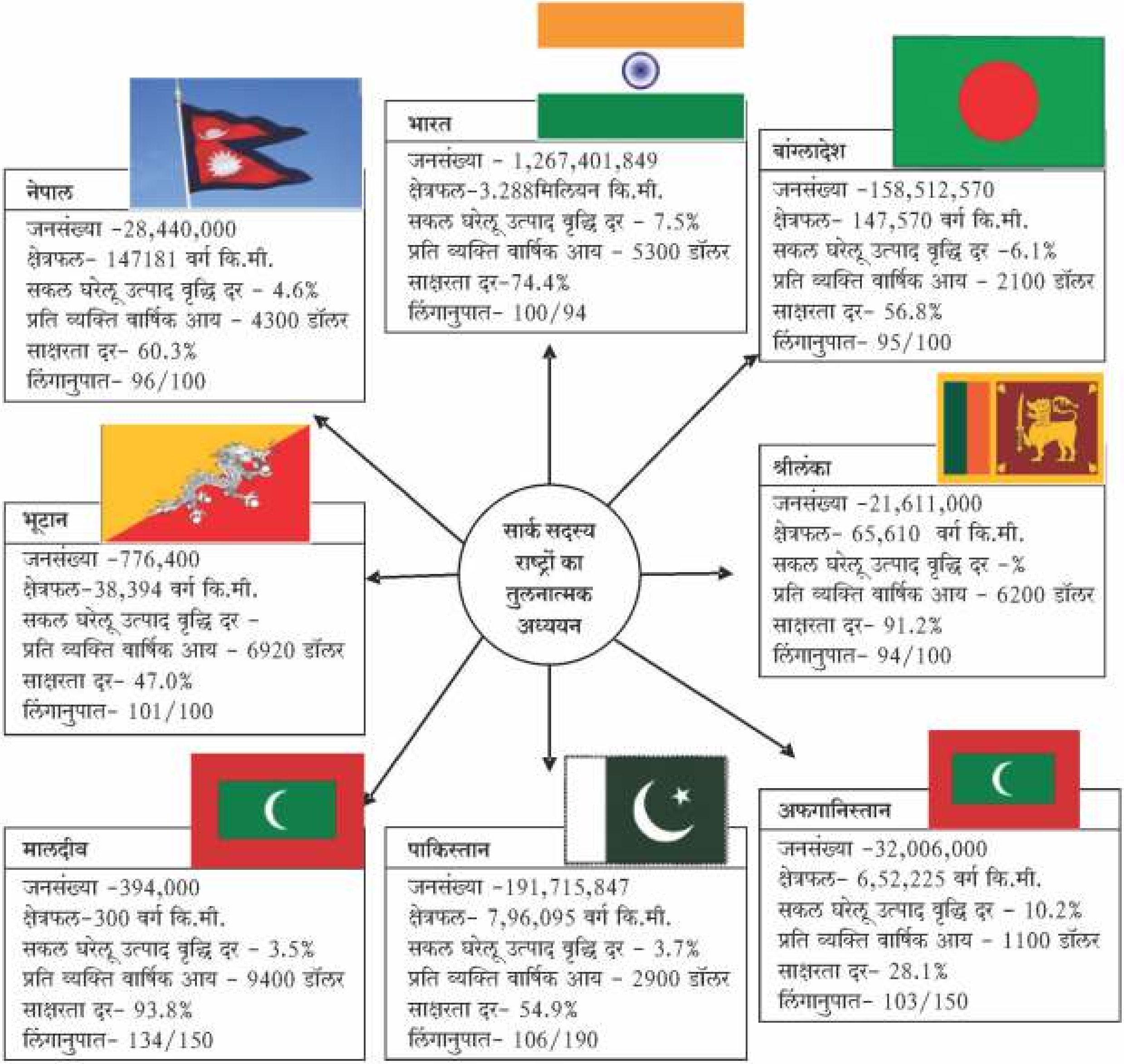

सार्क सदस्य राष्ट्रों का तुलनात्मक अध्ययन

नेपाल
जनसंख्या -28,440,000
क्षेत्रफल- 147181 वर्ग कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर - 4.6%
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 4300 डॉलर
साक्षरता दर- 60.3%
लिंगानुपात- 96/100

भारत
जनसंख्या - 1,267,401,849
क्षेत्रफल-3.288मिलियन कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर - 7.5%
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 5300 डॉलर
साक्षरता दर-74.4%
लिंगानुपात- 100/94

बांग्लादेश
जनसंख्या -158,512,570
क्षेत्रफल- 147,570 वर्ग कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर -6.1%
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 2100 डॉलर
साक्षरता दर- 56.8%
लिंगानुपात- 95/100

भूटान
जनसंख्या -776,400
क्षेत्रफल-38,394 वर्ग कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर -
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 6920 डॉलर
साक्षरता दर- 47.0%
लिंगानुपात- 101/100

श्रीलंका
जनसंख्या -21,611,000
क्षेत्रफल- 65,610 वर्ग कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर -%
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 6200 डॉलर
साक्षरता दर- 91.2%
लिंगानुपात- 94/100

मालदीव
जनसंख्या -394,000
क्षेत्रफल-300 वर्ग कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर - 3.5%
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 9400 डॉलर
साक्षरता दर- 93.8%
लिंगानुपात- 134/150

पाकिस्तान
जनसंख्या -191,715,847
क्षेत्रफल- 7,96,095 वर्ग कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर - 3.7%
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 2900 डॉलर
साक्षरता दर- 54.9%
लिंगानुपात- 106/190

अफगानिस्तान
जनसंख्या -32,006,000
क्षेत्रफल- 6,52,225 वर्ग कि.मी.
सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर - 10.2%
प्रति व्यक्ति वार्षिक आय - 1100 डॉलर
साक्षरता दर- 28.1%
लिंगानुपात- 103/150

दक्षिण एशिया की पहचान:सार्क

विश्व के अन्य क्षेत्रों की तरह दक्षिण एशियाई राष्ट्रों में उपजी क्षेत्रीय सहयोग की भावना के परिणामस्वरूप सार्क नामक संगठन विश्व स्तर पर निर्मित हुआ। यद्यपि प्रारंभ में अधिकांशराष्ट्रों को यह आशंका भयभीत कर रही थी, कि भारत-पाकिस्तान के द्विपक्षीय विवादों के रहते यह संगठन कैसे निर्मित होगा? चूँकि अब तक भारत-पाक के बीच कुल तीन युद्ध 1948, 1965 व 1971 में हो चुके थे तथा दोनों के बीच के द्विपक्षीय विवाद निरन्तर बने हुए थे क्योंकि पाकिस्तान की विदेश नीति का आधार, भारत का विरोध सर्वप्रमुख है तथा उसने द्विपक्षीय विवादों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने की भी कई बार कोशिशें की परन्तु भारत के अटल निश्चय के आगे वह सफल नहीं हो पाया था। इस तरह की आशंकाएँ तब खत्म हुई जब भारत ने कहा कि हमारे बीच वर्षों से आदान-प्रदान हो रहा है। हम हजारों वर्षों से एक साथ रहते आ रहे है, एक ही महाद्वीप के अभिन्न अंग है?। इसलिए निजी हित, निजी स्वार्थ और मतभेदों का उत्पन्न होते रहना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। यह पूर्णतया स्वाभाविक है। प्रश्न यह उठता है कि जब यूरोप, एशिया पैसिफिक, अमेरिका महाद्वीप के राष्ट्र अपने मतभेदों को त्यागकर क्षेत्रीय संगठनों में संगठित हो रहे है तो

फिर इस भारतीय उपमहाद्वीप के राष्ट्र क्यों न अपना क्षेत्रीय संगठन बनाये और क्षेत्रीय संगठन के आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक लाभों को प्राप्त करे।[1]

दक्षिण एशिया की काफी समय से जो जातीय विद्वेषता, पिछड़ापन, साधनहीनता .... आदि पहचान बनी हुई थी इसे परिवर्तित करने हेतु दक्षिण एशियाई राष्ट्र प्रयत्नशील हुए। इसमें सबसे पहले पहल, बांग्लादेश के राष्ट्रपति जिया उर रहमान ने की थी। उनकी मंशा थी कि एक ऐसे क्षेत्रीय संगठन की स्थापना की जाये जो समानता, आपकी समझ, विश्वास और साझेदारी की भावना पर आधारित हो तथा दक्षिण एशियाई राष्ट्रों को अपनी समान समस्याओं के समाधान हेतु विचार-विमर्श के लिए एक मंच उपलब्ध करवा सकें ताकि अन्य राष्ट्रों का इस क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं हो सके तथा दूसरे क्षेत्र के राष्ट्रों को यहाँ पंचायत करने का मौका नहीं मिले। चार साल के प्रयत्नों के परिणामस्वरुप सार्क ने अपना स्वरुप ग्रहण किया।

इस क्षेत्र के सात देशों के विदेश सचिवों की एक साथ पहली बार अप्रैल, 1981 में श्रीलंका की राजधानी कोलम्बों में बैठक हुई। इसके बाद दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग के घोषणा पत्र को 1983 में नई दिल्ली में क्षेत्र के देशों के विदेश मन्त्रियों ने मंजूरी दी। इसके बाद दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) का गठन करने के लिए 1985 में 7-8 दिसम्बर को बांग्लादेश की राजधानी ढ़ाका में सभी सात देशों की सरकारों के प्रमुखों का शिखर सम्मेलन हुआ।[2]

यह दक्षिण एशिया के लोगों के लिए एक नये युग का सूत्रपात और यादगार क्षण था, क्योंकि इसने दक्षिण एशियाई देशों को उत्तर औपनिवेशिक कालीन राजनीति के चंगुल से बाहर निकलने की राह दिखाई।[3] चूँकि इस संगठन का उद्देश्य क्षेत्रीय सहयोग स्थापित करना था अत: कुछ सहयोग के क्षेत्रों का निर्धारण भी इसके चार्टर पर हस्ताक्षर के समय किया गया, जैसे-विज्ञान तथा तकनीकी, दूरसंचार तथा यातायात, खेलकूद, सांस्कृतिक समन्वय व सहयोग, ग्रामीण विकास, कृषि, स्वास्थ्य सेवाएँ... आदि।

लक्ष्य- जहाँ तक सार्क के लक्ष्यों की बात है इसमें सर्वप्रथम दक्षिण एशिया के देशों में सामूहिक आत्मनिर्भरता की स्थिति प्राप्त करना था अर्थात् दक्षिण एशिया को राष्ट्रों की प्रमुख जरुरतें दक्षिण एशियाई राष्ट्रों द्वारा ही पूर्ण हो जाये अन्य राष्ट्रों की तरफ नहीं देखना पड़े। इसी प्रकार दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्रों की सम्पूर्ण जनता का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास तथा जीवन स्तर में उन्नति के प्रयास कर क्षेत्र को समृद्ध बनाना। किसी प्रकार का द्विपक्षीय या बहुपक्षीय विवाद होने की स्थिति में इस संगठन के मंच पर विचार-विमर्श द्वारा समाधान करने की कोशिश करना ताकि विवाद अधिक नहीं गहराये और युद्धजनित स्थितियों का खात्मा हो सके। संघ के माध्यम से सभी दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की स्थिति उन्नत कर विश्व के अन्य क्षेत्रीय संघों के साथ मेल-जोल तथा समन्वय बढ़ाकर विश्व शान्ति की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना/अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर दक्षिण एशिया की एकता का प्रदर्शन करना।

इसी प्रकार सार्क के कार्य करने के भी कुछ सिद्धान्त निश्चित किये गये, जैसे सभी राष्ट्रों की सम्प्रभुता तथा स्वतन्त्रता की समानता तथा क्षेत्रीय अखण्डता की रक्षा, संघ के नाम किसी भी राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना तथा संघ को द्विपक्षीय विवादों का अखाड़ा नहीं बनाना। संघ के सदस्यों का द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय सहयोग संघ के उत्तर दायित्वों का विरोधी नहीं होगा। इसका मुख्यालय नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में स्थापित किया गया।

दक्षिण एशिया के आठ देश एशिया महाद्वीप के 10 प्रतिशत से ज्यादा भू-भाग और दुनिया के 2-4 प्रतिशत भू-भाग को घेरते है। इन देशों में एशिया की आबादी का 34 प्रतिशत और दुनिया की आबादी का 16 प्रतिशत निवास करती है। क्रय शक्ति पक्ष पर आधारित इन देशों की जी.डी.पी. 3.57 खरब डॉलर है। वर्ष 2010 में इनकी सम्मिलित विकास दर 7 प्रतिशत से ज्यादा रही और क्षेत्र में उपभोक्ता आधार पर 42.5 करोड़ लोग मध्यम वर्ग की श्रेणी में है और 423 अरब श्रम शक्ति है।[4]

दक्षिण एशिया क्षेत्र मानव विकास सूचकांक की रैंकिंग में भी काफी पीछे हैं। सार्क के आठों देश विकास स्तर व अन्य कई आधारों पर गहन असमानता रखते है। एक तरफ भारत जैसा विशाल क्षेत्रफल व जनसंख्या वाला परमाणु शक्ति सम्पन्न देश है तो दूसरी तरफ मालद्वीव जैसा छोटे से क्षेत्रफल वाला देश भी है। इन राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय जी.डी.पी. तथा जी.डी.पी. प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर भी बहुत असमानता है और ये असमानता ही कई बार सार्क के छोटे देशों के मन में कई तरह की आशंकाओं को जन्म देती है। भौतिक और मानवीय भूगोल तथा विभिन्न ऐतिहासिक अनुभवों के अन्तर के आधार पर इन देशों में रणनीतिक तथा राजनीतिक समझ का अन्तर भी स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रारम्भ में सार्क अर्थात दक्षेस के लक्ष्यों में आर्थिक तत्व की प्रधानता थी परन्तु बाद में जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति तथा विकास इस संगठन के अन्तर्गत शामिल होते गये।

सार्क के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समय-समय पर इसके शिखर सम्मेलन आयोजित होते रहते है तथा विदेश मन्त्रियों की बैठक भी इसकी आगामी कार्ययोजना तथा मुद्दों पर विचार-विमर्श हेतु आयोजित होती रहती है।

सार्क के शिखर सम्मेलन:

सार्क के अब तक 18 शिखर सम्मेलन आयोजित हो चुके है जिन्हें निम्न तालिका के अनुसार समझा जा सकता है-

क्र.सं.	स्थान	समय/वर्ष
1	ढ़ाका (बांग्लादेश)	7-8 दिसम्बर, 1985
2	बैंगलोर (भारत)	16-17 नवम्बर, 1986
3	काठमाण्डु(नेपाल)	2-4 नवम्बर, 1987
4	इस्लामाबाद(पाकिस्तान)	29-31 दिसम्बर, 1988
5	माले (मालदीव)	21-33 नवम्बर 1990
6	कोलम्बों (श्रीलंका)	21 दिसम्बर, 1991
7	ढ़ाका (बांग्लादेश)	10-11 अप्रेल, 1993
8	नई दिल्ली(भारत)	2-4 मई, 1995
9	माले (मालदीव)	12-14 मई, 1997
10	कोलम्बों (श्रीलंका)	29-31जुलाई, 1998
11	काठमाण्डु(नेपाल)	4-6 जूबरी, 2002
12	इस्लामाबाद(पाकिस्तान)	4-6 जनवरी, 2004
13	ढ़ाका (बांग्लादेश)	12-13 नवम्बर, 2005
14	नई दिल्ली(भारत)	3-4 अप्रेल, 2007
15	कोलम्बों (श्रीलंका)	1-3 अगस्त, 2008
16	थिम्पू (भूटान)	28-29 अप्रेल,2010
17	आडू सिटी (मालदीव)	10-11 नवम्बर, 2011
18	काठमाण्डु(नेपाल)	26-27 नवम्बर, 2014

19 वां शिखर सम्मेलन 2016 में पाकिस्तान में प्रस्तावित हैं। तालिका के अध्ययनोपरान्त स्पष्ट होता है कि पहले पॉच शिखर सम्मेलन प्रतिवर्ष आयोजित रहे परन्तु बाद में डेढ़ से दो वर्ष के अन्तराल पर आयोजित हुए है। दसवें तथा ग्यारहवे शिखर सम्मेलन में सर्वाधिक अन्तराल सार्ढे तीन वर्ष का रहा क्यों कि 1999 में इस्लामाबाद में 11 वां शिखर सम्मेलन आयोजित होना था परन्तु कारगिल प्रकरण व पकिस्तान में सैन्य शासन की स्थापना होने के कारण इस्लामाबाद को यह मेजबानी नही मिली। उस समय भारत-पाक का द्विपक्षीय विवाद गहराया हुआ था।

सार्क की उपलब्धियॉं :

सार्क आज विश्व स्तर पर दक्षिण एशिया की महत्वपूर्ण पहचान बना हुआ है तथा प्रतिष्ठित संगठनों की गिनती में भी शामिल हैं। विश्व के कई राष्ट्र इसकी बैठक में पर्यवेक्षक के रूप में भाग लेने को आतुर रहते हैं तथा इसकी कार्य-प्रणाली का अध्ययन भी करना चाहते हैं।

दक्षिण एशिया के सभी देशों की जनता का सर्वागीण विकास तथा कल्याण ही आज 'दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग सगंठन' का प्रमुख लक्ष्य है तथा इनकी प्राप्ति में यह निरन्तर प्रयत्नशील हैं। तीसरे शिखर सम्मेलन में सार्क सदस्य राष्ट्रों ने आतकंवाद पर दवाब बनाने हेतु सार्क क्षेत्रीय कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किये और दक्षिण एशिया खाद्य सुरक्षा भण्डार स्थापित करने हेतु समझौते पर हस्ताक्षर किये। इसी प्रकार चौथे शिखर सम्मेलन में दक्षिण एशिया की लगभग एक अरब आबादी को आवास व शिक्षा देने हेतु एकीकृत योजना पर जोर दिया गया। परमाणु निरस्त्रीकरण पर बल देते हुए सकारात्मक माहौल बनाने का स्वागत किया गया। क्षेत्र में मादक द्रव्यों की तस्करी को खत्म करने पर भी बल दिया गया ताकि दक्षिण एशिया समाज समुन्नत हो सके। छठे शिखर सम्मेलन में गरीबी उन्मूलन के लिए सार्क समिति की स्थापना पर सहमति व्यक्त की गई तथा 2000 तक दक्षिण एशिया के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करने पर भी सहमति बनी। इसी तरह आतंकवाद को रोकने पर व्यापक सहयोग हेतु भी दक्षेस सदस्यों ने आपस में सूचनाओं के आदान-प्रदान पर सहमति अभिव्यक्त की।

सदस्य राष्ट्रों के बीच व्यापार के उदारीकरण के लिए संस्थागत ढॉंचे की स्थापना पर भी सहमति बनी। सार्क सूचना केन्द्र व सार्क ऑडियो

विजुअल एक्सचेंज प्रोग्राम चालू किया। सार्क में निर्णय लिया गया कि विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों की योजना, नवयुवकों के लिए रोजगार से सम्बन्धित योजनाएँ चालू की जाये। भारत के प्रधानमन्त्री श्री चन्द्रशेखर ने सार्क संगठन को आर्थिक दिशा देने में पहल की ताकि उद्योगों और सेवाओं की स्थापना एवं विस्तार हो सके तथा पारस्परिक व्यापार में वृद्धि हो सके।

इस समय तीसरी दुनिया के राष्ट्र नवीन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की भी मांग कर रहे थे ताकि नव उपनिवेशवाद से बचा जा सके। यह निश्चय किया गया कि सार्क के सम्पन्न देश भारत तथा पाकिस्तान कम सशक्त तथा जरुरतमंद राष्ट्रों की सहायता करे तथा इकतरफा रियायतें देकर प्रतिफल की आशा न करे। भारत ने सदैव ही दक्षिण एशियाई पड़ौसी राष्ट्रों को आर्थिक सहायता देने की नीति अपनाये रखी है और बदले में कभी भी सहायता की अपेक्षा नहीं रखी है। भारत की मात्र यही अपेक्षा रहती है कि सार्क सदस्य आपसी सामन्जस्य तथा सद्भावना बनाये रखे तथा आन्तरिक व द्विपक्षीय विवादों को सार्क के मंच पर न लाकर दक्षिण एशिया में शान्ति का माहौल बनाये रखें। भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री आई.के. गुजराल द्वारा प्रतिपादित 'गुजराल सिद्धान्त' पर भी यहाँ दृष्टि डालना समीचीन होगा, जो कि भारत द्वारा पड़ौसी राष्ट्रों को सहायता देने का जीता जागता उदाहरण है।

गुजराल सिद्धान्त के प्रमुख तत्व-

1. पड़ौसी देशों जैसे श्रीलंका, बांग्लादेश, पाकिस्तान, भूटान, नेपाल से भारत यह अपेक्षा नहीं करेगा कि हम उनके लिए करें वैसा वो भी हमारे लिए करें। हमें ईमानदारी और सच्चाई से इनके लिए अच्छा करना चाहिये।
2. दक्षिण एशिया के किसी देश को भी अपनी भूमि इस क्षेत्र में रहने वाले किसी अन्य राष्ट्र के विरुद्ध प्रयोग नहीं होने देनी है।
3. दक्षिण एशियाई देश आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगें।
4. सभी दक्षिण एशियाई देशों को एक-दूसरे की सीमा और सार्वभौमिकता का सम्मान करना है।
5. द्विपक्षीय विवाद बातचीत से निपटाने है।[5]

भारत के 'गुजराल सिद्धान्त' का सीधा तात्पर्य यही है कि दक्षिण एशिया के राष्ट्रों की जिन आवश्यकताओं की पूर्ति भारत द्वारा हो सकती है, वो भारत ही पूर्ण करे तथा अन्य महाद्वीपों/राष्ट्रों की और नहीं देखना पड़े। दक्षिण दशिया सर्वप्रथम दक्षिण वालों के लिए है बाद में अन्य किन्हीं राष्ट्रों के लिए। अभी भारत की नवीन सरकार में प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में सभी सार्क राष्ट्रों के शासनाध्यक्षों/राष्ट्राध्यक्षों को आमन्त्रित कर यही साबित किया है कि पड़ौसी राष्ट्र भारत के लिए सर्वोपरि है उसके बाद पूरा विष्व। नरेन्द्र मोदी ने सबसे पहली विदेश यात्रा दक्षिण एशिया के छोटे से देश भूटान से शुरु की थी। बीसवीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रमुख आधार आर्थिक तत्व बन चुके थे इसलिए सार्क सदस्य राष्ट्रों ने भी आर्थिक सहयोग पर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया क्योंकि यह सत्य है कि जिस राष्ट्र या राष्ट्र समूह के पास आर्थिक सामर्थ्य है विश्व स्तर पर उन्हीं का वर्चस्व स्थापित रहता है। सार्क के सदस्यों ने आपसी व्यापार बढाने और व्यापार बाधाओं को कम करते-करते खत्म करने की ओर ध्यान केन्द्रित किया। इसी के परिणाम के रुप में 'साप्टा' अर्थात् दक्षिण एशियाई व्यापार वरीयता समझौता एवं 'साटा' अर्थात् दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार समझौता उभरकर आये।

आर्थिक स्तर पर सार्क प्राथमिकता व्यापार व्यवस्था यानि 'साप्टा' समझौते के रुप में 1993 के अप्रैल में बड़ी उपलब्धि हासिल हुई। इसे 7 दिसम्बर से लागू किया गया। साप्टा के अन्तर्गत 1995 में तय हुए 226 उत्पादों के व्यापार में प्राथमिकता प्रदान की गई थी। यह संख्या चार दौर की बातचीत के बाद साल 2000 तक बढ़कर 4700 उत्पादों पर लागू हो गई थी।[6] सार्क देशों की प्रगति निरन्तर बढती रही और सदस्य राष्ट्रों, खासकर भारत - पाकिस्तान ने आपसी व्यापार टैरिफ शुल्क की बाधाओं को खत्म करने, संयुक्त उद्यम, पूँजी निवेश... आदि मुद्दों पर सहमति बनाये पर वार्ता, विचार-विमर्श भी प्रारम्भ किया। सार्क देशों ने न केवल व्यापार के विकास पर ध्यान दिया, अपितु सदस्य देशों में आधारभूत इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास करने, उद्योगों के पुनर्निर्माण, तकनीकी के विकास, बैंकों के विकास, शिक्षा के विकास, गरीबी निवारण के उपाय, स्वास्थ्य समस्याओं के निदान... आदि पर भी व्यापक सहयोग हेतु सहमति व्यक्त की। इन राष्ट्रों ने अब बीजा नियमों में ढ़ील तथा बीजा प्रणाली खत्म करने पर भी विचार शुरु किया।

साल 2004 में जनवरी में हुए शिखर सम्मेलन में सार्क देशों के विदेशमन्त्रियों ने दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र यानि 'साप्टा' समझौता पर हस्ताक्षर किये। यह समझौता 2006 में 1 जनवरी से लागू हुआ। समझौता लागू होने के सात वर्ष के भीतर पाकिस्तान, भारत, श्रीलंका तटकर की दरों में 5 प्रतिशत तक कटौती करेंगे। सार्क देश अन्त: सार्क व्यापार के लिए प्राथमिकता प्रदान करने के वास्ते उत्पादों की सूची को भी अधिकतम संख्या तक बढ़ायेंगे।[7]

इन सालों में इस क्षेत्रीय संगठन ने कई उल्लेखनीय उपलब्धियाँ जैसे वैश्यावृति के लिए महिलाओं और बच्चों की तस्करी पर सार्क प्रस्ताव (2002), संगठित पर्यटन के प्रोत्साहन के लिए सार्क योजना, सार्क की सदस्यता में विस्तार, सार्क विकास कोश की शुरु आत, दक्षिण एशियाई विश्व विद्यालय की स्थापना, सार्क खाद्य कोष का गठन, सार्क मध्यस्थता परिषद् का गठन आदि हासिल की है।[8]

दक्षिण एशिया विश्वविद्यालय का विचार भी एक क्रान्तिकारी कदम ही कहा जा सकता है जिसके औपचारिक समझौते पर हस्ताक्षर सार्क के 14 वें शिखर सम्मेलन के दौरान हुए थे जो कि नई दिल्ली (भारत) में आयोजित हुआ था। उक्त विश्वविद्यालय की आधारशिला दिल्ली के

मेहरोली स्थित मैदान गढ़ी में भारत के तत्कालीन विदेश मन्त्री प्रणव मुखर्जी ने सन् 2008 में रखी थी। इससे शिक्षा के विकास के साथ ही आर्थिक व सामाजिक प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। क्योंकि माले में 1997 में आयोजित शिखर सम्मेलन में यही बात उभरकर आई भी कि शिक्षा के कम स्तर के कारण ही सार्क सदस्य राष्ट्र आर्थिक व सामाजिक रुप से पिछड़े हुए है तथा राष्ट्रों का आपसी मेलजोल व समन्वय भी इसी कारण से कम हो पाता है। इसलिय सार्क विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी। आर्थिक रुप से एकीकरण के प्रयास 'साप्टा' व 'साटा' के माध्यम से हो ही रहे थे सार्क देशों में श्रीलंका व मालद्वीव को छोड़कर शेष सभी राष्ट्रों के साथ भारत की स्थल सीमा जुड़ी हुई है।

भारत इन सभी आठों राष्ट्रों में सबसे अधिक विकसित, समृद्ध विशाल क्षेत्रफल व जनसंख्या वाला तथा प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर राष्ट्र है एवं अन्य सभी राष्ट्रों की यथा आवश्यकता सभी तरह की सहायता सदा करता आया है। यद्यपि सार्क सदस्य कई बार भारत की विशालता एवं समृद्धि को भी भय के रुप में देखने लग जाते हैं कि कहीं वह इन छोटे व कम विकसित राष्ट्रों पर अपनी राजनीतिक व आर्थिक प्रभुता तो स्थापित नहीं कर लेगा? यद्यपि भारत की इस तरह की कोई सोच उसके आचरण से परिलक्षित नहीं होती है तथा वह दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के बड़े भाई के रुप में अपनी भूमिका निभाता है तथा विश्व शान्ति व सह-अस्तित्व की विदेश नीति में विश्वास करने वाला राष्ट्र है फिर भी छोटे पड़ोसी राष्ट्र अपने अनावश्यक भय के कारण और कभी-कभी व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण चीन के प्रति झुकते नजर आते हैं। चीन, वैसे ही भारत का प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र जो कि दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के सामने आर्थिक सहायता का झुनझुना लिए खड़ा रहता है कि कब ये राष्ट्र भारत के प्रति दूरियाँ बनाये और चीन उन्हें आर्थिक लाभ के प्रलोभन चक्र में फंसाकर दक्षिण एशिया में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लें।

फिर भी सार्क देशों ने इस संगठन के माध्यम से विश्व स्तर पर अपने क्षेत्र की पहचान बनाने में सफलता हासिल की है यही वजह है कि आज विश्व के विशाल व धनी राष्ट्र 'सार्क' के शिखर सम्मेलनों में पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त करने से आतुर रहते हैं।

यह इस क्षेत्रीय संगठन की सफलता का ही परिचायक ही है। यह आपसी साझा समस्याओं के समाधान हेतु एक महत्वपूर्ण मंच बना हुआ है। 2010 में इसके मन्त्रियों ने एक इन्टरपोल जैसे पुलिस व्यवस्था के निर्माण पर विचार किया ताकि सीमा पार आतंकवाद व उसके जाल, मानवों का अवैध आवागमन, मादक द्रव्यों की तस्करी... आदि समस्याओं से क्षेत्र को मुक्त कराया जा सके।

चुनौतियाँ व असफलताएँ

1960-70 के दशक में विश्व स्तर पर पनप रहे क्षेत्रीय संगठनों का ही प्रभाव था कि दक्षिण एशिया के राष्ट्र भी क्षेत्र की एकता को मजबूत करने के प्रयत्न करने लगे और दिसम्बर, 1985 में सार्क (SAARC) अर्थात् 'दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन' अस्तित्व में आया, जिसका लक्ष्य क्षेत्र की समग्र जनता का सर्वांगीण विकास तथा कल्याण करना था। आज सार्क को अस्तित्व में आये लगभग तीन दशक यानि तीस साल हो चुके परन्तु इसकी उपलब्धियाँ वैसी नहीं नजर आती जैसी कि आसियान, पैसिफिक, यूरोपीयन समुदाय... आदि में दिखाई देती है। अभी तक वह अपनी कछुआ चाल ही अपनाये हुए हैं।

सार्क की कम उपलब्धियों के पीछे सबसे बड़ा कारण है इन राष्ट्रों के आन्तरिक तनाव व विवाद, जिन्हें ये राष्ट्र सार्क मंच पर यदा-कदा उठाते रहते हैं। सार्क के बहुत सारे राष्ट्रों के बीच द्विपक्षीय सीमा विवाद व अन्य किसी प्रकार के विवाद विद्यमान है। भारत व पाक के बीच सीमा-विवाद, भारत-बांग्लादेश के बीच सीमा विवाद, भारत-श्रीलंका के बीच जातीय हिंसा, पाक अफगानिस्तान विवाद, इस तरह क्षेत्रीय विवाद इन राष्ट्रों को अटकायें रखते हैं तथा ये प्रगतिशील सकारात्मक विचार-विमर्श नहीं कर पाते हैं। भारत और पाकिस्तान दोनों अन्य राष्ट्रों की तुलना में अधिक सक्षम व विकसित है तथा परमाणु क्षमता भी दोनों को हांसिल है। परन्तु इन दोनों के बीच ही सर्वाधिक द्विपक्षीय सीमा विवाद बना हुआ है। इतिहास गवाह है इनके बीच तीन शस्त्र युद्ध भी हो चुके हैं और पाकिस्तान इनके द्विपक्षीय विवाद खासकर कश्मीर विवाद को सार्क तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उछालने की कोशिश करता रहता है जो कि सार्क जैसे संगठन के हित अत्यधिक अहितकर बात है। सार्क राष्ट्रों में भारत के अतिरिक्त कहीं पर भी लोकतंत्र अपनी स्थायी जड़े नहीं जमा पाया हैं।

तीस वर्ष के अस्तित्व के बावजूद, दक्षेस ने बहुत ही धीमी और सुस्त प्रगति दर्ज की है। क्षेत्र में बहुत असें बाद सरकारों के लोकतान्त्रिक स्वरुप ने कुछ जमीन हासिल करना शुरु किया है और कुछ देशों की आर्थिक वृद्धि दर में भविष्य के लिए कुछ सकारात्मक संकेत दिखाई दिये हैं।[9] भारत-बांग्लादेश का सीमा विवाद भी इसकी 'कोढ़ में खाज' के समान प्रतीत होता है, जबकि बांग्लादेश का निर्माण भारत के सहयोग से ही हुआ है परन्तु वह भी अपने तुच्छ स्वार्थों के खातिर कभी-कभी भारत विरोधी स्वर उगलने लग जाता है एवं पड़ौसी राष्ट्र चीन की दया दृष्टि की अपेक्षायेंकरने लगता है। नेपाल जो कि भारत और चीन के बीच 'बफर स्टेट' की हैसियत रखता है वह भी चीनी आर्थिक सहायता के आगे भारत की सहायता को भूल जाता है तथा चीनी स्वर में स्वर मिलाने लगता है जबकि भारत ने नेपाल में पन बिजली परियोजना व अन्य पर लाखो-करोड़ों रुपये खर्च कर दिये हैं अर्थात् भारत के पड़ौसी राष्ट्र भारत की मजबूत स्थिति को ही अपने लिए कई बार परेशानी मान बैठते हैं। दक्षिण एशिया के सभी देश भारत के सामने बौना महसूस करने लगे। दुर्भाग्यवश, भारत के इसी बढ़ते कद की बदौलत, ऐसे हालात भी उत्पन्न हुए है, जिसमें छोटे

पड़ोसी देश उसे गलत नजरिये से ''बड़े भाई'' जैसा व्यवहार करने वाले देश के रुप में देखने लगे हैं। कभी-कभी तो कई पड़ोसियों को लगने लगा है कि भारत से रियायतें प्राप्त करने के लिए तथाकथित ''चीन कार्ड'' खेलना मुनासिब होगा।[10]

दक्षिण एशिया में सार्क के तत्वावधान में 'साप्टा' और 'साटा' जैसे समझौते प्रशंसनीय कदम कहे जा सकते हैं परन्तु आर्थिक सहयोग की रफ्तार भी अभी काफी धीमी ही नजर आती है।

यह बात सदस्य देशों के बीच आपसी क्षेत्रीय वृद्धि के प्रतिशत की तुलना करने पर स्वत: साफ हो जाती है। यह 1980 के दशक में 3.2 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में महज 5.5 प्रतिशत हो पाई थी। यह आँकड़े नाटो के 58 प्रतिशत, यूरोपीय संघ के 54 प्रतिशत, आसियान के 25 प्रतिशत और कॉमेसा के 22 प्रतिशत के मुकाबले ऊँट के मुँह में जीरे के समान हैं।[11]

आज बाहर के देशों की सार्क में रुचि बढ़ रही है जिसका परिणाम कई बार नकारात्मक अहसास कराता है। 2005 से ऑस्ट्रेलिया, चीन, यूरोपीयन यूनियन, ईरान, जापान, द. कोरिया, मालदीव, म्यांमार और अमेरिका सार्क के पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त किये हुए हैं। चीन तो सार्क का स्थायी सदस्य बनने का इच्छुक है ताकि दक्षिण एशिया में अपने उत्पादों को भर सकें तथा क्षेत्रीय राजनीति में अपना दबदबा कायम कर सके। पाकिस्तान भी चीन को स्थायी सदस्यता देने का बहुत पक्षधर है परन्तु भारत ऐसा हरगिज नहीं होने देगा क्योंकि चीन के इसमें शामिल होते ही सार्क का असली मन्तव्य खत्म हो जायेगा। चीन प्रारम्भ से ही अपनी समकक्ष शक्ति भारत को कमजोर करने के लिए पाकिस्तान का सहयोग और समर्थन करता आया है क्यों कि एशिया में भारत ही चीन का एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी है। चीन आज श्रीलंका, नेपाल, अफगानिस्तान.... सभी जगह इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास करके क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता जा रहा है।

सीमा पार आतंकवाद, मानव तथा मादक द्रव्यों की तस्करी से दक्षिण एशिया क्षेत्र की जनता पीड़ित है। जम्मू-कश्मीर की आतंकवादी कार्यवाहियाँ सार्क की प्रगति में अवरोधक बनकर समय-समय पर उभरती रहती है। श्रीलंका की जातीय समस्या अभी भी खत्म नहीं हो पाई है। हालांकि लिट्टे का सफाया हो चुका है परन्तु परेशानी अपनी जगह बनी हुई। नेपाल में कितनी ही बार संविधान बन गया परन्तु राजनीतिक व्यवस्था स्थायित्व को प्राप्त नहीं कर सकी। अभी हाल ही में बनाया गया संविधान भी संकट की झोली में ही झूल रहा है। सार्क के अन्तर्गत कम रफ्तार से बढ़ रहे आर्थिक सम्बन्धों को दुरुस्त करने पर ध्यान दिया जाना चाहिये। आज चीनी वस्तुओं से सारा दक्षिण एशिया का बाजार भरा पड़ा, यदि ये राष्ट्र एकजुट होकर चीनी सामानों का बहिष्कार कर दें और अपने यहाँ के उत्पादों (द. एशिया) से अपनी जरुरतों की पूर्ति करें तो यहाँ का धन दूसरे क्षेत्र में जाने से बचेगा तथा यहाँ की अर्थव्यवस्थाओं का सुदृढ़ीकरण होगा।

'साप्टा' के मार्ग की सभी बाधाओं का निराकरण भी इन राष्ट्रों को मिल बैठकर करना चाहिये तथा आवाजाही तथा पारगमन के नियमों को सरल व सुगम बनाना चाहिये। पिछले साल नवम्बर, 2014 में सार्क का 18वां शिखर सम्मेलन नेपाल की राजधानी काठमाण्डु में आयोजित हुआ परन्तु इसकी उपलब्धि व अपेक्षाओं से काफी कुछ कम सफलता ही प्राप्त कर पाया। इसके एजेण्डा के सर्वोच्च स्तर पर सड़क, रेल तथा ऊर्जा पर सम्पर्क समझौते रखे गये परन्तु इनमें केवल एक ऊर्जा पर सम्पर्क समझौते पर ही हस्ताक्षर हो सके। शेष दो समझौते तीन माह बाद जब पाकिस्तान इनकी आन्तरिक प्रक्रियाओं की पूर्ति कर देगा तब हस्ताक्षरित होंगे। इस सम्मेलन में सभी राष्ट्रों द्वारा आतंकवाद को प्रमुख मुद्दे के रुप में उठाया गया था परन्तु उससे लड़ने या उसे खत्म करने पर कोई खास समाधान नहीं निकल पाया। इसी तरह निवेश का प्रवाह बढ़ाने और 'क्षेत्र के एकीकृत विकास' हेतु अर्थव्यवस्थाओं को समृद्ध करने व वित्तीय प्रबन्ध करने पर भी कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं निकल पाया।

आज सार्क की स्थापना को लगभग 30 वर्ष पूर्ण होने वाले हैं परन्तु इसके मात्र 18 शिखर सम्मेलन आयोजित हो पाये हैं, जबकि प्रतिवर्ष शिखर सम्मेलन आयोजित करने का लक्ष्य रखा गया था। यह इसकी असफलता का संकेत ही प्रतीत होता है क्योंकि इसके सदस्य राष्ट्रों के बीच द्विपक्षीय विवाद, आतंकी घटना या किसी राष्ट्र में तख्ता पलट आदि कारणों से इसके शिखर सम्मेलन नियमित रुप से आयोजित नहीं हो पा रहे हैं।

निष्कर्ष:-

अन्तत: हम कह सकते हैं कि सार्क विगत 29-30 सालों में दक्षिण एशिया क्षेत्र की महत्वपूर्ण पहचान तथा आपसी समस्याओं एवं हितों पर विचार-विमर्श का मंच बनकर उभरा है। क्षेत्रीय एकता तथा अखण्डता की रक्षा करने में भी सार्क ने अच्छी भूमिका निभाई है। हालांकि आसियान, पैसिफिक, यूरोपीयन समुदाय जैसी उपलब्धियाँ यह अभी तक किन्हीं कारणों से हांसिल नहीं कर पाया है परन्तु इसकी प्रगति को नजरअन्दाज कर देना भी बेमानी होगा। सार्क ने दक्षिण एशिया क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, तकनीकी विकास में महत्वपूर्णं भूमिका निभाई है। क्षेत्र की जनता के सर्वांगीण कल्याण का लक्ष्य भी सार्क ने अपनाया हुआ है। 1995 से आर्थिक विकास के लक्ष्य की ओर ध्यान केन्द्रित किया तथा साप्टा एवं साटा जैसे महत्वपूर्ण समझौते सार्क देशों के बीच सम्पन्न हुए।

सार्क द्वारा निर्धारित उद्देश्यों में कोई कमी नहीं है बल्कि सदस्य देशों के आपसी अविश्वास की भावना, सन्देह की भावना के कारण विभाजित हो जाते हैं और दृढ़तापूर्वक निर्णय नहीं ले पाते हैं। सार्क के अत्यन्त अल्पविकसित राष्ट्र भारत के विशालकाय आकार से चिन्तित हुए रहते हैं जबकि भारत ने कभी भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पड़ौसी राष्ट्रों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखी है। भारत में किसी भी दल की सरकार रही हो, पड़ौसी राष्ट्रों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की

स्थापना की नीति पर सभी ने व्यवहार में अमल किया है। वर्तमान सरकार में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा सार्क देशों के शासनाध्यक्षों/राष्ट्राध्यक्षों को शपथग्रहण समारोह मे नई दिल्ली आमन्त्रित किया गया। इस सुखद पहल के पीछे दक्षिण एशिया में सद्भावनापूर्ण व शान्ति का माहौल बनाये रखने की मंशा ही भारत में नजर आती हैं। आवश्यकता है दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्र अपने द्विपक्षीय सीमा-विवाद सहित, सभी विवादों का मिल-बैठकर बातचीत द्वारा समाधान कर लें और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों तथा संगठनों पर एकीकृत राय रखें।

सार्क देशों को राजनीतिक, कूटनीतिक सम्बन्धों के विकास के साथ ही आर्थिक सहयोग पर सबसे अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। ऊर्जा संसाधनों के विकास तथा सहकारी उपयोग पर बल दिया जाना चाहिये क्योंकि ऊर्जा संसाधन किसी भी देश के आर्थिक विकास में रीढ़ की भूमिका निभाते हैं। सार्क देशों को सड़कों, नदियों, बिजली ग्रिड़ों को आपसी सम्पर्क सूत्र में बाँध लेना चाहिये। चीन के बजाय बर्मा को सार्क का सदस्य बना लिया जाये तो उचित होगा। साझा व्यापार के विकास हेतु वीजा प्रणाली, टैरिफ शुल्क व अन्य प्रकार की औपचारिकताओं को कम कर देना चाहिए।

सीमा पार आतंकवाद इस क्षेत्र की सबसे बड़ी त्रासदी है इसे खत्म करने में सभी राष्ट्रों को अपने स्तर पर सहयोग करना चाहिये क्यों कि इससे विश्व स्तर पर इस क्षेत्र की गरिमा खत्म होती है। सार्क देशों को ऐसे सुखद क्षेत्र की गरिमा माहौल का विकास करना चाहिये जिससे क्षेत्र का समुन्नत विकास व कल्याण हो सके तथा कोई तीसरा पक्ष मध्यस्थता की भूमिका में न आ सके। सार्क संगठन का भविष्य उज्जवल कहा जा सकता है और यह कुछ वर्षों में आसियान की प्रगति के समकक्ष अवश्य खड़ा होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *पूर्णिमा शाह, सार्क देशों के बीच सहयोग और संघर्ष, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, पृष्ठ-61*
2. *अमृता बनर्जी का लेख - मालदीव और सार्क, वर्ल्ड फोकस, नवम्बर, 2012, पृष्ठ-55*
3. *अमृता बनर्जी का लेख - मालदीव और सार्क, वर्ल्ड फोकस, नवम्बर, 2012, पृष्ठ-55*
4. *प्रो. त्रिदिब चक्रवर्ती का लेख - सार्क: नई विश्व व्यवस्था में उगता सूर्य वर्ल्ड फोकस, नवम्बर 2012, पृष्ठ - 34*
5. *जी.एल. कुल्हरि - बदलते अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में भारत-पाक सम्बन्ध, पृष्ठ 12-13*
6. *डॉ. चंचल कुमार का लेख- भारत-पाक सम्बन्ध तथा सार्क: सहयोग निर्माण, पृष्ठ-75*
7. *डॉ. चंचल कुमार का लेख- भारत-पाक सम्बन्ध तथा सार्क: सहयोग निर्माण, पृष्ठ-75*
8. *प्रो. त्रिदिब चक्रवर्ती का लेख - पूर्व उद्धृत, पृष्ठ-34*
9. *अचल मलहोत्रा का लेख- भारत और पड़ौस: नई आशाएं, नई दिशाएं योजना, जुलाई, 2015 पृष्ठ-10*
10. *अचल मलहोत्रा का लेख- भारत और पड़ौस: नई आशाएं, नई दिशाएं योजना, जुलाई, 2015 पृष्ठ-10*
11. *नेहा मेहता का लेख - सार्क देश आपस में बेहतर भागीदार कैसे बन सकते हैं, वर्ल्ड फोकस नवम्बर- 2012, पृष्ठ-62*

राज्यपाल की संवैधानिक प्रमुख के रुप में भूमिका

सरोज महला
शोध छात्रा, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

भारतीय संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल का पद एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गरिमामय पद है। संविधान निर्माताओं द्वारा भारत के लिए संघात्मक ढाँचे की स्थापना की गई है। जिसमें राज्यपाल की भूमिका केन्द्र तथा राज्य प्रशासन के बीच एक कड़ी स्वरुप है। केन्द्र तथा राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध यथासम्भव राज्यपाल के व्यक्तित्व व विवेकपूर्ण आचरण पर निर्भर करते हैं। राज्यपाल का पद मात्र आलंकारिक पद नहीं है। एक ओर जहाँ वह केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि के रुप में कार्य करता है वहीं दूसरी ओर वह राज्य का संवैधानिक प्रधान भी है। इसलिए राज्य के हित तथा कल्याण के संरक्षण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसके ऊपर होता है।

वस्तुत: राज्यपाल का पद भारत के लिए कोई नवीन पद नहीं है। आजादी के पूर्व ब्रिटिश शासनकाल के दौरान राज्यपाल के पद का उद्भव और विकास हुआ। स्वतन्त्र भारत राज्यों का संघ है। प्रत्येक राज्य के लिए दो या अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपना पद धारण करता है। राज्यपाल की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जाती है, लेकिन वह अपने उत्तराधिकारी के पद ग्रहण करने तक अपने पद पर बना रहेगा।

राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मंत्रिपरिषद् होती है। संविधान के द्वारा राज्यों में भी संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गयी है और इस संसदात्मक व्यवस्था में राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है जबकि मंत्रिपरिषद् राज्य की कार्यपालिका सत्ता की वास्तविक प्रधान होती है।

नेहरु युग में राज्यपाल का पद 'गाड़ी के पाँचवे पहिये' के समान बनकर रह गया था। इसी कारण से एक भूतपूर्व राज्यपाल पट्टाजा नायडू ने कहा भी था कि ''राज्यपाल सोने के पिंजड़े में निवास करने वाली चिड़िया के समतुल्य है।'' मध्यप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल पट्टाभि सीतारमैय्या के अनुसार ''राज्यपाल का कार्य मेहमानों की इज्जत करना, उनको चाय, भोजन तथा दावत देने के अलावा कुछ नहीं।''

चौथे आम चुनाव तक राज्यपाल का पद अविवादित रहा। उनके व्यवहार और आचरण के सम्बन्ध में किसी ने भी कोई गम्भीर आक्षेप नहीं किया। उस समय तक सभी राज्यपाल अपने पद का उपयोग संवैधानिक मर्यादाओं के भीतर करते रहे और उन्होंने कभी भी लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन करने का प्रयत्न नहीं किया। उस समय तक सभी राज्यपाल अपने पद का उपयोग संवैधानिक मर्यादाओं के भीतर रहे और उन्होंने कभी भी लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन करने का प्रयत्न नहीं किया। इस स्थिति का पहला कारण यह था कि आजादी की लड़ाई में कांग्रेस ने मुख्य भूमिका निभाई जिससे जब देश स्वतन्त्र हुआ तब विभिन्न राज्यों में एक ही दल अर्थात् कांग्रेस की सरकारें बनीं, जिसके कारण केन्द्र तथा राज्यों के अन्त:सम्बन्धों में सामंजस्य और मधुरता बनी रही तथा किसी प्रकार की कोई विषमता सामने नहीं आई।

दूसरा कारण यह है कि चतुर्थ आम चुनाव तक के पहले का युग नेहरु युग था। राज्यों में जिन व्यक्तियों को मुख्यमंत्री के पद पर आसीन किया गया, उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया था और उनके व्यक्तित्व एवं राजनैतिक वनज तथा प्रभाव समकालीन राज्यपालों की तुलना में कुछ अधिक ही था। पण्डित जवाहरलाल नेहरु राज्यों की समस्याओं के सम्बन्ध में सीधे मुख्यमंत्रियों से ही चर्चा करते थे, राज्यपालों के माध्यम से नहीं।

चौथे आम चुनाव के बाद यह मत जोर पकड़ने लगा कि ''पाँचवा पहिया होने की बजाय राज्यपाल का प्रतिष्ठित पद परश्रेष्ठ सामाजिक संस्था और एक वैधानिक आवश्यकता है।'' अब राज्यपाल का पद आभूषणवत् नहीं रह गया था। बदले राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उसे 'एक नयी भूमिका' अदा करनी थी। राज्यपाल की इस 'भूमिका' परिवर्तन के कई कारण थे - प्रथम, मुख्यमंत्रियों के दुर्बल व्यक्तित्व, द्वितीय, एकदलीय बहुमत के बावजूद राज्य स्तर पर पायी जाने वाली दल के भीतर की गुटीय राजनीति, तृतीय, दलबदल की प्रवृत्ति और अस्थिरता, चतुर्थ, राज्यों में प्रादेशिक दलों का शक्तिशाली होना।

राज्यपाल की भूमिका पर इस आधार पर आक्षेप लगाया गया कि कुछ राज्यपाल निष्पक्षता और दूरदर्शिता जिसकी उनसे अपेक्षा की गई थी, के गुणों को प्रदर्शित नहीं कर पाये। कुछ राज्यपालों द्वारा विशेष रुप से राष्ट्रपति शासन की सिफारिश में और राष्ट्रपति के विचार के लिए राज्य विधेयक को आरक्षित रखने में निभाई गई भूमिका से जबरदस्त विद्वेष उत्पन्न हुआ। राज्यपालों को अवधि के समाप्त होने से पूर्व ही बार-बार हटाने का स्थानान्तरण से इस पद की गरिमा कम हो गई। इस बात की आलोचना भी गई है कि संघ सरकार अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राज्यपालों को प्रयोग में लाती है। बहुत से राज्यपाल, जो कि संघ के अधीन अपने पद को बढ़वाने के लिए इच्छुक होते हैं या अपनी सेवा अवधि के बाद राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाना चाहते हैं, स्वयं को केन्द्र के एजेण्ट के रुप में समझते आये हैं। डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में, ''संवैधानिक क्षमता के न्यायिक दृष्टिकोण से ही राज्यपाल की भूमिका पर विचार करना पर्याप्त नहीं है। आवश्यक यह है कि राजनीतिक व्यवस्था की प्रामाणिकता पर पड़े उनके व्यवहार एवं कार्यों के व्यापक प्रभावों का मूल्यांकन किया जाए।

1967 के बाद राज्यपाल की स्थिति के सम्बन्ध में जो तीव्र विवाद उत्पन्न हुआ था इसका सबसे प्रमुख कारण यह था कि राज्यपाल पदधारी व्यक्तियों के द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग किन्हीं निश्चित मापदण्डों के आधार पर नहीं किया गया था और समान परिस्थितियों में भी विभिन्न राज्यों के राज्यपालों के आचरण में भेद था। ऐसी स्थिति में अनेक पक्षों द्वारा यह सुझाव दिया गया कि राज्यपालों के मार्ग-निर्देशन के लिए कुछ सिद्धान्त किये जाने चाहिए। प्रशासनिक सुधार आयोग (1969) का मत था कि राज्यपालों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले स्वविवेकाधिकारों को किस रुप में इस्तेमाल किया जाए इससे सम्बन्धित मार्ग-निर्देशन अन्तर्राज्य परिषद् द्वारा तैयार किये जाने चाहिए तथा केन्द्र द्वारा अनुमोदित किये जाने के बाद राष्ट्रपति के नाम से जारी किये जायें। कुछ राज्यपालों के द्वारा स्वयं भी इस प्रकार के निश्चित निर्देशों की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। अत: दिसम्बर 1970 के राज्यपाल सम्मेलन में सिद्धान्त के रुप में इस बात को स्वीकार किया गया कि राज्यपालों के मार्ग-निर्देशन के लिए कुछ सिद्धान्त निश्चित किये जाने चाहिए। अत: राष्ट्रपति ने राज्यपाल श्री भगवान सहाय की अध्यक्षता में 5 सदस्यों की एक समिति नियुक्त कर राज्यपालों के लिए कुछ सिद्धान्तों व सिफारिशों का प्रतिपादन किया गया परन्तु फिर भी इन सिफारिशों के बावजूद भी समिति ने रिपोर्ट पर यह बल दिया कि न तो भविष्य में उत्पन्न होने वाली सभी परिस्थितियों के सम्बन्ध में सोचा जा सकता है कि विभिन्न परिस्थितियों में राज्यपाल अपनी भूमिका किस प्रकार निभायेंगे।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल की दोहरी भूमिका है। प्रथमत: वह राज्य का प्रधान है और द्वितीय वह राज्य में संघीय सरकार का प्रतिनिधि है। संविधान निर्माता भारत में एक ऐसी संघीय व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जिससे 'सहयोगी संघवाद' की धारणा के आधार पर केन्द्र और राज्य में सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो सकें और प्रशासनिक एकरुपता तथा राष्ट्रीय एकता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके और उनके द्वारा राज्यपाल के पद की व्यवस्था इस लक्ष्य की पूर्ति के एक साधन के रुप में की गयी है। परन्तु वास्तव में अनेक बार राज्यपाल की द्वितीय भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसा विशेष रुप से उस समय होता है जबकि केन्द्र में एक राजनीतिक दल की सरकार हो और राज्य में किसी एक विरोधी राजनीतिक दल की या कुछ विरोधी दलों की मिलीजुली सरकार। व्यवहार के अन्तर्गत जब कभी राज्यपाल की इन दोनों भूमिकाओं में परस्पर विरोध की स्थिति उत्पन्न हुई है तब राज्यपाल ने केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि के रुप में अपनी भूमिका को ही अधिक महत्व दिया है। विरोधी दल सामान्य रुप से यह शिकायत करते हैं कि केन्द्र का शासक दल राज्यपाल पद का उपयोग अपने राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करता है। आवश्यकता इस बात की है कि राज्यपाल की केन्द्र के प्रतिनिधि के रुप में भूमिका और राज्य के संवैधानिक प्रधान के रुप में भूमिका में सामंजस्य स्थापित किया जाए। राज्यपाल पदधारी को केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार दोनों का विश्वास प्राप्त होना ही चाहिए।

राज्यपाल राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि यानि केन्द्र और राज्य के बीच कड़ी होता है। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और उन्हें हटाने का भी अधिकार सिर्फ उन्हीं को है जहाँ तक भारत के महामहिम राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रश्न है, हमारे संविधान के अनुसार वे सभी शक्तियाँ अप्रत्यक्ष रुप से केन्द्रीय मंत्रिमण्डल को ही

प्राप्त हैं। आपातकाल के दौरान किये गये संविधान संशोधन में यह प्रावधान किया गया था, 'राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल की सलाह मानने को बाध्य किया गया, 'राष्ट्रपति का पद राजनीति से ऊपर हैं पर मंत्रिमण्डल में राजनैतिक लोग ही होते हैं। ये लोग प्रत्यक्ष रुप से राजनीति से जुड़े होने के कारण अपने और अपनों के हितों की रक्षा जरुरी समझते हैं, अत: सरकार बदलने पर पिछली सरकार द्वारा 'अपनों' को उपकृत करने के लिए की गई राजनैतिक नियुक्तियों को बदलते हुए अपनों की नियुक्ति हर पक्ष द्वारा इतनी बार हो चुकी है कि उसे आज मनमाना और पूर्वाग्रह से ग्रसित करने की बजाय परम्परा के रुप में स्वीकार करना चाहिए। दुनिया के अधिकांश देशों में सरकार बदलते ही सभी राजनैतिक नियुक्तियों के अन्तर्गत पद पर आसीन लोग पद त्याग देते हैं। भारत में भी सोलिसिटी जनरल, सरकार के सलाहकार आदि हमेशा से ऐसा करते रहे। वैसे नई सरकार के इशारे पर कुछ राज्यपालों ने इस्तीफा देकर उच्च परम्परा का पालन किया है लेकिन कुछ राज्यपाल हटने को तैयार नहीं। उनका मत है कि उनकी नियुक्ति संवैधानिक प्रावधानों के तहत् पाँच वर्ष के लिए हुई है लेकिन वे भूलते हैं कि संविधान के प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रपति जब तक चाहे राज्यपाल अपने पद पर बने रह सकता है लेकिन कैबिनेट की सलाह से राज्यपाल को हटाया भी जा सकता है पर हटाने के लिए ठोस वजह होना जरुरी है।

जहाँ तक राज्यपाल की नियुक्ति का प्रश्न है, इसमें योग्यता से निष्ठा का अधिक महत्त्व है। कुछ खास नौकरशाहों को यह पद देने में अपने लाभ-हानि देखे जाते हैं तो अनेक बार 'उपकृत' करने का उपक्रम होता है। अनेक बार तो उन्हें कानूनी संरक्षण प्रदान करने के लिए इस पद से नवाजा जाता है जैसा कि महिला राज्यपाल के मामले में हुआ।

कांग्रेस देश की आजादी के बाद अधिकांश समय सत्ता में ही रही। कांग्रेस ने सदा अपने लोगों को पद व सुविधाएँ दीं तो उसे सत्ता हाथ से निकलने पर उन नैतिक मूल्यों के सम्मान की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। जिनकी बार-बार दुहाई देती रही हैं यदि वह ऐसा नहीं करती तो देश की जनता में सन्देश जाएगा कि वह जनमत के सन्देश को समझने और सत्ता का मोह त्यागने में असमर्थ हैं। राज्यपालों के पद को लेकर अभी तक तीन बातें मानी जाती रहीं हैं, एक यह शोभा का पद है, दो इस पद पर नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है और तीसरे हमारी संघीय व्यवस्था में राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है।

राज्यपाल का पद बदरंग होता रहा है। पार्टियाँ अपने सीनियर नेताओं को वक्त काटने के लिए इस पद पर नियुक्त कर रही हैं। राज्यपाल का काम महलों में रहना, दावतों में शामिल होना, समारोहों में शिरकत करना और दस्तावेजों पर दस्तखत करना ही नहीं था, संविधान सभा ने जब इस पद को लेकर विमर्श किया था तब यह पद राज्यों की कार्यपालिका प्रमुख ही नहीं संघीय व्यवस्था में केन्द्र और राज्य के महत्त्वपूर्ण सेतु का था, पर बन गया वह केन्द्र का राजनीतिक एजेण्ट, जिसे न तो सरकारिया आयोग ने सही और न ही सुप्रीम कोर्ट ने। संसदीय लोकतन्त्र की खूबी यह है कि हरेक संस्था को अपने दायरे में स्वतन्त्र होकर काम करने की छूट है, यह व्यवस्था किसी को निर्द्वन्द होकर काम करने की छूट नहीं देती है।

पिछले 2-3 दशकों के राज्यपालों की राज्य के प्रति भूमिका बिल्कुल निष्क्रिय रही है। राज्यों की प्रगति से उनका कोई सरोकार ही नहीं है, ऐसा लगता रहा है। यह सही है कि राज्यपालों का राज्यों की प्रगति से सीधा सम्बन्ध नहीं होता, लेकिन जब भी राज्यों पर संवैधानिक संकट के बादल मंडराए, राज्यपाल अपने पद की गरिमा बनाये रखने में असमर्थ व लाचार दिखे।

प्रदेशों में राज्यपालों की नियुक्ति का मूल उद्देश्य केन्द्र व राज्यों के अन्त:सम्बन्धों को सामान्य व सुदृढ़ बनाना है। राज्यपाल केन्द्र की नीतियों को प्रदेश में अमल में लाने और राज्य की समस्याओं या स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति केन्द्र के साथ आपसी सौहार्द व समन्वय बनाये रखने में सेतु का काम करते हैं। भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में प्रत्येक संवैधानिक पद का अपना महत्त्व है। संविधान की मर्यादा के तहत् शासन की रीति-नीति के सुचारु रुप से चलाने, शासक व शासित के बीच लोकतांत्रिक तरीके से नियन्त्रण बनाये रखने में इन गरिमापूर्ण पदों का महत्त्व सर्वविदित है। अतएव जब इन पदों पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है और वह अपनी भूमिका का निर्वाह बगैर किसी पक्षपात के कर रहा होता है तो मात्र सरकारें बदलने से उन्हें तत्काल पदच्युत कर देना नि:सन्देह अभद्र, अनुचित और संविधान के सर्वथा विपरीत है। देशहित से अधिक व्यक्ति व पार्टी की ओछी महत्त्वाकांक्षा व स्वार्थ प्रेरित कार्यवाही है।

इन सब घटनाओं से अलग हटकर यह विचार किया जाना भी प्रासंगिक होगा कि राज्यपाल पद की कितनी अहमियत है और उसकी कितनी आवश्यकता है। चूंकि देश के संविधान के अन्तर्गत इस पद का सृजन किया गया है इसलिए इसके औचित्य को एकबारगी तो नकारा नहीं जा सकता है लेकिन राज्यपाल संस्था के इतिहास तथा वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में इस पर पुनर्विचार करना शायद ठीक होगा। यह एक तकनीकी व औपचारिक सच्चाई है कि राज्यपाल राष्ट्रपति का प्रतिनिधि होता है और वह केन्द्र व राज्य के बीच सम्पर्क सेतु का काम करता है। उसे प्रोटोकॉल में प्रदेश में सबसे ऊँचा ओहदा हासिल है तथा मुख्यमंत्री, मंत्रिमण्डल व मुख्य न्यायाधीश की शपथग्रहण जैसी गरिमामय औपचारिकताएँ उसके ही द्वारा सम्पन्न होती हैं लेकिन व्यवहारिकता में देखें तो राज्यपाल का सीधा सामना केन्द्रीय गृहमंत्रालय से पड़ता है। यह उसके दायित्वों में शामिल है कि प्रदेश की स्थिति पर वह हर माह गृहमंत्रालय को अपनी रिपोर्ट भेजें।

इन तथ्यों के बावजूद राज्यपाल प्रदेश में प्रथम नागरिक के रुप में

महत्ती भूमिका निभा सकता है। वह प्रदेश सरकार के लिए मार्गदर्शन सिद्ध हो सकता है एवं विषम परिस्थितियों में सामांजस्य और सन्तुलन स्थापित करने में भी खासी भूमिका निभा सकता है। किन्तु यह अपेक्षा ऐसे व्यक्ति से ही की जा सकती है। जिसके चयन को लेकर किसी भी पक्ष से कोई आपत्ति न उठे। ऐसा व्यक्ति अपने संवैधानिक ज्ञान, राजनैतिक अनुभव व चारित्रिक गुणों के आधार पर सर्वस्वीकार्य होना चाहिए। प्रारम्भ में ऐसे व्यक्तियों की कोई कमी नहीं थी क्योंकि उनको चुनने वाले भी राजेन्द्र प्रसाद, राधाकृष्णन और जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्ति थे। कमी तो आज भी नहीं है जरूरत सिर्फ सच्ची निष्ठा व ईमानदारी की है।

राज्यपाल के कार्य एक साथ विविध और महत्त्वपूर्ण है। सामान्य समय में राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में और केन्द्र व राज्य के मध्य महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करते हुए तथा कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों में जबकि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत उद्घोषणा की जाए, राज्यपाल संघ का एजेण्ट बन जाता है, वह रिक्त स्थान को भरता है और उस थोड़ी अवधि में भी जबकि उसे सहायता देने और परामर्श देने के लिए मंत्रिपरिषद् उपलब्ध नहीं रहती। कार्यपालक सरकार की निरन्तरता को सुनिश्चित करता है। राज्यपाल संविधान द्वारा परिकल्पित व्यवस्था का प्रमुख अधिकारी है। कोई भी दूसरा संवैधानिक अधिकारी अपने कर्त्तव्यों के अतिरिक्त इन उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकता। संक्षेप में यह ऐसा पद है जिसके बिना राज्य शासन में काम नहीं चल सकता।

आज कुछ स्थिति ऐसी बन गई है कि राज्यपाल पद के लिए दो ही विकल्प बचे हैं - या तो इसे समाप्त कर दिया जाए अथवा इसे दलीय राजनीति से ऊपर रखा जाए।

यदि इन दोनों में से किसी एक विकल्प को स्वीकार नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब राज्य सरकारें राज्यपालों के खिलाफ काले झण्डों का प्रदर्शन करवायेंगी और राज्य के प्रभाव के रूप में उन्हें मानने से इंकार कर देंगी। यह हमारे लोकतन्त्र के लिए काली घड़ी होगी। दुर्भाग्यवश हम उसी ओर दौड़ रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *भारत में प्रशासन का ऐतिहासिक विकास साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा, डॉ. बी.एल. फड़िया, 2007*
2. *भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, डॉ. बी.एल. फड़िया, 2007*
3. *भारतीय संविधान : अनुच्छेद 53, संविधान निर्मात्री वाद-विवाद, खण्ड 7*
4. *वही, खण्ड 4, पायली, एम.वी., भारतीय संविधान, यूनाइटेड बुक हाउस, 1975*
5. *इकबाल नारायण, भारतीय सरकार एवं राजनीति, 1974,*
6. *उम्मेद सिंह इंदा : संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, 2010*
7. *सी.के. जैन : 'भारत में संसद और राज्य विधानमण्डल', एलॉयड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1993, सुप्रिन्टेन्डेंट प्रिन्टिंग इण्डिया, कोलकात्ता, 1913*
8. *धर्मचन्द्र जैन, 'राज्यपाल', श्याम प्रकाशन, जयपुर - 1994*
9. *पुखराज जैन, ''भारत का संवैधानिक विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन'', सरस्वती सदन, दिल्ली 1968*
10. *पी.एल. माथुर, ''रोल ऑफ गवर्नर इन नॉन-कांग्रेस स्टेट्स', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1988*
11. *धर्मचन्द्र जैन, 'संविधान सभा और राज्यपाल पद परिकल्पना', लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली*
12. *जे.आर. सिवाच : 'राज्यपाल का पद', हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ़, 1979*
13. *राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल : 'लोकतन्त्र में राज्यपाल', प्रिण्टवेल, जयपुर, 1998*
14. *धर्मचन्द्र जैन : 'राज्यपाल', श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1994*
15. *अनिरबन कश्यम : 'गवर्नर्स रोल इन इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन', लैन्सर्स बुक्स, नई दिल्ली, 1993*
16. *धर्मचन्द्र जैन - 'राज्यपाल', श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1974*
17. *सुरभि श्रीवास्तव - 'राज्यपालों की बदलती भूमिका', नॉर्थर्न बुक सेन्टर, 2007*
18. *राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल - ''लोकतन्त्र में राज्यपाल'', प्रिण्टवेल पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर*
19. *एम.एस. दहिया - ''ऑफिस ऑफ द गवर्नर इन इण्डिया'', क्रिटिकल कमेन्ट्री, संदीप प्रकाशन, दिल्ली*
20. *केन्द्र-राज्य सम्बन्ध आयोग रिपोर्ट*

दण्ड विषयक धर्मशास्त्रीय अवधारणा

डॉ. हरकेश बैरवा
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

shodhshree@gmail.com

धर्मशास्त्रकारों ने राज्य में आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने, अराजकता व अव्यवस्था को रोकने, दुष्टों अथवा अपराधियों से प्रजा की रक्षा और सुव्यवस्था विरोधी लोगों को सन्मार्ग पर लाने हेतु दण्ड व्यवस्था का प्रावधान किया। यह व्यवस्था इसलिए की गई कि समस्त जीव अपने-अपने कर्मों को नियत रुप से करते हुए धर्म का पालन करते रहें। इससे स्पष्ट होता है कि दण्ड के प्रभाव से मानव कोई ऐसा कार्य नहीं करता जिससे सामाजिक व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़े, यदि अज्ञानवश कोई ऐसा कार्य करता है तो उसे दण्ड देकर पुन: धर्ममार्ग पर लाया जाता था। गौतम ने 'दण्ड' शब्द को 'दम्' धातु से निष्पन्न मानकर रोकना या निवारण अर्थ लिया है अर्थात् दमन करने के कारण ही इसका नाम 'दण्ड' रखा गया है, इसके द्वारा ही राजा उच्छृंखल व्यक्तियों को अपराध करने से रोके या उनको वश में करे - **दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान्दमयेत्।**[1]

आदिकाल में ब्रह्मा ने धर्म को ही दण्ड के रुप में निर्मित किया था - **धर्मो हि दण्डरुपेण ब्रह्मणां निर्मित: पुरा।**[2] राजा की कार्यसिद्धि के लिए ईश्वर ने सम्पूर्ण जीवों के रक्षक, धर्मस्वरुप पुत्र, ब्रह्मा के तेजोमय दण्ड का निर्माण किया। उस दण्ड के भय से स्थावर तथा जंगम सभी जीव अपने-अपने भोग को भोगने के लिए समर्थ होते हैं और इसी कारण ही मनुष्य अपने-अपने धर्म से विचलित (भष्ट) नहीं होते हैं।[3] इससे स्पष्ट है कि बलवान व्यक्ति से पीड़ित दुर्बल व्यक्ति अपने भोग को नहीं भोग पाता, इससे सर्वत्र अव्यवस्था का साम्राज्य छा जाता है। जंगम पशु, पक्षी और स्थावर वृक्ष, लतादि जीव भी बलवान व्यक्ति से किये गये मारण छेदन आदि द्वारा अपने अपने भोग को नहीं भोग पाते। इसलिए दण्ड के भय से चराचर जगत् अपने अपने कर्म को नियत रुप से करते रहते हैं।

मनु ने दण्ड की प्रशंसा करते हुए कहा है कि यथार्थ रुप में दण्ड ही राजा है (क्योंकि दण्ड में ही राज करने की शक्ति है), दण्ड ही पुरुष है, दण्ड ही राज्य का नेता व शिक्षक है और ऋषियों ने दण्ड को ही चारों आश्रमों के धर्म का साक्षी कहा है। दण्ड ही सब प्रजाओं पर शासन करता है, दण्ड ही सब प्राणियों की रक्षा करता है, सबके सो जाने पर केवल दण्ड ही जागता रहता है (क्योंकि उसी दण्ड के भय से चोर आदि चोरी आदि दुष्कर्म नहीं करते), अत: विद्वानों ने दण्ड को ही धर्म कहा हैं।[4]

स्मृतिकार का यह मत दण्ड को धर्म और देवत्व रुप प्रदान करता है। यहाँ दण्ड का अर्थ केवल सजा नहीं है, अपितु एक मर्यादा का पालन करवाना है। याज्ञवल्क्य के अनुसार दण्ड का प्रयोगकर्त्ता को सत्यवादी, पवित्र, उत्तम सहायकों से युक्त, बुद्धिमान, धर्म और अर्थ का ज्ञाता होना चाहिए, क्योंकि लोभी और चंचलबुद्धि वाले द्वारा न्यायपूर्वक दण्ड का प्रयोग करना संभव नहीं है।[5] यदि दण्ड का अभाव हो जायेगा तो सभी वर्ण दूषित हो जायेंगे, सबकी मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न हो जायेंगी और सब प्राणियों में (चोरी, डाका, व्यभिचार आदि से) क्षोभ उत्पन्न हो जायेगा।[6] धर्मशास्त्रकारों ने राजा को निर्देश दिया कि वह शास्त्रोक्तविधि द्वारा ही

दण्ड का प्रावधान करे। मनु की मान्यतानुसार अपराध के समान ही दण्ड का विधान किया जाय, जिसने जितना अपराध किया है, उसको उतना ही दण्ड मिलना चाहिए। अपराध के अनुरुप ही अपराधी या दण्डनीय को समुचित दण्ड दिया जाय, किसी को भी द्वितीय बार अपराध करने पर क्षमा नहीं करना चाहिए, यदि कोई व्यक्ति स्वधर्मानुसार कार्य नहीं करता तो उसे दण्ड देना आवश्यक होता है।[7]

याज्ञवल्क्य के अनुसार शास्त्रानुसार दण्ड प्रयुक्त होने पर देवों, असुरों और मनुष्यों सहित समस्त जगत् को आनन्दित करता है और शास्त्र विरुद्ध दिया गया दण्ड जगत् को प्रकुपित करता है। अधर्मपूर्वक दण्ड देना स्वर्ग, कीर्ति और तीनों लोकों का विनाशक होता है और विधिपूर्वक दण्ड देना राजा को स्वर्ग, कीर्ति एवं जय को दिलाने वाला होता है।[8] वृद्धहारीत के मतानुसार अपराधियों को न्यायपूर्वक दण्ड देना राजा के लिए स्वर्ग एवं कीर्ति में वृद्धिदायक होता हैं और यदि राजा अपराधियों (दण्डनीयों) को दण्ड नहीं देता एवं निरपराधियों (अदण्डनीयों) को दण्ड देता है, तो वह सदा अपयश का भागी होकर नरक को प्राप्त करता है।[9]

राजा का धर्म अपराधियों को न्यायपूर्वक दण्ड देना होता है। याज्ञवल्क्य एवं मनु के अनुसार भाई, पुत्र, पिता, आचार्य, पुरोहित, माता, मित्र, स्त्री, श्वसुर, मामा कोई भी यदि अपने धर्म से विचलित होता है तो राजा के लिए अदण्डनीय नहीं अर्थात् राजा को उन्हें अवश्य दण्ड देना चाहिए।[10]

दण्ड के भेद

धर्मशास्त्रकारों की मान्यतानुसार सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए राजा को अपराधों की प्रवृत्ति, कारण एवं उद्देश्य, अपराधी की अवस्था, देशकाल, सामाजिक, आर्थिक स्थिति, वर्तमान एवं भावी परिणाम को देखकर अपराधी की गुरुता-लघुता का वास्तविक विचार कर दण्डनीय व्यक्ति को कठोरता या मृदुता का दण्ड देना चाहिए। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का अवलोकन करने पर दण्डों के प्रकार निम्न रुप हो सकते हैं- 1. वाग्दण्ड 2. धिग्दण्ड 3. अर्थदण्ड 4. उद्वेजन 5. अंगविच्छेद 6. निर्वासन 7. कारावास 8. मृत्युदण्ड या वधदण्ड आदि।

1. वाग्दण्ड - वाग्दण्ड का अभिप्राय है कि अपराधी को समझाकर सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करना, जो व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह के क्षणिक आवेश में आकर अपराध कर जाता है। मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा गुणियों को प्रथम बार अपराध करने पर वाग्दण्ड से दण्डित करें- वाग्दण्डं प्रथमं कुर्यात्।[11] तात्पर्य यह है कि प्रथम बार अपराध करने वाले पुरुष या नारी को ऐसे वचन बोले कि तुमने यह उचित कृत्य नहीं किया, तुम जैसे आचरणशील को ऐसा अपराध नहीं करना चाहिए। यदि तुम भी ऐसा पाप करोगे तो साधारणजनों के समक्ष तुम्हारी महानता व पवित्रता नष्ट हो जायेंगी। तुम्हें अपने कृत्यों के प्रति सजग रहना चाहिए। जिससे तुम कलंकित व अपमानित होने से बच सको। इसके बाद अपराधी को मुक्त कर दिया जाता था।

2. धिग्दण्ड - धिग्दण्ड का अभिप्राय अपराधी को धिक्कार या भर्त्सना द्वारा चेतावनी में कहा जाता है कि ऐसा दुष्कृत पुनः करने पर अर्थदण्ड या कठोर दण्ड दिया जायेगा- धिग्दण्डं तदनन्तरम्।[12] द्वितीय बार अपराध करने पर न्यायाधीश, न्यायालय में अपराधी को कठोर शब्दों से कहता है कि 'तुम जैसे कृतघ्न, पापी, नीच, अधम को धिक्कार है, तुमने यह अपराध अधमकृत किया, जिससे समाज का संतुलन बिगड़ा हैं, तुम पापाचार के मूल हो, तुम जैसे व्यक्ति देश के नाम पर कलंक हो।' प्रत्यक्ष शाब्दिक प्रताड़ना या धिक्कारना था। जिससे अपराधी अपनी भूल को समझकर उसे सुधार सके।

3. अर्थदण्ड - जिन अपराधों में हिंसा न की गई हो, उनमें प्रायः अर्थदण्ड दिया जाता था। धर्मशास्त्रकारों ने अर्थदण्ड के लिए साहस शब्द का भी प्रयोग किया था। साहस शब्द का अर्थ है- 'बल' और इसका तात्पर्य है- बलपूर्वक कोई अनुचित काम करना अर्थात् बल के आधार पर होने वाले सभी कार्य साहस है। याज्ञवल्क्य ने साहस को परिभाषित करते हुए लिखा है कि सामान्य वस्तु के बलपूर्वक हरण करने को साहस कहते हैं।[13] कौटिल्य के अनुसार खुलेआम बलात्कार करना, वस्तुओं का अपहरण करना, डाके डालना तथा मारधाड़ करना साहस कहलाता है।[14] नारद ने साहस के तीन प्रकार माने हैं - प्रथम, मध्यम व उत्तम साहस। प्रथम साहस में फल-फूल आदि चुराना, वृक्ष काटना, खेत पर अधिकार आदि। मध्यम साहस में वस्त्र, पशु, अन्न व घर का सामान आदि चुराना एवं उत्तम साहस में पर स्त्रीहरण, प्राणीवध, विशषस्त्रादि को सम्मिलित किया है।[15] मनु ने प्रथम साहस के लिए 250 पण, मध्यम साहस के लिए 500 पण और उत्तम साहस के लिए 1000 पण अर्थदण्ड का प्रावधान किया है।[16] याज्ञवल्क्य ने प्रथम साहस के लिए 270 पण, मध्यम साहस के लिए 540 पण और उत्तम साहस के लिए 1080 पण अर्थदण्ड का प्रावधान किया है। उन्होंने आगे लिखा है कि जो व्यक्ति तराजु, शासन, बाटों और सिक्कों में कपट करे और सिक्कों का जो परीक्षक असली सिक्कों को नकली और नकली को असली कहता है, उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।[17]

पशुहिंसा पर दण्ड विधान - मनुष्य के समान पशु भी पीड़ा एवं कष्ट का अनुभव करता है इसीलिए धर्मशास्त्रकारों ने पशुहिंसा पर दण्ड का विधान किया हैं। मनु के अनुसार छोटे पशुओं की हिंसा पर दो सौ पण दण्ड, शुभ मृग और शुभ पक्षियों की हिंसा करने पर पचास पण दण्ड, गधा, भेड़, बकरी आदि की हिंसा पर पाँच मासा का दण्ड, कुत्ता और सुअर की हिंसा पर एकमासा चाँदी का दण्ड दिया जाता हैं।[18] याज्ञवल्क्य ने पशुओं के अंगविच्छेद या हिंसा करने पर अर्थदण्ड की व्यवस्था इस प्रकार दी है- बकरी, भेड़, हिरन आदि

क्षुद्र पशुओं को मारकर रक्त निकालने तथा निर्जीव अंगों के छेदन पर क्रमशः दो पण, चार पण, छः पण आदि का दण्ड अपराधी को दिया जाता है। इन पशुओं के लिंग काटने या हिंसा करने पर मध्यम साहस का दण्ड और उनका मूल्य भी देना पड़ता है। गाय, बैल, हाथी, घोड़ा आदि बड़े पशुओं के अंगों पर चोट पहुँचाने या हिंसा करने पर दुगुना दण्ड दिया जाता है।[19] कौटिल्य ने उक्त कथन का समर्थन करते हुए लिखा है कि छोटे पशुओं को लकड़ी, बांस आदि से पीटने पर एक या दो पण दण्ड और इनको पीटने से खून निकल आये तो दुगुना दण्ड दिया जाता है। गाय, भैंस आदि बड़े पशुओं को चोट पहुँचाने पर दुगुना दण्ड और साथ में पशुओं की औषधि का खर्च देने का विधान किया हैं।[20] विष्णु के अनुसार हाथी, अश्व, ऊँट, गाय आदि की हिंसा करके और उसके मांस को विक्रय करने वाले पर कार्षापणशत दण्ड तथा गाँव के पशुओं की हिंसा करने पर पशु के मूल्य के समान धन स्वामी को देना होता है। वन में निवास करने वाले पशुओं की हिंसा करने पर पाँच सौ कार्षापण दण्ड, पक्षियों एवं मछलियों की हिंसा करने पर एक कार्षापण दण्ड का प्रावधान किया गया।[21]

वनस्पति हिंसा पर दण्ड विधान - धर्मशास्त्रकार न केवल मानव एवं पशुओं के प्रति संवेदनशील थे, अपितु प्रकृति के प्रति भी उनकी संवेदना उल्लेखनीय है। मनु ने विधान किया कि समस्त वनस्पतियों का जैसा उपभोग किया जाता है या उनके प्रति की गई हिंसा के अनुरुप ही दण्ड विधान किया जाना चाहिए।[22] विष्णु भी प्रकृति के प्रति अतिसंवेदनशील दिखाई दिये है - फल देने वाले वृक्षों को काटने वाले पर उत्तम साहस का दण्ड, पुष्प देने वाले वृक्षों को काटने पर मध्यम साहस दण्ड, बल्ली, गुल्म, लता आदि को काटने पर 100 कार्षापण दण्ड तथा घासादि के काटने पर एक कार्षापण दण्ड का विधान किया।[23] याज्ञवल्क्य के मतानुसार कोपल से युक्त डालों वाले वृक्षों की शाखा, तना या सम्पूर्ण वृक्ष को काटने और जीविकोपयोगी वृक्षों के भागों को काटने पर क्रमशः बीस, चालीस, अस्सी पण दण्ड, चतुष्पथ (चैत्य), श्मशान, सीमा, पवित्रस्थान, देवालय के वृक्षों तथा प्रख्यात वृक्षों की शाखादि काटने पर पूर्वाक्त का दुगुना दण्ड तथा पूर्वोक्त स्थानों पर गुल्म, गुच्छ, क्षुप, लता, प्रतान, औषधि, वीरुध आदि के काटने पर उपर्युक्त दण्ड का आधा होता हैं।[24]

कौटिल्य भी विष्णु व याज्ञवल्क्य का समर्थन करते हुए कहते है कि नगर के बाग-बगीचों में लगे हुए फल-फूल तथा छायादार पेड़ों के पत्ते आदि तोड़ने पर छः पण दण्ड, छोटी-छोटी शाखाओं की टहनियाँ तोड़ने पर बारह पण, मोटी-मोटी शाखाओं को काटने पर चौबीस पण, तने के ऊपरी स्कंध को काटने पर प्रथम साहस दण्ड और वृक्ष को जड़ से काटने पर मध्यम साहस का दण्ड दिया जाय। फली-फूली छायादार झाडियों, लताओं, तीर्थस्थानों, तपोवनों और श्मशान के वृक्षों को काटने वाले पर उपर्युक्त कहे हुए दण्ड का आधा दण्ड दिया जाय। सीमा के वृक्ष, मंदिरों के वृक्ष, राजा की ओर से मुहर लगे वृक्ष और सरकारी जंगलों के वृक्षों को काटने पर दुगुना दण्ड दिया जाय।[25]

4. अद्वेजन (अंकित करना) दण्ड - इस दण्ड में दुष्कर्म करने वाले अपराधी के शरीर को पीड़ित करने वाला कष्ट पहुँचाया जाता था, जिससे वह अपराध को स्वीकार कर ले। कौटिल्य ने लोक व्यवहार में घृणित अपराधियों को पीड़ित करने हेतु कुल मिलाकर 18 दण्डों का विधान किया, यथा छः डण्डे मारना, सात कोड़े मारना, हाथ-पैर बाँधकर उलटा लटका देना, नाक में नमक का पानी डालना, नौ हाथ लम्बी बेंत से बारह बेंत मारना, दोनों टाँगों को बाँधकर करंज की छड़ी से बीस छड़ी मारना, बत्तीस थप्पड़ मारना, बायें हाथ को पीछे बायें पैर से व दायें हाथ को पीछे दायें पैर से बाँधना, दोनों हाथ आपस में बाँधकर लटका देना, हाथ के नाखून में सूई चुभाना, लस्सी पिलाकर पेशाब न करने देना, अंगुली की एक पोर जला देना, घी पिलाकर पूरे दिन अग्नि या धूप में बैठाना, सर्दी की रात में भीगी हुई खाट पर सुलाना।[26] मनु के अनुसार द्विजातियों के नाम एवं जाति का उच्चारण कर कटुवचन कहने वाले शूद्र के मुख में जलती हुई दस अंगुल लम्बी लोहे की शलाका डालनी चाहिए।[27] आपस्तम्ब ने प्रथम तीन वर्णो के पुरुषों के साथ वार्तालाप में, मार्ग में चलने पर, शय्या व आसन पर तथा अन्य कर्मों में समानता का व्यवहार करने पर शूद्र को डण्डे से पीटने को कहा है।[28]

उद्वेजन के अन्तर्गत अंकित कर देना (दाग देना) भी एक प्रकार का दण्ड है। मनु एवं बौधायन ने ब्राह्मण की हत्या करने वाले ब्राह्मण के ललाट पर मनुष्य का धड़, गुरुपत्नीगमन करने पर ललाट पर भग का चिन्ह सुवर्ण चुराने वाले के ललाट पर शृंगाल या कुत्ते के पैर का चित्र और सुरापान करने वाले के ललाट पर सुरापात्र की आकृति जलते हुए लोहे से अंकित करने का आदेश दिया हैं।[29]

इस अभिमतों से स्पष्ट होता है कि जो व्यक्ति जिस प्रकार का अपराध करता था, उसका सूचक चि उसके ललाट पर अंकित कर दिया जाता था, जिसे देखकर जन साधारण को विदित हो जाता था कि इसने यह अपराध किया है, जिसे देखकर अन्य लोग ऐसे अपराध की पुनरावृत्ति न करें।

5. अंगविच्छेद - स्वयंभुव मनु ने दण्ड के दस स्थान बताये है अपराधी जिस-जिस अंग से अपराध करे राजा उसके उस-उस अंग को कटवा दे, यथा- उपस्थ, उदर, जिह्वा, हाथ, पैर, नेत्र, नाक, कान, धन और शरीर। उन्होंने आगे विधान किया कि शूद्र जिस अंग से द्विजाति को मारे या ताड़ित करे, राजा उसके उसी अंग को कटवा दे। हाथ उठाकर या डंडे या छड़ी आदि से ब्राह्मण को मारने वाले शूद्र का हाथ तथा पैर से मारने पर पैर कटवा दे। ब्राह्मण के साथ एक आसन पर बैठने वाले की कमर को तपाये गये लोहे से दाग दे अथवा उसके नितम्ब को कटवा दे। यदि ब्राह्मण का अपमान अभिमान पूर्वक थूक फेंककर करे तो उसके दोनों ओष्ठों को, मूत्र फेंककर करे तो उसके लिंग को व अपशब्द से करे तो उसके गुदा को कटवा दे। यदि

अभिमान से ब्राह्मण के बालों को पकड़ ले तो राजा बिना विचार किये उसके दोनों हाथों को कटवा दे तथा दोनों पैरों, दाढ़ी, गर्दन तथा अण्डकोष को भी पकड़ ले तो उसके वही दोनों हाथों को कटवा दे।[30]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार यदि अब्राह्मण ने ब्राह्मण के जिस अंग को पीड़ित किया हो, राजा अपराधी के उसी अंग को कटवा दे।[31] गौतम का विधान है कि शूद्र के वेदपाठ सुनने पर सीसे या जस्ते से उसके कान भर दिये जाय, वेद के अक्षर का उच्चारण करने पर उसकी जीभ काट दी जाय तथा वेदमंत्र धारण करने पर उसका शरीर काट दिया जाए।[32] आपस्तम्ब ने प्रथम तीन वर्णो के व्यक्ति की निन्दा करने वाले या अपशब्द कहने वाले शूद्र की जीभ काट देने को कहा है।[33] मनु के मतानुसार परस्त्री संभोग में प्रवृत्त होने वाले पुरुष को राजा व्याकुल करने वाले (नाक, कान, ओष्ठ प्रजनेन्द्रिय आदि काटने वाले) दण्ड से दण्डित करे, क्योंकि परस्त्रीगमन से लोक में वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है जिस वर्णसंकर से मूल को नष्ट करने वाला अधर्म सबके नाश के लिए समर्थ होता है। जो पुरुष समान जाति वाली कन्या के साथ सम्भोग न करके बलात्कार पूर्वक उसकी योनि में अंगुली डालकर उसे दूषित करे तो राजा उसकी अंगुली को शीघ्र कटवा दे और साथ ही 600 पण से दण्डित करे।[34]

6. निर्वासन- धर्मशास्त्रकारों ने जघन्य अपराधों के लिए मनुष्य को देश से निर्वासित करने का दण्डविधान किया। मनु ने समस्त पाप करने वाले ब्राह्मण को मृत्युदण्ड के स्थान पर सम्पूर्ण धन के साथ अक्षत शरीर वाले को राज्य से निर्वासन का दण्ड देने को कहा है।[35] गौतम एवं याज्ञवल्क्य ने अपराधी ब्राह्मण के लिए पापकर्म से विमुख करने हेतु राज्य से निष्कासित करने और शरीर पर विशेष चिन्ह लगाने का दण्ड विधान किया हैं।[36] मनु के अनुसार ग्रामवासी, देशवासी या व्यापारी आदि के समुदाय का जो व्यक्ति सत्यादि के शपथपूर्वक किये गये समय को लोभ आदि के कारण भंग करता है तो उसे राजा देश से निष्कासित कर दे।[37] ऐसी ही कुछ व्यवस्था याज्ञवल्क्य ने दी है जो व्यक्ति समाज के द्रव्य का हरण करे तथा (राजा या समाज द्वारा निश्चित) समय का उल्लंघन करे तो राजा उसका सर्वस्य हरण करके राष्ट्र से निर्वासित कर दे।[38] कौटिल्य के अनुसार धर्मस्थ, प्रदेष्टा, गाँव का मुखिया, गाँव का अध्यक्ष, कूट साक्षी, कूट श्रावक, वशीकरण कर्त्ता, क्रियाशील, अभिचारशील, विष देने वाला, मदनयोग व्यापारी, कूटरुप कर्त्ता और कूट सुवर्ण व्यापारी- ये तेरह प्रकार लोक के उपद्रव करने वाले गूढ़जीवी बताए गये हैं, इन्हें देश से निर्वासित कर देना चाहिए।[39]

मनु के मतानुसार जुआरियों, कुशीलवों, वेदशास्त्र के विरोधियों, पाखण्डियों, आपत्तिकाल नहीं होने पर भी दूसरों की जीविका करने वाले और शराब बनाने वाले मनुष्यों को राजा शीघ्र ही देश से निर्वासित कर दें। बार-बार असत्य गवाही (कूटसाक्षी) देने वाले तीन वर्णो (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) को राजा अर्थदण्ड के साथ देश से निर्वासित करें और यदि ब्राह्मण कूटसाक्षी देने वाला हो तो उसे केवल देश से निकाल दे और अर्थदण्ड न दे। प्राकार (नगर या मकान का परकोटा) को तोड़ने वाले, परिखा (खाई) को मिट्टि आदि से भरने वाले एवं द्वार को तोड़ने वाले मनुष्य को राजा शीघ्र ही देश से निकाल दें।[40]

7. कारावास - प्राचीन शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि कुछ अपराध निश्चय ही ऐसे होते थे जिनके प्रमाणित होने पर अपराधी को कारागृह में बन्द कर देना ही अधिक उचित समझा जाता था। मनु के मतानुसार जो गुप्तचर भक्ष्य-भोज्य पदार्थो का लोभ दिखाकर, ब्राह्मणों के दर्शन इत्यादि कहने से साहस कर्म के कपट से उन चोरों को एकत्रित कर राजा के द्वारा नियुक्त शासक पुरुषों से उन्हें गिरतार करा दें।[41] कौटिल्य के अनुसार धर्मस्थ (न्यायाधीश) और महायाम (सन्निधाता, समाहर्त्ता आदि) से सजा पाये हुए लोगों को कारागृह में रखना चाहिए। कारागृह में स्त्री-पुरुष के लिए अलग-अलग स्थान होने चाहिए। उसके बहिर्मार्ग तथा चारों ओर की अच्छी तरह रक्षा होनी चाहिए।[42] मनु की मान्यतानुसार राजा सब प्रकार के बन्धनगृह (जेल, हवालात) को सड़क पर बनवावे जिससे हथकड़ी-बेड़ी पहनने से दूषित, दाढ़ी-मूछ आदि बढ़ने से विकृत तथा भूख आदि से दुर्बल अपराधी बन्दियों (कैदियों) को सामान्य जन देख सकें।[43]

इससे स्पष्ट होता है कि जन सामान्य कैदियों को देखकर शिक्षा ग्रहण करें कि ऐसा कोई अपराध न करे जिससे कि बन्दियों जैसा जीवन यापन करना पड़े।

8. मृत्युदण्ड (वधदण्ड) - धर्मशास्त्रकारों ने गुरुतम या जघन्यतम अपराधों के लिए वधदण्ड का प्रावधान किया अर्थात् सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ने वाले स्त्री-पुरुषों के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान दिया। मनु के मतानुसार राजा राज्य के अन्नभण्डार, शस्त्रागार, देवमन्दिर तोड़ने वाले तथा घोड़ा, हाथी, रथ आदि को चुराने वाले को बिना विचारे मृत्युदण्ड देवें।[44] कामना न करती हुई कन्या को संभोग से दूषित करने वाले व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए- बाऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति।[45] जो व्यक्ति अपनी जाति की रजोधर्म रहित कन्या को संभोग से दूषित करे और उसके कारण उसकी मृत्यु हो जाय तो अपराधी को प्राणदण्ड देना चाहिए, ऐसा ही मत कौटिल्य का है।[46] धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि न्याय-व्यवस्था में मृत्युदण्ड की अनेक विधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं- (अ) शूलारोपण (आ) विचित्रवध (इ) शुद्धवध (ई) शिरच्छेद (उ) अग्निदाह (ऊ) कुत्तों से नुचवाना (ए) बैलों से मरवाना (ऐ) जल में डुबो देना (ओ) हाथी से कुचलवाना आदि।

(अ) शूलारोपण - मनु की मान्यतानुसार रात में सेंध मारकर चोरी करने वाले को राजा उसके हाथों को कटवाकर तेज शूली पर चढ़ाकर वध करे।[47] कौटिल्य के अनुसार यदि कोई पुरुष जबरन (बलात्कार) किसी स्त्री या पुरुष की हत्या करे, स्त्री का अपहरण या उसके नाक-कान काटे, धमकी देकर हत्या करे, चोरी की घोषणा करके चोरी करे,

जबरन गाँव या नगर का धन लूट ले जाए, दीवार तोड़कर सेंध लगाए, मार्ग में स्थित धर्मशालाओं, प्याऊओं पर चोरी करे, राजकीय वाहनों, हाथियों, अश्वों को नष्ट करे तथा हिंसा करके चोरी करे तो ऐसे अपराधियों को राजा शूली पर लटका कर दण्ड देवे।[48] याज्ञवल्क्य के अनुसार बन्दियों को छुड़ाने वाले, घोड़ा-हाथी आदि चुराने वाले एवं बलपूर्वक हत्या करने वाले को राजा शूली पर चढ़ाकर वध कर दे।[49]

(आ) विचित्रवध - धर्मशास्त्रकारों ने जघन्य और गम्भीर अपराधों के लिए विचित्र वध का प्रावधान किया था। मनु ने राजा को निर्देश दिया कि वह जान-बूझकर ब्राह्मण को पीड़ित करने वाले शूद्रों को उद्वेगकारक विचित्रवध से दण्डित करे।[50] कौटिल्य के अनुसार राज्यसिंहासन को छिनने का अभिलाषी, अन्त:पुर में व्यर्थ प्रवेश करने की चेष्टा करने वाला, राजा के शत्रुओं को प्रोत्साहन देने वाला, दुर्ग और राष्ट्र की सेना में बगावत करने वाला व जनता को धोखा देने वाला अपराधी को सिर और हाथ में अंगारे रखकर राजा विचित्रवध से दण्डित करे।[51] जबकि याज्ञवल्क्य ने चोर के लिए विचित्रवध का प्रावधान किया है- चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः।[52]

(इ) शुद्धवध - कौटिल्य के अनुसार कोई व्यक्ति लड़ाई-झगड़े में किसी को चोट पहुँचाए और चोट खाया व्यक्ति सात दिन के बाद मर जाय तो मारने वाले को राजा शुद्धवध (कष्टरहितवध) से दण्डित करे तथा जो व्यक्ति किसी दूसरे को अचानक ही मार डाले या पशुओं के झुण्डों की चोरी करे तो राजा उसे भी शुद्धवध से दण्डित करे।[53] मनु के मतानुसार पोखर आदि सार्वजनिक जलाशय के बाँध या पुल को तोड़ने वाले को राजा शुद्धवध से दण्डित करे- तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा।[54]

(ई) शिरच्छेद (अविचित्रवध) - अपराधी के सिर को वधिकों द्वारा तलवार से कटवा देना ही शिरच्छेद वध कहलाता है। मनु के अनुसार जो मनुष्य नहीं जमने वाले बीज को जमने वाला कहकर बेचे, अच्छे बीज में दूषित बीज मिलाकर बेचे और ग्राम-नगर आदि की सीमा को नष्ट करे तो उसे राजा विकृतवध (हाथ, नाक, कान आदि अंगों को काटने) से दण्डित करे। सब कण्टकों (चोरी आदि पापकर्म करने से राज्य में कण्टकतुल्य लोगों) में अधिक पापी सोनार यदि अन्याय करने (चाँदी-सोना में मिलावट करने वाला) वाला प्रमाणित हो जाय तो राजा उसके शरीर को शस्त्रों से टुकड़े-टुकड़े करवा दे।[55]

(उ) अग्निदाह - मृत्युदण्ड के रुप में अपराधी को जिन्दा आग में जलाया जाता है। याज्ञवल्क्य के मतानुसार किसी के खेत, घर, ग्राम, वन, विवीत (सराय या बाड़ा) तथा खलिहान में आग लगाने वाले एवं राजपत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले को राजा शरीर पर घास-फूस (फट) लपेट कर जलवा दें।[56] कौटिल्य ने भी याज्ञवल्क्य का अनुगमन किया कि चारागाह, खेत, खलिहान, घर, लकड़ियां तथा हथियारों से सुरक्षित जंगल में आग लगाने वाले को राजा आग में जलाकर मृत्युदण्ड दिलवावे।[57] मनु के मतानुसार व्यभिचार करने वाले पुरुषों को तपाये हुए लोहे के पलंग पर सुलाकर तथा पलंग पर लकड़ी डालकर जला दे। पति आदि से सुरक्षित तथा गुणवती ब्राह्मणी के साथ वैश्य एवं क्षत्रिय संभोग करें तो उसे शूद्र के समान दण्ड दे या तृणाग्नि में जलाकर मृत्युदण्ड दें।[58]

(ऊ) कुत्तों से कटवाना - मृत्युदण्ड के रुप में अपराधी को भूखे शिकारी कुत्तों से कटवाया जाता था। मनु के अनुसार जो स्त्री पिता या बान्धवों के अधिक धनी होने या अपने सौन्दर्य के अभिमान से परपुरुष के साथ संगति करके अपने पति का अपमान करे तो राजा उसे बहुत लोगों के सामने कुत्तों से कटवायें।[59]

(ए) बैलों से मरवाना - याज्ञवल्क्य के मतानुसार जहर देने वाली, आग लगाने वाली तथा पति, गुरु, सन्तान आदि की हत्या करने वाली स्त्री के कान, हाथ, नाक और ओठ काट कर बैलों से मरवा देना चाहिए।[60] अपने पति, गुरु, बच्चे आदि की हत्या करने वाली, आग लगाने वाली, विष देने वाली, सेंध लगाकर चोरी करने वाली स्त्री को बैलों के पैरों के नीचे कुचलवा कर मार देना चाहिए, ऐसा ही मत कौटिल्य का है।[61]

(ऐ) जल में डुबाकर मारना - याज्ञवल्क्य के मतानुसार अत्यन्त दुष्टा, पुरुष की हत्या करने वाली और पुलों को तोड़ने वाली स्त्री गर्भिणी न हो तो गले में शिला बाँध कर जल में डुबो देना चाहिए।[62] ऐसी ही मान्यता कौटिल्य की है पानी के बाँध को तोड़ने वाले व्यक्ति को जल में डुबोकर मार दिया जाना चाहिए। विष देकर किसी की हत्या करने वाले स्त्री-पुरुष को भी जल में डुबोकर मार देना चाहिए, बशर्ते स्त्री गर्भिणी न हो।[63]

(ओ) हाथी से कुचलवाना - मनु के मतानुसार चोर पर चोरी का आरोप प्रमाणित हो जाय तो राजपुरुष उससे चोरी का धन प्राप्त करके उस धन की सुरक्षा करे तथा राजा उस धन के चोरी करने वाले को हाथी से मरवा डाले।[64]

उपर्युक्त कहे गये मृत्युदण्ड (वधदण्ड) के विविध तरीकों तथा उपायों के लिए यही कहा जा सकता है कि राज्य, समाज और जनसामान्य की रक्षा के लिए ऐसे दण्डों का होना आवश्यक हैं, जिससे उन अपराधों की पुनरावृत्ति न हो सकें।

धर्मशास्त्रकारों द्वारा प्रतिपादित दण्ड-व्यवस्था के प्रमुखत: दो प्रकार के उद्देश्य लक्षित होते हैं। प्रथम उद्देश्य था कि अपराधी पुन: अपराध कर्म में प्रवृत्त न हो तथा द्वितीय उद्देश्य था कि अपराधी की प्रसुप्त अन्त:चेतना को जागृत किया जाए, जिससे वह चैतन्य हो जाए। इन दोनों उद्देश्यों का लक्ष्य था कि समाज में अपराध कम से कम हो। मानव स्वभाव से अपराधी प्रवृत्ति का व्यक्ति नहीं होता है, वह अपराध की ओर तब उन्मुख होता है जब उसकी अंतश्चेतना में चैतन्य मस्तिष्क काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त हो जाता है, ऐसी

स्थिति में वह अपने कर्त्तव्य-पथ से च्युत हो जाता है। उसे सन्मार्ग पर लाने हेतु दण्ड व्यवस्था सहायक होती है और उसका प्रभाव समाज के जनमानस पर पड़ता है, क्योंकि समाज के अनपराधी लोग अपराधी को दिये हुए दण्ड को अपनी अन्तर्बुद्धि से मनन करते हैं और तभी अपने मन की चेष्टाओं को अपराधी वृत्ति से पृथक रख पाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *गौतमधर्मसूत्र 2.2.28*
2. *याज्ञवल्क्यस्मृति 1.354*
3. *तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तार धर्ममात्मजम्। ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वर:। तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणिच। भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च।(मनुस्मृति 7.14-15)*
4. *स राजा पुरुषो दण्ड: स नेता शासिता च स:। चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभू: स्मृत:। दण्डा: शास्ति प्रजा: सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधा:।।(मनुस्मृति 7.17-18)*
5. *स नेतुं न्यायतोऽशक्यो लुब्धेनाकृतबुद्धिना। सत्यसंधेन शुचिना सुसहायेन धीमता।।(याज्ञवल्क्यस्मृति 1.355)*
6. *दुष्येयु: सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतव:। सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्।(मनुस्मृति 7.24) मनुष्याणां पशुनां च दु:खाय प्रहृते सति। यथा यथा महद् दु:खं दण्डं कुर्यात्तथा तथा।।(मनुस्मृति 8.286)*
7. *अपराधानुरूपं च दण्डं दण्ड्येषु दापयेत्। सम्यग्दण्डप्रणयनं कुर्यात्। द्वितीयमपराधं न कस्यचित् क्षमेत।*
   स्वधर्ममपालयन्नादण्ड्योनामास्ति राज्ञ:।(विष्णुस्मृति 3.79-82)
8. *यथाशास्त्रं प्रयुक्त: सन सदेवासुरमानवम्। जगदानन्दयेत्सर्वमन्यथा तत्प्रकोपयेत्।अधर्मदण्डनं स्वर्गकीर्तिलोकविनाशनम्। सम्यक्तु दण्डनं राज्ञ: स्वर्गकीर्तिजयावहम्।(याज्ञवल्क्यस्मृति 1.356-357)*
9. *न्यायेन दण्डनं राज्ञ: स्वर्गकीर्तिविवर्धनम्। अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा तथा दण्ड्यानदण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति।(वृद्धहारीतस्मृति 4.185-186)*
10. *अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा। नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विचलित:स्वकात्। (याज्ञवल्क्यस्मृति1.358), पिताऽऽचार्य: सुहृन्माता भार्या पुत्र: पुरोहित:। नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति य:स्वधर्मे नतिष्ठति।(मनुस्मृति 8.335)*
11. *मनुस्मृति 8.129, याज्ञवल्क्यस्मृति 1.367*
12. *मनुस्मृति 8.129*
13. *सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसं स्मृतम्।(याज्ञवल्क्यस्मृति 2.230)*
14. *साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म। (कौटिल्य अर्थशास्त्र 3.17)*
15. *नारद,साहस. 1-5*
16. *पणानां द्वे शते सार्धे प्रथम: साहस: स्मृत:। मध्यम: पंच विज्ञेय: सहस्रं त्वेव चोत्तम:।।(मनुस्मृति 8.138)*
17. *साशीतिपणसाहस्रो दण्ड उत्तमसाहस:। तदर्धं मध्यम: प्रोक्तस्तदर्धमधम: स्मृत:।तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च। एभिश्च व्यवहर्ता य: स दाप्यो दममुत्तमम्। अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम्। स नाणकपरीक्षी तु दाप्य उत्तमसाहसम्। (याज्ञवल्क्यस्मृति 1.336, 2.240-241)*
18. *क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दम:। पंचाशत्तु भवेद्दण्ड: शुभेषु मृगपक्षिषु।गर्दभाजाविकानां तु दण्ड: स्यात्पंचमाषिक:।*
    माषिकस्तु भवेद्दण्ड: श्वसूकरनिपातने।।(मनुस्मृति .8.297-298)
19. *दु:खे च शोणितोत्पादे शाखांगच्छेदने तथा। दण्ड: क्षुद्रपशूनां तु द्विपणप्रभृति: क्रमात्। लिंगस्य छेदने मृत्यौ मध्यमो*
    मूल्यमेव च। महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणो दम:। (याज्ञवल्क्यस्मृति 2.225-226)
20. *क्षुद्रपशूनां काष्ठादिभिर्दु:खोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्ड:। शोणितोत्पादने द्विगुण:। महापशूनामेतेष्वेव स्थानेषु द्विगुणो*
    दण्ड: समुत्थानव्ययश्च। (कौटिल्य. 3.19)
21. *गजाश्वोष्ट्र गोघातीत्वेककरपाद:कार्य:। विमांसविक्रयी कार्षापणशतम् ग्राम्यपशुघाती च पशुस्वामिनेतन्मूल्यं दद्यात्।*
    आरण्यपशुघाती पंचाशतं कार्षापणान्। पक्षिघाती मत्स्यघाती च कार्षापणान्।(विष्णुस्मृति 5.39-42)
22. *वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा। तथातथा दम: कार्यो हिंसायामिति धारणा।।(मनुस्मृति 8.285)*
23. *फलोपगमद्रुमच्छेदी कीटोपघातीतूत्तमसाहसं दण्ड्य:।*
    पुष्पोपगमद्रुमच्छेदी मध्यमम्। वल्लीगुल्मलताच्छेदी कार्षापणशतम्। तृणच्छेदेके सर्वे च तत्स्वामिनां तदुत्पत्तिम्।(विष्णुस्मृति 5.43-46)
24. *प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे। उपजीव्यद्रुमाणां च विंशतेर्द्विगुणो दम:। चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये। जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षे च विश्रुते।*
    गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम्। पूर्वस्मृतादर्धदण्ड: स्थानेषूक्तेषु कर्तने।। (याज्ञवल्क्यस्मृति 2.227-229)
25. *पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतां प्ररोहच्छेदने षट्पण:। क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपण:।पीनशाखाच्छेदने चतुर्विंशतिपण:। स्कन्धवधे पूर्व: साहसदण्ड:। समुच्छित्ती मध्यम:। पुष्पफलच्छायावद्गुल्म लतास्वर्धदण्ड:। पुण्यस्थानतपोवनश्मशानद्रुमेषु च। सीमवृक्षेषु चैत्येषु द्रुमेष्वालक्षितेषु च। त एव द्विगुणा दण्डा: कार्या राजवनेषु च।।(कौटिल्य. 3.19)*
26. *व्यावहारिकं कर्मचतुष्कम्-षड् दण्डा: सप्त कशा: द्वावुपरि निबन्धौ उदकनालिका च। परं पापकर्मणां नववेत्रलताद्वादशकं द्वावूरुवेष्टौ विंशतिर्नक्तमाललता: द्वात्रिंशत्तला: द्वौ वृश्चिकबन्धौ उल्लम्बने च द्वे सूचीहस्तस्य यवागूपीतस्याप्रस्राव: एकपर्वदहनमंगुल्या: स्नेहपीतस्य प्रतापनमेकमह: शिशिररात्रौ बल्बजाग्रशय्या चेत्यष्टादशकं कर्म। (कौटिल्य.4.8)*
27. *नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वत:। निक्षेप्योऽयोमय: श ुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुल:।। (मनुस्मृति 8.271)*
28. *वाचि पथि शय्यायामासन इति समोभवतो दण्डताडनम्। (आपस्तम्बधर्मसूत्र 2.10.27.15)*
29. *गुरुतल्पे भग: कार्य: सुरापाने सुराध्वज:। स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिरा:पुमान्।(मनुस्मृति 9.237) ब्राह्मणस्य ब्रह्महत्यागुरुतल्प*

ISSN 2277-5587

गमनस्वर्णस्तेयसुरापानेषु कुसिन्धभगसृगालसुराध्वजांस्तप्तेनाऽयसा ललाटेऽ ङ्कयित्वा विषयान्निर्धमनम्। (बौधायनधर्मसूत्र 1.10.18.18)

30. दश स्थानानि दण्डस्य मनु: स्वायंभुवोऽब्रवीत्। उपस्थमुदर जिह्वा हस्तौ पादौ च पंचमम्। चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च। येन येन यथांगेन स्तेनो नृषु विचेष्टते। तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिव:।(मनुस्मृति 8.124-125,334) येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यज:। छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्। पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति।सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टज: । कट्यां कृताङ्को निर्वास्य:स्फिचं वास्यावकर्तयेत्।

अवनिष्ठीवतोदर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृप:। अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्। केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन्।

पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च।(मनुस्मृति 8.279-283)

31. विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु:।(याज्ञवल्क्यस्मृति 2.215)

32. अथ हास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद:।(गौतमधर्मसूत्र 2.3.4)

33. जिह्वाच्छेदनं शूद्रस्याऽऽर्यं धार्मिकमाक्रोशत:। (आपस्तम्बधर्मसूत्र 2.10.27.14)

34. परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपति:। उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्।। तत्समुत्थो हि लोकस्यजायते वर्णसंकर:। येन मूलहरोऽधर्म:सर्वनाशाय कल्पते।(मनुस्मृति 8.352-353) अभिषह्य तु य:कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानव:। तस्याशुकर्त्ये अङ्गुल्यौ दण्डं चार्हति षट्शतम्।(मनुस्मृति 8.367)

35. न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्। राष्ट्रादेनं बहि: कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्।।(मनुस्मृति 8.380)

36. कर्मवियोगविख्यापनविवासनाङ्करणानि।(गौतमधर्मसूत्र2.3.44) सचिंब्राह्मणंकृत्वास्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत्। (याज्ञवल्क्यस्मृति2.270)

37. यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम्। विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्।।(मनुस्मृति 8.219)

38. गौद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लङ्घयेच्च य:। सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्।(याज्ञवल्क्यस्मृति 2.187)

39. आरब्धारस्तु हिंसायां गूढ़ाजीवास्त्रयोदश। प्रवास्या निष्क्रयार्थं वा दद्युर्दोषविशेषत:।।(कौटिल्य.4.4)

40. कितवान्कुशीलवान्क्रूरान् पाषण्डस्थांश्च मानवान्। विकर्मस्थांछौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात्।(मनुस्मृति 9.225) कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृप:। प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत्।(मनुस्मृति 8.123) प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम्। द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत्।।(मनुस्मृति 9.289)

41. भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनै:। शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम्।।(मनुस्मृति 9.268)

42. धर्मस्थीयं महामात्रीयं विभक्तस्त्रीपुरुषस्थानमपसारत: सुगुप्तकक्ष्यं बन्धनागारं कारयेत्।(कौटिल्य. 2.5)

43. बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत्। दु:खिता यत्र दृश्येरन् विकृता: पापकारिण:।।(मनुस्मृति 9.288)

44. कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्। हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन्।(मनुस्मृति 9.280)

45. मनुस्मृति 8.364

46. सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो हस्तवधश्चतु:षतो वा दण्ड:। मृतायां वध:। (कौटिल्य.4.12)

47. सन्धिं छित्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्करा:। तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत्।(मनुस्मृति 9.276)

48. प्रसभं स्त्रीपुरुषघातकाभिसारक निग्राहकावघोषका वस्कन्दकोपवेधकान् पथि वेश्मप्रतिरोधकान् राजहस्त्यश्वरथानां हिंसकान् स्तेनान् वा शूलानारोहयेयु:।(कौटिल्य. 4.11)

49. बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुंजराणां च हारिण:। प्रसह्यघातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान्।।(याज्ञवल्क्यस्मृति 2.273)

50. ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम्। हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृप:।। (मनुस्मृति 9.248)

51. राज्यकामुकमन्त:पुर प्रधर्षकमटव्यमित्रोत्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा शिरोहस्तप्रदीपिकं घातयेत्।(कौटिल्य. 4.11)

52. याज्ञवल्क्यस्मृति 2.270

53. सप्तरात्रस्यान्त: मृते शूद्रवध:। यद्दृच्छाघाते पुंस: पशुयूथस्तेये च शुद्धवध:। (कौटिल्य. 4.11)

54. मनुस्मृति 9.279

55. अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृस्टं तथैव च। मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम्। सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिव:।

प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवश: क्षुरै:।।(मनुस्मृति 9.291-292)

56. क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहका:। राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना।।(याज्ञवल्क्यस्मृति 2.282)

57. विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत्।(कौटिल्य. 4.11)

58. पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे। अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्यते पापकृत्।।उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह।

विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यो दग्धव्यौ वा कटाग्निना।।(मनुस्मृति 8.372,377)

59. भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता। तां श्वभि: खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते।।(मनुस्मृति 8.371)

60. विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्। विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभि: प्रमापयेत्।।(याज्ञवल्क्यस्मृति 2.279)

61. पतिगुरुप्रजाघातिकामग्निविषदां सन्धिच्छेदिकां वा गोभि: पादयेत्। (कौटिल्य. 4.11)

62. विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम्। सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बध्वा प्रवेशयेत्।।(याज्ञवल्क्यस्मृति 2.278)

63. उदकधारणं सेतुं भिन्दतस्तत्रैवाप्सु निमंजनम्। विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषघ्नीमप: प्रवेश येदगर्भिणीम्।(कौटिल्य. 4.11)

64. प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम्। यांस्तत्र चौरान्गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत्।। (मनुस्मृति 8.34)

आचार्य उग्रादित्य का परिचय, समय व रचनाएँ

डॉ. मनीत शर्मा
शोध परामर्शक, शिवचरण माथुर सामाजिक नीति शोध संस्थान, जयपुर

shodhshree@gmail.com

दक्षिण के जैनाचार्यों द्वारा रचित आयुर्वेद या प्राणावाय के उपलब्ध ग्रन्थों में उग्रादित्य का 'कल्याणकारक' सबसे प्राचीन, मुख्य एवं महत्वपूर्ण है। 'कल्याणकारक' ग्रन्थ का प्रकाशन सोलापुर से सेठ गोविन्द राव जी दोशी ने सन् 1940 में किया। इसमें मूल संस्कृत पाठ के अतिरिक्त पं. वर्धमान शास्त्री कृत हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया गया है। इसके संपादन में चार हस्तलिखित प्रतियों से सहायता ली गयी है।1

सर्व प्रथम सन् 1922 में श्री नरसिंहाचार्य ने अपनी पुरातत्व सम्बन्धी रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के महत्व और विषय वस्तु के वैशिष्ट्य पर निम्नांकित पंक्तियों में प्रकाश डाला था –

"Another manuscript of some interest is the medical work "KALYANKARAKA OF UGRADITYA" a Jaina author, who was a contemporary of the Rashtrakuta King Amoghvarsha I and of the Eastern Chalukya King Kali Vishnuvardhana V. The work opens with the statement that the science of medicine is divided into two Parts, namely prevention and cure, and gives at the end a long discourse in sanskrit prose on the uselessness of a flesh diet, said to have been delivered by the author at the court of Amoghvarsha, where many learned men and doctors had assembled." **(Mysore Archeological Report, 1922, Page 23)**[2]

ग्रन्थकार परिचय- ग्रन्थ 'कल्याणकारक' में रचियता का नाम उग्रादित्य दिया हुआ है। उनके माता-पिता और मूल निवास आदि का कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। परिग्रह त्याग करने वाले जैन साधु के लिये अपने वंश परिचय को देने का विशेष आग्रह और आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। किन्तु अपने गुरु और विद्यापीठ का परिचय उग्रादित्य ने विस्तार से दिया है।

गुरु- उग्रादित्य ने अपने गुरु का नाम श्री नन्दि बताया है। वह सम्पूर्ण आयुर्वेदशास्त्र (प्राणावाय) के ज्ञाता थे। उनसे उग्रादित्य ने प्राणावाय में वर्णित दोषों, दोषज उग्र रोगों और उनकी चिकित्सा आदि का सब प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर इस 'कल्याणकारक' ग्रन्थ में प्रतिपादन किया है।[3]

इससे ज्ञात होता है कि श्री नन्दि उस काल में प्राणावाय के महान विद्वान और प्रसिद्ध आचार्य थे। श्री नन्दि को 'विष्णुराज' नामक राजा द्वारा विशेष रुप से सम्मान प्राप्त था। 'कल्याणकारक' में लिखा है- महाराजा विष्णुराज के मुकुट की माला से जिनके चरण युगल शोभित हैं, अर्थात् जिनके चरण कमल में विष्णुराज नमस्कार करता है, जो सम्पूर्ण आगम के ज्ञाता हैं, प्रशंसनीय गुणों से युक्त हैं, और उनसे ही मेरा उद्धार हुआ है। उनकी आज्ञा से नाना प्रकार के औषधदान की सिद्धि के लिये अर्थात् चिकित्सा की सफलता के लिये और सज्जन वैद्यों के वात्सल्य प्रदर्शन रुपी तप की पूर्ति के लिये जिन मत (जैनागम) से उद्धृत और लोक में 'कल्याणकारक' के नाम से प्रसिद्ध इस शास्त्र को मैंने बनाया।[4]

विष्णुराज के लिये यहाँ परमेश्वर का विरुद्ध लिखा गया है। यह परम श्रेष्ठ शासक का सूचक है। यह विष्णुराज ही, पूर्वी चालुक्य राजा कलि विष्णुवर्धन पंचम था, जो उग्रादित्य का समकालीन था, ऐसा नरसिंहाचार्य का मत उनके उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है।[5]

परन्तु पूर्वी चालुक्य राजा कलि विष्णु वर्धन पंचम का शासनकाल ई. 847 से 848 तक ही रहा। एक वर्ष की अवधि में किसी राजा द्वारा महान कार्य सम्पादन कर पाना प्राय: सम्भव ज्ञात नहीं होता।

श्री वर्धमान शास्त्री का अनुमान है- यह विष्णुराज, अमोघ वर्ष के पिता गोविंद राज तृतीय का ही अपर नाम होना चाहिये। क्योंकि जिनसेन ने 'पार्श्वाभ्युदय' में अमोघ वर्ष का परमेश्वर की उपाधि से उल्लेख किया है। हो सकता है कि यह उपाधि राष्ट्रकूटों की परम्परागत हो।[6]

यह मत मान्य नहीं, केवल अनुमान पर आधारित है। क्योंकि पहले राष्ट्रकूटों का वेंगी पर अधिकार नहीं था। अमोघवर्ष प्रथम ने उस पर सबसे पहले अधिकार किया था। यह विष्णुराज, जो वेंगी का शासक था, निश्चय ही कलि विष्णुवर्धन और अमोघवर्ष प्रथम से पूर्ववर्ती विष्णुवर्धन चतुर्थ नामक अत्यन्त प्रभावशाली और जैन मतानुयायी पूर्वी चालुक्य राजा था। इसका शासनकाल ई 764 से 799 तक रहा।

डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने भी यही उल्लेखित किया है कि विष्णुवर्धन चतुर्थ चालुक्य राजा के काल में श्री नंदि सम्मानित हुये थे।[7]

निवास स्थान तथा काल- श्री उग्रादित्य की निवास भूमि 'रामगिरि' थी, जहाँ उन्होंने श्री नंदि गुरु से विद्याध्ययन प्राप्त कर 'कल्याणकारक' ग्रंथ की रचना की थी। रामगिरि के विषय में 'कल्याणकारक' ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है।[8]

उपर्युक्त श्लोक सं. 87 व 3 में रामगिरि को त्रिकलिंग प्रदेश का प्रधानस्थान बताया गया है। गंगा से कटक तक के प्रदेश को उत्कल या उत्तर कलिंग, कटक से महेन्द्रगिरि तक के पर्वतीय भाग को मध्य कलिंग और महेन्द्रगिरि से गोदावरी तक के स्थान को दक्षिण कलिंग कहते थे। इन तीनों की मिलित संज्ञा 'त्रिकलिंग' थी।

वस्तुत: यह रामगिरि, विजयापट्टम जिले में रामतीर्थ नामक स्थान है। यहाँ पर 'दुर्गपंचगुफा' की भित्ति पर एक शिलालेख भी है। इसमें किसी एक पूर्वीय चालुक्य के सम्बन्ध में जानकारी दी हुयी है। यह शिलालेख ई. 1011-12 का है। इससे यह प्रकट होता है कि रामतीर्थ जैन धर्म का एक पवित्र स्थान था। यहाँ पर अनेक जैन अनुयायी रहते थे। उक्त शिलालेख में रामतीर्थ को रामकोड भी लिखा है।

पं. कैलाश चन्द्र के अनुसार- ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में रामतीर्थ में बौद्धधर्म के बहुत अवशेष प्राप्त हुये हैं। यह उल्लेखनीय है कि बौद्धधर्म के पतनकाल में कैसे जैनों ने इस स्थान पर कब्जा जमाया और उसे अपने धर्मस्थान के रूप में परिवर्तित कर दिया।[9]

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने रामतीर्थ की वैभवपूर्ण स्थिति को ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य तक स्वीकार किया है- रामतीर्थ (रामगिरि) भी ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य तक प्रसिद्ध एवं उन्नत जैन सांस्कृतिक केन्द्र बना रहा, जैसा कि वहाँ के एक शिलालेख से प्रमाणित होता है। विमलादित्य (1022 ई.) के भी एक कन्नड़ी शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसके गुरु त्रिकाल योगी शिद्धालदेव तथा विमलादित्य स्वयं राजा भी जैन तीर्थ के रुप में रामगिरि की वन्दना करने गये थे।[10]

उग्रादित्य के काल में रामगिरि अपने पूर्ण वैभव पर था। उसका समकालीन शासक वेंगी का पूर्वी चालुक्य राजा विष्णुवर्धन चतुर्थ (764-799 ई.) था। विष्णुवर्धन चतुर्थ जैन धर्म का बड़ा उपासक था। इस काल में विजया पट्टम (विशाखापत्तनम) जिले की रामतीर्थ या रामकोड नामक पहाड़ियों पर एक भारी जैन सांस्कृतिक केन्द्र विद्यमान था। त्रिकलिंग (आंध्र) प्रदेश के वेंगी क्षेत्र की समतल भूमि में स्थित यह रामगिरि पर्वत- अनेक जैन गुहा मन्दिरों, जिनालयों एवं अन्य धार्मिक कृतियों से सुशोभित था। अनेक विद्वान जैन मुनि वहाँ निवास करते थे। विविध विद्याओं एवं विषयों की उच्च शिक्षा के लिये यह संस्थान एक महान विद्यापीठ था। वेंगि के चालुक्य नरेशों के संरक्षण में जैनाचार्य श्री नंदि इस विद्यापीठ के प्रधानाचार्य थे। वह आयुर्वेद आदि विभिन्न विषयों में निष्णात थे। स्वयं महाराज विष्णुवर्धन उनके चरणों की पूजा करते थे।[11]

इन आचार्य के प्रधान शिष्य उग्रादित्याचार्य थे। जो आयुर्वेद एवं चिकित्सा शास्त्र के उद्भट विद्वान थे। सन् 799 ई. के कुछ पूर्व ही उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ 'कल्याणकारक' की रचना की थी। ग्रंथ प्रशस्ति से यह स्पष्ट होता है कि मूल ग्रन्थ को उन्होंने महाराज विष्णुवर्धन के ही शासनकाल और प्रश्रय में रचा था।[12]

त्रिकलिंग प्रदेश ही आजकल तैलंगाना या तिलंगाना कहलाता है, जो इस शब्द का विकृत रुप है। वेंगी राज्य इसी क्षेत्र के अन्तर्गत था।

वेंगी राज्य की सीमा उत्तर में गोदावरी नदी, दक्षिण में कृष्णा नदी, पूर्व में समुद्र तट तथा पश्चिम में पश्चिमी घाट थी। इसकी राजधानी वेंगी नगर थी, जो वर्तमान में पेड्डवेंगी या गोदावरी जिला के नाम से प्रसिद्ध है।[13]

अत: निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उग्रादित्याचार्य मूलत: तैलंगाना (आंध्र प्रदेश) के निवासी थे, और उनकी निवास भूमि रामगिरि, विशाखापत्तनम जिले की रामतीर्थ या रामकोड नामक पहाड़ियाँ थीं। यहीं पर जिनालय में बैठकर उन्होंने 'कल्याणकारक' की रचना की थी। उनका काल आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध था।

उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि उग्रादित्याचार्य को वास्तविक संरक्षण वेंगि के पूर्वी चालुक्य राजा विष्णुवर्धन चतुर्थ (764-799 ई.) से प्राप्त हुआ था।

615 ई. में चालुक्य सम्राट पुलकेशी द्वितीय ने आंध्रप्रदेश पर अधिकार प्राप्त कर वहाँ अपने छोटे भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था। इस देश की राजधानी वेंगी थी। पुलकेशी के अन्तिम काल में वेंगी का शासक स्वतंत्र हो गया और उसने वेंगी के

पूर्वी चालुक्य राजवंश की स्थापना की। इस राजवंश के नरेशों में जैन धर्म के प्रति बहुत आस्था थी। इसी वंश में पूर्वोक्त विष्णुवर्धन चतुर्थ (764-799ई.) हुआ राष्ट्रकूटों के साथ इसके अनेक युद्ध हुये थे। विष्णुवर्धन चतुर्थ जैन धर्म का अनुयायी था। इसकी मृत्यु के बाद, इस वंश में जो राजा हुये थे, वे दुर्बल थे। राष्ट्रकूट सम्राट गोविन्द तृतीय (793-810 ई.) और उसके पुत्र सम्राट अमोघवर्ष प्रथम (814-878 ई.) ने अनेक बार वेंगी पर आक्रमण कर पूर्वी चालुक्य राजाओं को पराजित किया। अत: यह सम्भावना उचित ही प्रतीत होती है कि चालुक्य सम्राट विष्णुवर्धन चतुर्थ की मृत्यु के बाद, जब पूर्वी चालुक्यों का वैभव समाप्त होने लगा, और राष्ट्रकूट सम्राट अमोघवर्ष प्रथम की प्रसिद्धि और जैन धर्म के प्रति आस्था बढ़ने लगी, तो उग्रादित्याचार्य ने अमोघवर्ष प्रथम की राजसभा में आश्रय प्राप्त किया हो। सम्भव है, अमोघवर्ष की मद्य मांस प्रियता को दूर करने के लिये उन्हें उसकी राजसभा में उपस्थित होना पड़ा हो, अथवा सम्राट ने उन्हें आमन्त्रित किया हो। अत: 'कल्याणकारक' के अंत में नृपतुंग अमोघ वर्ष का भी उल्लेख है।

ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि उग्रादित्याचार्य 'कल्याणकारक' की रचना रामगिरि में ही 799 ई. तक कर चुके थे। परन्तु बाद में जब अमोघ वर्ष प्रथम की राजसभा में आये तो उन्होंने मद्य-मांस सेवन के निषेध की युक्ति युक्तता प्रतिपादित करते हुये ग्रन्थ के अन्त में हिताहित नामक एक नया अध्याय और जोड़ दिया।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का भी यही विचार है -आचार्य उग्रादित्य ने अपने 'कल्याणकारक' नामक वैद्यक ग्रंथ की रचना 800 ई. के पूर्व ही कर ली थी, किन्तु अमोघ वर्ष के आग्रह पर उन्होंने उसकी राजसभा में आकर अनेक वैद्यों एवं विद्वानों के समक्ष मद्य-मांस निषेध का वैज्ञानिक विवेचन किया और इस ऐतिहासिक भाषण को हिताहित अध्याय के नाम से परिशिष्ट रुप में अपने ग्रन्थ में सम्मिलित किया।[14]

इस प्रकार आचार्य उग्रादित्य का उत्तर कालीन जीवन दक्षिण के राष्ट्रकूट वंशीय सम्राट अमोघ वर्ष प्रथम का समकालीन रहा। इस शासक का शासन काल 814 से 878 ई. तक रहा था।

सम्राट अमोघ वर्ष प्रथम को नृपतुंग, महाराज शर्व, महाराज शण्ड, वीर नारायण, अतिशय धवल, शर्वधर्म, वल्लभराम, श्री पृथ्वी वल्लभ, लक्ष्मी वल्लभ, महाराजाधिराज, भटार, परम भट्टारक आदि विरुद्ध प्राप्त थे।[15]

अमोघ वर्ष गोविन्द तृतीय का पुत्र था। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा, उस समय उसकी आयु नौ-दस वर्ष की थी, अत: गुर्जर देश का शासक कर्कराज, जो उसके चाचा इन्द्र का पुत्र था, उसका अभिभावक और संरक्षक बना। अमोघ वर्ष के वयस्क होने पर, 821 ई. में कर्कराज ने विधिवत उसका राज्याभिषेक किया।

अमोघ वर्ष के पिता गोविन्द तृतीय ने एलोरा और मयूरखण्डी से हटाकर राष्ट्रकूटों की नवीन राजधानी मान्यखेत नासिक के पास (मलखेड) में स्थापित की थी। परन्तु उसके काल में इसकी बाहरी प्राचीर का ही निर्माण हो सका था। बाद में अमोघ वर्ष ने अनेक सुन्दर व भव्य प्रासादों, सरोवरों और भवनों के निर्माण द्वारा उसका अलंकरण किया।

अमोघवर्ष एक शांतिप्रिय और धर्मात्मा शासक था। युद्धों का संचालन प्राय: उसके सेनापति और योद्धा ही करते थे। अत: उसे वैभव समृद्धि और शक्ति को बढ़ाने का खूब अवसर प्राप्त हुआ।

851 ई. में अरब सौदागर सुलेमान भारत आया था। उसने दीर्घायु बलहरा (वल्लभ राय) नाम से अमोघ का वर्णन किया है तथा लिखा है कि उस समय संसार भर में जो सर्वमहान चार सम्राट थे, वे भारत का वल्लभ राय (अमोघ वर्ष), चीन का सम्राट, बगदाद का खलीफा तथा रुस के कुस्तुन्तुनिया का सम्राट था।[16]

स्वयं वीर, गुणी और विद्वान होने के साथ उसने अनेक विद्वानों, कवियों और गुणियों को अपनी राजसभा में आश्रय प्रदान किया। इसके काल में संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़ी और तमिल भाषाओं के विविध विषयों के साहित्य-सृजन में अपूर्व प्रोत्साहन मिला।

सम्राट अमोघवर्ष दिगम्बर जैन धर्म का अनुयायी और आदर्श श्रावक था। वीरसेन स्वामी के शिष्य आचार्य जिनसेन स्वामी का वह शिष्य था। जिनसेन स्वामी उसके राजगुरु और धर्म गुरु थे।[17]

अमोघ वर्ष प्रथम नृपतुंग वल्लभराय, आचार्य उग्रादित्य का समकालीन शासक था। इसका प्रमाण हमें 'कल्याणकारक' की निम्न पंक्तियों में मिलता है।

ख्यात: श्री नृपतुंग वल्लभ महाराजाधिराज स्थित:।
प्रोधदमूरिस भांतरे बहुविध प्रख्यात विद्वज्जने।।
मांस शिप्र करेन्द्रता खिल भिषग्विद्या विदामग्रतो।[18]
मांसे निष्फलतां निरुप्य नितरां जैनेंद्र वैद्य स्थितम।।

इत्य शेष विशेष विशिष्ट विशिताशि वैद्य शास्त्रेषु, मांस निराकरणार्थमुग्रादित्याचार्यै नृपतुंग वल्लभेन्द्र समाया मुद्घोषितं प्रकरणम्।[19]

अर्थात् प्रसिद्ध नृपतुंग वल्लभ राय महाराजाधिराज की सभा में जहाँ अनेक प्रकार के प्रसिद्ध विद्वान विद्यमान थे, मांस भक्षण की प्रधानता का पोषण करने वाले वैद्यक विद्या के विद्वानों (वैद्यों) के सामने इस जैनेन्द्र (जैन मतानुयायी) वैद्य ने उपस्थित होकर मांस की निष्फलता (निरर्थकता) को पूर्णतया सिद्ध कर दिया। इस प्रकार सभी विशिष्ट, दुष्ट, मांस के भक्षण की पुष्टि करने वाले वैद्य शास्त्रों में मांस का निराकरण करने के लिये, उग्रादित्याचार्य ने इस प्रकरण को नृपतुंग वल्लभ राजा की सभा में उद्घोषित किया।[20]

इस वर्णन में जिस राजा के लिये उग्रादित्याचार्य ने नृपतुंग, वल्लभ, महाराजाधिराज, वल्लभेन्द्र आदि विरुद्धों का प्रयोग किया है वह स्पष्ट रुप से राष्ट्रकूट वंशीय प्रतापी सम्राट अमोघवर्ष प्रथम

(814-877 ई.) ही था, क्योंकि ये सभी विरुद्ध उसके लिये ही प्रयुक्त हुए हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. क.का. प्रस्तावना पृ. 22
2. क.का. प्रस्तावना पृ. 42
3. क.का. प्रस्तावना पृ. 20/84, 21/3
4. क.का. 25/51-52
5. क.का. प्रस्तावना पृ. 43
6. वर्धमान शास्त्री, 'कल्याणकारक', उपोद्धात, पृ.सं. 42
7. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, भारतीय इतिहास, एक दृष्टि पृ. 290
8. क.का. परि.20, श्लोक 87 एवं क.का.पृ. 21 श्लोक 3
9. पं. कैलाशचन्द्र, दक्षिण में जैन धर्म पृ.सं. 70-71
10. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, भारतीय इतिहास, एक दृष्टि पृ. 291
11. क.का. प्रस्तावना, पृ.सं. 43
12. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, भारतीय इतिहास, एक दृष्टि पृ. 289-290
13. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 86
14. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, भारतीय इतिहास, एक दृष्टि पृ. 302
15. पं. कैलाश चन्द्र, दक्षिण भारत में जैन धर्म, पृ. 90
16. भारत के प्राचीन राजवंश, भाग 3, पृ. 38
17. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, भारतीय इतिहास, एक दृष्टि पृ. 301
18. क.का. प्रस्तावना पृ. 41
19. क.का. हिताहिताध्याय समाप्ति सूचक अंश
20. क.का. पृ. सं. 747

शिक्षा और मनोसामाजिक सशक्तिकरण से ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार

मोनिका यादव
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

सम्पूर्ण एवं समग्र रुप से सशक्तिकरण से आशय ऐसा वातावरण सृजित करने से है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने जीवन, जीवित रहने तथा स्वयं को विकसित करने के बारे में स्वयं निर्णय ले सकें। महिला सशक्तिकरण वह स्थिति है जब महिलाओं के व्यक्तित्व का विकास, परिवार में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका, आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर हो और वे अपने आपको शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व भावात्मक रुप से सुरक्षित महसूस करें।

महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम है जिसमें शिक्षा, पोषण व स्वास्थ्य देखभाल तथा रोजगार में आने वाली समस्याओं को दूर करना। इसके साथ-साथ महिलाओं के साथ गरीमा व सम्मान से पेश आना चाहिए, उनको समाज में निर्णय का अधिकार देना चाहिए ताकि वे अपने आपको सुरक्षित महसूस कर सकें।

व्यक्तिगत रुप से प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं में महिला सशक्तिकरण के लिए सामाजिक तौर पर अपनी सोच, नजरिए व मानसिकता में बदलाव लाने की आवश्यकता है। महिलाओं को शिक्षित किया जाऐं, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरुक किया जाऐं ताकि वे अपनी लड़ाई कानूनी तौर पर लड़ सकें और मौलिक अधिकार एवं मानवाधिकारां की रक्षा कर सकें।

शिक्षा को मानव संसाधन के विकास का एक प्रमुख स्त्रोत माना जाता है और उससे जो क्षमताएँ विकसित होती है, भूमण्डलीकरण के समय और भी प्रभावी हो जाती है क्योंकि दक्षता और सशक्तिकरण एक-दूसरे के पर्याय बन जाते है। महात्मा गाँधी ने लैंगिक समानता की स्थापना के लिए स्त्रियों की शिक्षा को आवश्यक माना। गाँधी जी का विश्वास था कि शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियाँ अपने प्राकृतिक अधिकारों को प्राप्त करने, उनकी रक्षा करने तथा उनमें सुधार और अपेक्षित परिवर्तन करने में सक्षम हो पाएंगी।

शिक्षा एवं महिला विकास

ज्ञान मनुष्य की वह तीसरी आँख है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशित करने का सामर्थ्य रखता है। शिक्षा का आशय आत्मसंस्कार, आत्मोन्नति से है जो कि आयुपर्यंत चलने वाला तथ्य है। महिलाओं के विकास में शिक्षा एवं रोजगार महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व है। शिक्षा के आधार पर दक्षता, कौशल, ज्ञान एवं क्षमताओं का विकास होता है। शिक्षित महिला न केवल स्वयं लाभान्वित होती है बल्कि भावी पीढ़ी को भी लाभान्वित करती है। एक शिक्षित महिला दो परिवारों को शिक्षित करती है, एक तरफ वह अपने परिवार में छोटे भाई-बहनों के सामने आदर्श पेश करती है तो दूसरी ओर पति के परिवार में भी शिक्षा का उजाला फैलाती है।

'वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट' में भी बताया गया है कि शिक्षित महिलाएँ उत्पादकता, आय एवं आर्थिक विकास के साथ-साथ स्वस्थ एवं सुपोषित जनसंख्या के निर्माण में सहायक है। शिक्षित महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता एक निरक्षर महिला से कहीं अधिक देखी गई है जो हम इन आँकड़ों द्वारा स्पष्ट कर सकते है-

- साक्षर महिलाएँ प्रसवकाल में अपने स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देती है। 91.2% शिक्षित महिलाओं ने प्रसवकाल के दौरान टिटनेस के टीके लगवाएं, जबकि निरक्षर महिलाओं में से केवल 54.7% महिलाओं ने ही टीटनेस के टीके लगवाएं।
- प्रसवकाल के दौरान 86.5% साक्षर महिलाओं ने फॉलिक एसिड की गोलियाँ ली जबकि निरक्षर

ISSN 2277-5587

महिलाओं में से केवल 43.6% ने ही प्रसवकाल के दौरान फॉलिक एसिड की गोलियाँ ली।

- हाई स्कूल की शिक्षा पूरी करने वाल माताओं ने 73% बच्चों को पूरे टीकें लगवाएं जबकि निरक्षर महिलाओं द्वारा टीके लगवाने की दर मात्र 28% है।
- निरक्षर महिलाओं में से केवल 18: महिलाओं को ही एड्स की जानकारी थी जबकि 54% साधारण साक्षर महिलाओं तथा 92% हाई स्कूल पूरा करने वाली महिलाओं को एड्स की जानकारी थी।

शिक्षा की उपयोगिता सामाजिक एवं आर्थिक भेदभाव के दुश्चक्र को तोड़कर फलत: समाज से अपने आपको आत्मसात करने में निहित है। शिक्षा को एक समग्र जीवन दृष्टि के रुप में देखने पर ही परिवार व समाज का कल्याण संभव है। फलत: महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा अति आवश्यक है। शिक्षित महिला ही देश व समाज को समृद्ध बना सकती है। अत: शिक्षा महिला विकास का आधार स्तम्भ है। शिक्षा आने वाले समय में महिला सशक्तिकरण में अहम भूमिका निभाएगी।

महिला सशक्तिकरण एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सामाजिक घटक है जिसको समझने के लिए हमें अपने पारिवारिक ढांचे सहित उसके बहुआयामी प्रभाव पर चिंतन - मनन करना होगा। महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, ऋण सुविधाएं और निर्णय लेने के अवसर के साथ-साथ कानूनी अधिकार भी प्रदान करने होंगे ताकि वें सही अर्थो में सशक्त व समर्थ बन सकें जिसके परिणामस्वरुप शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की आधारशिला तैयार होगी जिससे सम्पूर्ण समाज व देश को अपेक्षित परिणाम मिलेगा।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के लिए आजीविका मिशन का शुभारंभ जून 2011 से किया, जिसके लिए 12वीं पंचवर्षीय योजना में 29 हजार करोड़ रुपये आवंटित किए गए, इससे पूरे देश में 7 करोड़ से अधिक गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाले ग्रामीण परिवारों को आने वाले समय में स्वयं सहायता समूहों से जोड़कर संगठित किया जाएगा।

ऐसा लक्ष्य निश्चित किया गया है कि राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) अगले 5 वर्षो (2012-17) में देशभर के निर्धन परिवारों में से कम - से - कम एक महिला को स्वयं सहायता समूहों से सकारात्मक रुप से जोड़ेगा। इस मिशन का उद्देश्य गरीबों को समर्थ बनाकर उनके जीवन को प्रभावित करना अर्थात् जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार लाना है। इसके लिए ऋण सुविधा हेतु राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) सूक्ष्म वित्त उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। देश के मनोसामाजिक व आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण महिला सशक्तिकरण अति आवश्यक है। इसी कारण से देश के विकास के लिए ग्रामीण महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में लाना सरकार की नैतिक जिम्मेदारी या ज्वलंत चिंता रही है।

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण ग्रामीण भारत के विकास के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। जनगणना 2011 के अनुसार आज भी देश की 68% आबादी गाँवों में निवास करती है। और गांवों के विकास के लिए महिलाओं का विकास एवं सशक्तिकरण बहुत आवश्यक है महिलाओं का सशक्तिकरण जीवन के सभी क्षेत्रों में सतत् विकास, पारदर्शी तथा उत्तरदायी सरकार एवं प्रशासन के लिए आवश्यक है। इसके साथ ही महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक पहचान के बीच घनिष्ठ संबंध होने की सच्चाई को स्वीकार करके समग्र एवं वृहद् दृष्टिकोण से महिलाओं के सशक्तिकरण के बारे में आशा के अनुरुप बल मिलता है। अत: आने वाले समय में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन ग्रामीण महिलाओं के लिए मील का पत्थर साबित होगा।

पंचायतीराज के माध्यम से महिला सशक्तिकरण

राजनीतिक नेतृत्व महिलाओं के विकास से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है। विधायिका में महिलाओं की संख्या न केवल लोकतांत्रिक प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करेगी बल्कि लैंगिक समानता एवं न्याय के प्रति प्रतिबद्ध समाज का निर्माण करेगी।

पंचायतीराज में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण की व्यवस्था से महिलाएं राजनीतिक रुप से भी सशक्त हुई है और उनमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास हुआ है। महिलाओं को पंचायत में 50% आरक्षण देने वाला अग्रणी राज्य बिहार है, आज की स्थिति में 14 राज्यों में यह विधेयक पास कर दिया गया है। आज महिलाओं को हर क्षेत्र में आगे बढ़ने का मौका मिल रहा है उनकी कही हुई बातों का गाँव की चौपाल से लेकर संसद के गलियारों तक में गंभीरता के साथ सुना जा रहा है। इस दिशा में बहुत से प्रयास पंचायतीराज स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक हो रहे है।

21वीं सदी महिलाओं के लिए सार्थक सिद्ध हो रही है। 21वीं सदी में भारतीय ग्रामीण महिलाओं के जीवन-स्तर में सुधार के पीछे मनरेगा, आजीविका मिशन, कौशल क्षमता का विकास, तीव्र निर्माण कार्य, साक्षरता मिशन, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, समेकित बाल विकास परियोजना, सबला कार्यक्रम, इंदिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना, जननी सुरक्षा योजना आदि का योगदान है। इसके साथ ही समावेशी विकास से भी ग्रामीण महिलाओं के जीवन जीने के स्तर में सुधार आया है। आज की ग्रामीण महिलाओं की अन्तरात्मा में विश्वास, आशाएँ उमंगें आसमान छू रही है। यह नेतृत्व नीति व नियम की सकारात्मक सहभागिता से सामाजिक ढांचे में ग्रामीण भारत की महिलाओं के जीवन में सुधार लाया है एवं महिलाओं के सामाजिक ढांचे का विकास अपेक्षित हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *शर्मा, प्रज्ञा, ''महिला विकास और सशक्तिकरण''*
2. *शर्मा, मंजु, ''भारतीय समाज में महिलाओं का विकास''*
3. *खडेला, मानचंद्र, ''महिला सशक्तिकरण''*
4. *कुरुक्षेत्र*
5. *योजना*
6. *सुजस, जयपुर।*
7. *राजस्थान पत्रिका*

shodhshree@gmail.com

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में राजनीतिक सन्दर्भ

कविता मीणा
व्याख्याता, जा.दे.ब.राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा

राजनीति व्यक्ति का विचार व अनुभव होती है तो कविता इन अनुभवों का संचित प्रतिबिम्ब। वैसे भी कविता और राजनीति सदैव एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। देश की राजनीतिक व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्तों, विचारों एवं क्रियाविधि का समन्वित स्वरूप हिन्दी काव्य मे मिलता है। हिन्दी कवि तुलसीदास द्वारा वर्णित 'राम-राज्य' आज भी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का आदर्श बना हुआ है। कवियों की राष्ट्र के राजनीतिज्ञों, राज-संगठनों एवं संस्थाओं के कार्मिकों व व्यवस्थावादियों के व्यवहार-प्रतिमान से संबंधित चिन्तन एवं विचारधारा से राजनैतिक संस्कृति सदैव विकसित होती रही है। कविता के माध्यम से कवि राज्य के प्रति अपनी अपेक्षाओं व आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता है। भारतीय राजनीति की उत्तरोत्तर बिगड़ती दशा से युगीन कवि सदैव विक्षुब्ध रहा है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का वैचारिक धरातल राजनीति से सदैव जुड़ा हुआ रहा है, विशेषकर साठोत्तरी कविता में प्रखर राजनीतिपरकता दिखाई देती है। समकालीन हिन्दी कविता में भी राजनीतिक चिन्तन व विचार ही अधिक है। जनकल्याण, बंधुता, राष्ट्रीय एकता और मानवीयता भारतीय राजनीति के मूल्य माने जाते हैं परन्तु स्वतंत्रता पश्चात् इन राजनीतिक मूल्यों एवं सिद्धान्तों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। कुर्सी की राजनीति, राजनेताओं के दोगले व्यक्तित्व, खोखले नारेबाजी, अवसरवादिता एवं भ्रष्ट आचरण ने राजनैतिक संस्कृति का उन्मूलन किया है। स्वतंत्रता पूर्व जिस सुनहरे भविष्य की कल्पना करते हुए देशवासियों ने आजाद्दी के लिए संघर्ष किया था वह सुखद आकांक्षाएँ अब राजनीतिक कूटमंत्रणाओं के जाल में फँस गयी थी। राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता पर ऐसे सवाल पैदा होने लगे जिनके बारे में स्वतंत्रता पूर्व परिवेश में शायद अपेक्षा भी नही थी । स्वतंत्र भारत में जो राजनीति सामने आयी वह विकास की कम तथा विरोध की राजनीति अधिक रही । स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की इन समस्याओं को हिन्दी के बुद्धिजीवी कवियों ने समझा तथा तीखी एवं विचलित करने वाली भाषा मे विद्रोह कर देशवासियों को राजनीति के प्रति सचेत एवं जागरुक करने का कार्य किया। हिन्दी कविता में राजनीति से जुड़े विविध संदर्भ स्वतंत्रता के पश्चात से आज तक काव्य-संवेदना से जुड़े हुए है। काव्यकार के इन विचारों एवं चिन्तन से राजनतिक चेतना का विकास हुआ है। मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, राजकमल चौधरी, अरुण कमल, कुमार विकल उदय प्रकाश, इत्यादि कवियों की कविताओं में राजनीतिक स्वर बहुत तीखे रहे हैं। इन हिन्दी कवियों द्वारा राजनीतिक संदर्भो की सच्चाइयों को प्रस्तुत करना सार्थक भी है और प्रभावशाली भी। अशोक वाजपेयी का मत है कि- ''अगर कवि अपने को विचारों से खासकर राजनीतिक विचारों से,जो आज की दुनिया में इतने प्रभावशील हैं, अपने को काट लिया या अलग रखा तो फिर नये कवि का यह दावा कि वह समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार करने की कोशिश कर रहा है, व्यर्थ हो जायेगा। राजनीति को दरकिनार रखकर समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार सार्थक और प्रासंगिक नहीं हो सकता।''[1] राजनीतिक सिद्धान्तों तथा राजनीतिज्ञों के व्यावहारिक व मनोवैज्ञानिक पहलुओं को स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कवियों ने काव्यबद्ध किया है। राजनैतिक व्यवस्थावादियों की स्वार्थपरता, लक्ष्यहीनता व अवसरवादिता ने इन कवियों को झकझोर कर रख दिया। स्वतंत्रता के कुछ वर्षों पश्चात् ही राजनीतिक व्यवस्था में भ्रष्टता को देखकर कवि रघुवीर सहाय को यह अहसास अवश्य होने लग गया था कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था से विश्वसनीयता

ISSN 2277-5587

जल्द ही खत्म होने वाली है। उन्होंने कहा भी है-

टूटते-टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जायेगा कि
बीस साल धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला-भाला मंत्री
मामला बताओं हम कार्रवाई करेंगे।[2]

भारतीय राजनीति में कुर्सी को पाने की होड़ को कवि मुक्तिबोध ने काफी पहले पहचान लिया था । राजनेताओं द्वारा मतदाताओं को दिये जाने वाले झूठे आश्वासनों, स्वार्थी आचरण को जिस तरह से कवि ने चित्रित किया है उससे यह तो मालूम हो जाता है कि भारतीय राजनीति की यह समस्या काफी पुरानी है। कवि मुक्तिबोध की निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त विचार भारतीय राजनीति के इस कटु यथार्थ को दर्शाता है-

''इस सल्तनत में
हर आदमी उचककर चढ़ जाना चाहता है,
धक्का देते हुए बढ़ जाना चाहता है,
हर आदमी को अपनी- अपनी
पड़ी हुई है।
चढ़ने की सीढ़ियां
सिर पर चढ़ी हुई है।''[3]

आजादी के बाद की शासन व्यवस्था की जिन सच्चाईयों का चित्रण कवि धर्मवीर भारती नें 'अंधायुग' कृति में किया था वह आज की राजनीति की भी बाहरी और आंतरिक व्यवस्था का अक्स मालूम होती है। महाभारत की घटनाओं का आश्रय लेकर कवि धर्मवीर भारती ने राजशक्तियों की कमज़ोरियों को उद्घाटित करते हुए कहा है कि शासक बदल गये है मगर स्थितियाँ नहीं। 'अंधायुग' की निम्न पंक्तियाँ वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की वास्तविकता प्रतीत होती है-

'' हम जैसे पहले थे, वैसे ही अब भी हैं/शासक बदले/स्थितियाँ बिल्कुल वैसी हैं/इससे तो पहले के शासक ही अच्छे थे/अंधे थे......./लेकिन वे शासन तो करते थे/ये तो सन्त ज्ञानी हैं/शासन करेंगे क्या ?''[4]

वर्तमान राजनीति के छलावे और प्रशासकीय कार्यालयों की भ्रष्टता को शायद कवि धूमिल ने भी बहुत पहले ही पहचान लिया था इसलिए देश की राजनीति से उनका मोहभंग हो गया था। धूमिल का मानना था कि सत्ता परिवर्तित होने पर भी सिर्फ शासकों के चेहरे बदलते हैं व्यक्तित्व वहीं पुराना रहता है। उन्होंने 'पटकथा' काव्य में लिखा है-

हाँ, यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ टोपियाँ बदल गयी हैं
और
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल-उछल कर
अपनी जगहें बदल रहे हैं।[5]

देश की संसद के प्रति अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कवि धूमिल ने कहा था कि देश की संसद देश के नागरिकों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं कर रही है।कवि धूमिल की रचना 'संसद से सड़क तक' भारतीय राजनीतिक व्यवस्था से सीधे साक्षात्कार करवाती है। यथा-

अपने यहाँ संसद
तेली की वह घानी है;
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है।[6]

समकालीन राजनीति में राजनीतिज्ञों के झूठे आश्वासनों एवं स्वार्थपरक नीति से राजनीतिक व्यवस्था में मूल्यहीनता की स्थिति पैदा हुई है जिससे राजनैतिक संस्कृति की स्थिति दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। कवि लीलाधर जगूड़ी राजनीतिज्ञों के इस आचरण पर दुख प्रकट करते हैं। जगूड़ी ने प्रशासनिक क्षेत्रों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, शिक्षण संस्थानों, प्रबन्धकीय कार्यालयों, निजी उद्योग केन्द्रों जैसे समस्त स्थलों पर अव्यवस्थित मानसिकता को महसूसा है। उनके अनुसार, इस व्यवस्था में कहीं-न-कहीं हर आदमी चोर है। सर्वहारा मजदूर, कृषक, छोटे-मोटे दुकानदार, कम वेतनभोगी अध्यापक, टेक्नीशियन-सभी किसी-न-किसी तरह इस अव्यवस्थित परिवेश में जीने को विवश हैं और हर कोई पैसे की खातिर जीवनमूल्यों का गला काटने को तत्पर है।[7] कवि लीलाधर जगूड़ी राजनीतिक व्यवस्थावादियों की अवसरवादिता तथा भ्रष्ट आचरण पर व्यंग्य करते हुए आक्रोश व्यक्त करते हैं। कवि जगूड़ी ने स्वार्थी नेताओं की लालची मनोवृति पर व्यंग्य करते हुए लिखा है-

''बहुत कुछ करना है/अपने स्वागत में/सांकेतिक हड़ताल को दिन
में पहनना है
घु अन्धेरे में नलके नीचे/अपना लोकतंत्र पछींटना है/
कुल मिलाकर
मुझे जनता से आना है/ और मेल से जाना है।''[8]

आधुनिक राजनीतिक व्यवव्था के अन्तर्गत जिस तरह से देश की बहुसंख्यक जनता की समस्याओं की ओर ध्यान न देकर हमारे राष्ट्रनेताओं द्वारा पूँजीपति वर्ग के हित की समृद्धशाली योजनाऐं बनायी जाती हैं वह भारतीय राजनीति की पूँजीवादी संरचना को दर्शाती है। कवि उदय प्रकाश ने वर्तमान षासन व्यवस्था की इसी सच्चाई का पर्दाफाश करते हुए लिखा है-

''महापुरुष की धोती का
एक छोर
नगर सेठ की तिजोरी में है
दूसरा संसद की कुर्सी में।''[9]

वर्तमान भारतीय राजनीति की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी में अन्तर बढ़ रहा है। राजनेता सिद्धान्त अच्छे बनाता है लेकिन चुनाव जीतने के पष्चात वह स्वयं अपने सिद्धान्तों को समझ नहीं पाता है। समाज और देश के विकास से जुड़े हर मुद्दे पर वह सिर्फ राजनीति करना चाहता है ,विकास नहीं। कवि राजकमल चौधरी ने ऐसे ही राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है-

''बोतल में भरी हुई शराब/अलमारी में सजी हुई किताबें इतिहास दर्शन/दीवारों पर मार्क्स गाँधी टैगोर/हमारी बातचीत हमेशा

राजनीति से संबंधित होगी।’’[10]

भारतीय राजनीति की इस बिगड़ती व्यवस्था के विरूद्ध आम जनता मे विद्रोह की प्रवृति पैदा हो रही है। जनप्रतिधियों के भ्रष्ट एवं मूल्यविहिन रुप को आज का युवा वर्ग सहन नहीं करता है और वह इस भ्रष्ट राजनीति पर आक्रामक रुख अपनाता हुआ दिखाई देता हैं। कवि ऋतुराज ने ऐसी राजनीतिक व्यवस्था पर ‘‘बहुरुपिया’’ के माध्यम से व्यंग्य करते हुए लिखा-

‘‘यह आदमी नहीं है/ इसका मेकअप,इसकी स्त्री वाचक/भाषा
का तेवर आज की राजनैतिकता के खिलाफ/खुला विद्रोह
है/यह बुनकर अब कपड़े नहीं बुनता/क्योंकि कोई भी कपड़ा इस
नंगई को ढाँकने में ओछा है।’’[11]

आज राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकीय कार्यालयों के कार्मिकों के व्यवहार में आरोप-प्रत्यारोप की जो प्रवृति विद्यमान है उसका स्वरुप अरुण कमल की कविताओं में दिखलाई देता है। कवि अरुण कमल ने ‘हाथ’ शीर्षक कविता में सत्ताधारियों के व्यवहार पर व्यंग्य करते हुए कहा हैं-

सरकार का कहना है
कारखाने में गोली चली उसमें
ट्रेड यूनियन का हाथ है
मारे गये मुसहर, उसमें भी
किसान सभाओं का हाथ है
विद्यार्थियों के हंगामों में
छात्र संगठनों का हाथ है
और राज्य में जो भी गड़बड़ी है
सब में कम्युनिस्टों का हाथ है।
हुजूर ने ठीक फरमाया।
इस दुनिया के पीछे भी ईश्वर का हाथ है।[12]

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत खोखले आदर्श अधिक दिखाई दे रहे हैं। जन-हित के नाम पर नये-नये अधिनियम बनाना तथा संविधान में संशोधन करना राजनेताओं के झूठे उपहार प्रतीत हो रहे हैं। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के इस भ्रमजाल पर व्यंग्य करते हुए कवि अरुण कमल ने लिखा है-

‘‘संसद के संयुक्त अधिवेशन ने ध्वनि मत से
संविधान का अन्तिम संशोधन पारित कर दिया
जिसके अनुसार अब से किसी भी सिक्के में
एक ही पहलू होगा
इस प्रकार सहस्त्रों वर्षों से चला आ रहा
अन्याय समाप्त हुआ।’’[13]

राजनीतिज्ञों के अतिरिक्त प्रशासकीय कार्यालयों के हालात भी आज बदतर होते जा रहे हैं। कार्यालयों के अन्तर्गत कर्मचारी सिर्फ अपने अधिकारों के प्रति सचेत दिखाई देता है, कर्तव्यों के प्रति नहीं। कवि कुमार विकल इस भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था को बदलना चाहता है। राजनीतिक व्यवस्था के इस जंगलीपन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए कवि सामान्य जन से अपील करता है। वह एक नयी व्यवस्था को स्थापित करने का पक्षधर है। उन्होंने लिखा है-

‘‘राजतंत्र की वनतन्त्री व्यवस्था में/मैं अकेला और
असक्षम हूँ/मेरे स्नायुतन्त्र पर भय और आतंक की
कँटीली/झाड़ियाँ
उग आयी हैं/जिन्हें काटने के लिये/ठीक हाथों और ठीक
शब्दों की तलाश में/ मैं होरी किसान और मोचीराम के
पास जाऊँगा/ मैं अपने मुहल्ले के पास जाऊँगा।’’[14]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कवियों की राजनीति के प्रति यह प्रतिबद्धता राजनैतिक चेतना जागृत कर राजनैतिक संस्कृति को विकास के नये आयाम पर स्थापित करती है। इनकी कविताओं में व्यक्त राजनीतिक विचार, सोच व चिन्तन राजनीतिक व्यवस्थावादियों के व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष में सकारात्मक बदलाव लाने की चेष्टा है। चूंकि राजनीतिज्ञों एवं व्यवस्थावादियों की पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व से ही राजनैतिक संस्कृति की बिगड़ती दशा को सुधारा जा सकता है इसलिए स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कवियों ने राजनीतिज्ञों के व्यावहारिक पहलुओं की सच्चाईयों को उद्घाटित कर राजनैतिक संस्कृति को संरक्षित एवं विकसित करने में सराहनीय भूमिका निभायी है। राजनीति से जुड़े विविध संदर्भ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को नई दिशा प्रदान करता है। कवियों का यह राजनीतिक चिन्तन परिवर्तन की ललक पैदा करता है। देश के आम नागरिकों में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने में इन हिन्दी कवियों का योगदान सराहनीय है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *साहित्यिक निबंध-डॉ. रेणु वर्मा-राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी-प्रथम संस्करण, 2006- पृ.सं. 259*
2. *साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना-नरेन्द्र सिंह-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण 1990-पृ.सं.-235-236*
3. *भूरी-भूरी खाक धूल-गजानन माधव मुक्तिबोध-राजकमल प्रकाशन दिल्ली-प्रथम संस्करण 1980-पृ.सं 98*
4. *नई कविता कथ्य एवं विमर्श-डॉ. अरुण कुमार-चित्रलेखा प्रकाषन इलाहाबाद-प्रथम संस्करण 1988 -पृ सं 144*
5. *साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना-नरेन्द्र सिंह-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण 1990-पृ.सं.-194*
6. *नयी कविता में प्रगतिशील चेतना-डॉ. धर्मचन्द्र विद्यालंकार-वीर साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-पृ.सं.-72*
7. *समकालीन कविता और लीलाधर जगूड़ी-डॉ. ब्रजमोहन शर्मा-नालन्दा प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण 1993-पृं.सं.-67*
8. *समकालीन कविता और लीलाधर जगूड़ी-डॉ. ब्रजमोहन शर्मा-नालन्दा प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण 1993-पृं.सं.-65*
9. *साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना-नरेन्द्र सिंह-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण 1990-पृ.सं.-238*
10. *साठोत्तरी हिन्दी कविता-डॉ. रतन कूमार पाण्डेय-अनिल प्रकाशन इलाहाबाद-प्रथम संस्करण 994-पृ.सं. 86*

11 साठोत्तरी हिन्दी कविता-डॉ. रतन कूमार पाण्डेय-अनिल प्रकाशन इलाहाबाद-प्रथम संस्करण 1994-पृ.सं. 60

12. *साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना-नरेन्द्र सिंह-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण 1990-पृ.सं.-226*
13. *www.kavitakosh.@kk@का अंतिम संशोधन/अरुण कमल*

14 साठोत्तरी हिन्दी कविता-डॉ. रतन कूमार पाण्डेय-अनिल प्रकाशन इलाहाबाद-प्रथम संस्करण 1994-पृ.सं. 38

सामाजिक न्याय की अवधारणा का विकास तथा भारतीय संविधान

shodhshree@gmail.com

विश्वनाथ प्रताप सिंह
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्रजातंत्र में न्याय को प्रशासन का आधार स्तम्भ माना जाता है। न्याय पर यदि समग्रवादी दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो इसका तात्पर्य है कि तत्व वास्तव में कानून अधिकारों, स्वतंत्रता तथा समानता, बन्धुत्व तथा सहयोग के बीच समन्वय स्थापित करता है वह न्याय है। बार्कर का मत है ''न्याय राजनीतिक मूल्यों का सामन्जस्यकर्ता तथा संश्लेषक है। यह एक समायोजित तथा एकीकृत रुप से उनका समुच्चय है''। राजनीतिक चिंतन की दृष्टि से न्याय का महत्व सर्वविदित है। यही कारण है कि समस्त प्रकार की सरकारों में न्याय का सर्वोच्च स्थान दिया जाने लगा है। ब्रेख्त का मत ''दो स्वयं सिद्ध वाक्यों को आमतौर पर निर्विवाद रुप से स्वीकार कर लिया गया है- प्रथम सरकार की स्वयं की क्रियाएं न्यायपूर्ण होनी चाहिए तथा द्वितीय सरकारी संस्थाओं तथा न्यायलयों को न्याय व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए''। न्याय शब्द के पूर्व में चाहे जो अर्थ रहे हों किन्तु वर्तमान में इस शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया जाता है। इसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय अर्थात् न्याय को समस्त पहलुओं सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान संदर्भ में सामाजिक न्याय की अवधारण इस मान्यता पर आधारित है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति समान हैं तथा उनमें धर्म, प्रजाति, जाति, रंग अथवा लिगं आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि समाज में कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग नहीं होना चाहिए। न्याय मूर्ति गजेन्द्र गड़कर का मत हैं ''सामाजिक न्याय का तात्पर्य है सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक प्रकार की असमानता की समाप्ति तथा प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कार्यो में भाग लेने के समान अवसर प्रदान करना।''

समाजिक न्याय की अवधारणा की भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में उपयोगिता सर्वाधिक है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार वर्ष-व्यवस्था रहा है। यद्यपि समस्त प्राचीन एवं मध्यकालीन समाजों की रचना ऊँच-नीच तथा भेदभाव पर आधारित थी किन्तु भारतीय समाज में भेदभाव को स्वरुप जन्मजात से होने के कारण अधिक कठोर था। शिक्षा तथा व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता समाज के बहुत सीमित लोगों को ही थी। समाज जातीय आधार पर असमान श्रेणीयों में विभक्त थे। जातिगत असमानता के कारण समाज में असमानता, जन्मगत, श्रेणीबद्ध तथा अपरिवर्तनीय थी। शास्त्रीय विधान के अनुसार कुछ जातियों को तो विशेषाधिकार प्राप्त थे जबकि अधिकांश जातियाँ निर्योग्यताओं से पीड़ित थीं। ऐसे में सामाजिक न्याय की स्थापना का मार्ग बहुत सुगम नहीं था। तथापि वर्तमान में वर्ण व्यवस्था को मान्यता प्रदान नहीं की जाती तथा कठोरतापूर्वक वर्ण-व्यवस्था को लागू करना सम्भव नहीं हैं। वर्ण-व्यवस्था जिसे कभी न्यायसंगत माना जाता था उसे समाप्त किए जाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। विशेष रुप से दलितोद्धार प्रयासों के परिणाम स्वरुप सामाजिक न्याय की अवधारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है जिसका आशय अब समस्त प्रकार की असमानताओं की समाप्ति तथा प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक कार्यो में भाग लेने के समान अवसर प्रदान करता है।

सामान्यत: यह माना जाता हैं कि न्याय का तात्पर्य न्यायिक संस्थाओं के माध्यम से विवादों का निपटारा करता हैं। इस दृष्टि से न्याय के तीन व्यापक आयाम हैं। इस दृष्टि से न्याय शब्द का स्वरुप निश्चियवादी हो जाता है तथा तथा इसलिए राज्य के कानून और न्यायालयों का न्याय दोनों निकट सम्बन्धों के विषय हो जाते है। इस दृष्टि से न्याय के तीन व्यापक आयाम हैं – सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक। सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में लोकतंत्र के अन्तर्वेक्षण से न्याय के अर्थ का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि वर्तमान में इसके अन्तर्गत मानव जीवन के समस्त पहलू आ जाते है। वर्तमान राज्यों में यह एक नवीन जागरुकता आई हैं कि व्यक्ति के अधिकारों को उसके समाज के व्यापक हितों में युक्ति-युक्त रुप से सीमित किया जाना चाहिए ताकि सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। दूसरे अर्थो में यह व्यापक रुप से स्वीकार किया जाने लगा है कि समाज का कल्याण व्यक्ति के अधिकारों तथा समुदायों के बीच समन्वय और समाधान पर निर्भर करता है। इतना ही नहीं यदि दोनों में विरोध की स्थिति हो तो समुदाय के हित को व्यक्ति के अधिकारों के स्थान पर अधिक मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं था कि सामाजिक न्याय व्यक्ति के कुछ अधिकारों को सामान हित कस बलिवेदी पर न्यौछावर करने की कल्पना करता हैं। तथापि व्यापक दृष्टि से विचार करने पर सामाजिक न्याय का उद्देश्य न केवल व्यक्ति और समाज के हितों में उपयुक्त सामन्जस्य स्थापित करना हैं अथवा इनमें विरोध की स्थिति में समाज के हित को सर्वोपरि मान्यता प्रदान की जानी चाहिए बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन के महान प्रयास का एक आवश्यक अंग हैं जिसके लिए अधिकतम व्यक्तियों के हितों के लिए किसी वस्तु की कुर्बानी देनी पड़ती हैं। स्पष्ट हैं कि सामाजिक न्याय की संकल्पना अत्यधिक व्यापक शब्द हैं जिसके क्षेत्र के अन्तर्गत 'सामान्य हित' के मानक से सम्बन्धित सम्पूर्ण विचार समाहित हैं जो अल्प-संख्यकों के हितों की रक्षा से लेकर गरीबों तथा निरक्षता के उन्मूलन तक कुछ भी हो सकता है।

भारतीय समाज में न्याय की अनुभूति लोगों को कदाचित उस समय हुई जब उन्हें समाज का ज्ञान हुआ किन्तु समय एवं समाज के रुप में परिवर्ततन के साथ न्याय की धारणा बदलती रही है। प्राचीन काल के विचारकों ने केवल न्याय के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किए जिसे आज सामाजिक न्याय कहा जाता हैं। वह उन विचारकों की वैचारिक परिधि में नहीं था। सभ्यता के विकास के साथ समाज की आधारभूत मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ जिससे सामाजिक न्याय के स्वरुप में भी निखार आया। प्रारम्भ में समाज की व्यवस्था ईश्वरीय नियमों द्वारा संचालित होती थी। न्यायिक नियमों की रचना ईश्वर, पैगम्बर अथवा ईश्वरीय शक्ति से विभुषित व्यक्तियों द्वारा होती थी। आम आदमी केवल ऑख मूंद कर उन्हें शिरोधार्य करता था। समाज में औचित्यपूर्ण सम्बन्धों की खोज तथा न्यायपूर्ण व्यवहार की मांग में निरंतर वृद्धि के परिणाम स्वरुप सामाजिक न्याय के सम्बन्ध में ज्ञान का विस्तार हुआ तथा वर्तमान में सामाजिक न्याय की अवधारणा अत्यधिक व्यापक हैं।

प्रारम्भ में न्यायिक विषय पुरोहित वर्ग तक ही सीमित था। कालान्तर में इस क्षेत्र में विस्तार हुआ क्योंकि अदृश्य ईश्वर के नाम पर समाज में लोगों के व्यवहारों को अधिक समय तक नियंत्रित कर पाना असम्भव था। ईश्वर के प्रतिनिधि के रुप में राजा लौकिक जीवन में न्याय एवं शक्ति का प्रतिरुप बना जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज में न्यायिक अधिकार अर्थात् न्याय सम्बन्धी नियमों की रचना, उनकी व्याख्या तथा उन्हें लागू करने का अधिकार केवल पुरोहित वर्ग तक सीमित रहीं रहा। शनै: शनै: इसमें सामंत वर्ग की भागीदारी में वृद्धि हुई। यूनानी राजनीतिक चिंतन तथा भारतीय राजनीतिक चिंतन में कतिपय साम्यताएें हैं। प्लेटो ने सम्पूर्ण समाज को तीन वर्गो में विभाजित किया था – शासक वर्ग, सैनिक वर्ग तथा उत्पादक वर्ग। प्रत्येक वर्ग अपने – अपने कार्यो को सम्पन्न करे तथा दूसरों के कार्यो में हस्तक्षेप न करे यह न्याय हैं। हिन्दू राजदर्शन तथा सामाजिक जीवन में चार वर्षो की व्यवस्था की गई हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, शुद्र तथा वैश्य। परम्परागत समाज पुरोहित, सामंत, कृषक, व्यापारी तथा श्रमिक वर्गो में विभाजित था। इन समूहों के कर्त्तव्य पूर्व निर्दिष्ट थे। व्यक्ति के न्याय का अर्थ अपने समूह जिसका वह सदस्य है, के लिए निर्धारित कर्त्तव्य का निर्वाह करना था जिससे कि इस चतुवर्णीय व्यवस्था, जिसे उस समय आदर्श एवं न्यायपूर्ण समझा जाता था को बनाए रखना सम्भव हो सके। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय समाज में न्याय की अवधारणा व्यक्ति के औचित्य पर जोर देती थी। व्यक्ति का औचित्य सम्पूर्ण व्यवस्था को बनाए रखने में तथा उसके द्वारा वर्गीय दायित्वों के निर्वाह से सम्बन्धित था।

आधुनिक समाज में सामाजिक न्याय की अवधारण औचित्यपूर्ण समाज की कल्पना पर आधारित हैं। यह वर्गीय कर्त्तव्यों के स्थान पर नागरिक अधिकारों को अधिक महत्व देती हैं तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता एवं समानता की प्रत्याभूति तो प्रदान करती ही हैं साथ ही सदियों से शोषित तथा दलित वर्ग के उत्थान के लिए उन्हें विशेष सुविधाएें भी प्रदान करती हैं। वर्तमान में सामाजिक न्याय शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थो में किया जाता है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ समाज की आधारभूत मान्यताओं में परिवर्तन आया जिससे सामाजिक न्याय का स्वरुप निरन्तर निखरता गया। सामाजिक न्याय की अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है तथा उनमें धर्म, प्रजाति, जाति, रंग अथवा लिंग आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता। इसका तात्पर्य है कि समाज में कोई विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग नहीं होना चाहिए। न्यायमूर्ति गजेन्द्र गड़कर का मत हैं ''सामाजिक न्याय का तात्पर्य हैं कि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक

प्रकार की असमानता की समाप्ति तथा प्रत्येक नागरिक को सामाजिक तथा आर्थिक कार्यों में भाग लेने को समान अवसर प्रदान करना।'' सामाजिक न्याय की अवधारणा को परिभाषित करना सरल कार्य नहीं हैं। न्यायमूर्ति भमवती का कथन हैं ''सामाजिक न्याय का विचार अत्यधिक भ्रमपूर्व तथा बहुअर्थी हैं तथा जिस समय जिस रुप में उसकी आवश्यकता होती हैं उसी रूप में इसका प्रयोग किया जाता हैं, परन्तु इसका आधार अत्यधिक सुदृढ़ हैं।'' न्यायमूर्ति छावला का निष्कर्ष हैं कि कानून तथा परम्पराओं की व्याख्या करते समय न्यायधीशों को सामाजिक न्याय के सम्बन्ध में केवल अपने विचारों को लागू करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

सामाजिक न्याय की अवधारणा का भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में विशेष महत्त्व हैं। शास्त्रीय विधान के अन्तर्गत उच्च वर्ग के लोगों को अनेक विशेषाधिकार तथा सुविधाएं प्राप्ता थीं जब महिलाएँ तथा पिछड़े जातियों के लोग अनेक निर्योग्यताओं से पीड़ित थे। सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों का स्थान बहुत नीचे था उसके लिए षिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। धार्मिक अनुष्ठानों में उन्हें भाग लेने का अधिकार नहीं था। यहाँ तक कहा जाता था कि यदि कही यज्ञ हो रहा हो तथा मंत्रोच्चार शूद्र के कान पर पड़ जाए तो यज्ञ अपवित्र हो जाता हैं, ऐसे शूद्र के कान में गरम सीसा डाल दिया जाता था ताकि उसकी श्रवण शक्ति ही समाप्त हो जाए। कमजोर एवं पिछड़े वर्गों के विकास के मार्ग में अनेक बाधाएं थी। कुछ वर्गों की प्रगति में शास्त्रीय निर्योग्यताएं बाधक थीं जबकि कुछेक पिछड़ेपन के लिए उनकी भौगोलिक एवं सामाजिक पृथकता उत्तरदायी थी।

अस्पृश्यता सबसे बड़ी नियोग्यता थी इसके दायरे में आने वाले लागे जिन्हें अस्पृश्य कहा जाता था समाज में सर्वाधिक पीड़ित व्यक्ति थे। सामाजिक विखण्डन की इस प्रक्रिया में विश्वामित्र, महावीर तथा बुद्ध ने अस्पृश्यता का प्रबल विरोध किया। बुद्ध तथा उसके अनुयायियों को इस कार्य में सफलता भी प्राप्त हुई परन्तु दुर्भाग्यवश यह सफलता स्थायी नहीं रह सकी। कालान्तर में ऐसी सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ निर्मित हुई जिनसे रुढ़िवादी तत्वों की विजय हुई। बौद्ध धर्म का भारत में लोप हो गया जिसके साथ ही समानता के नाम पर जाति के विरुद्ध लड़ा जाने वाले वाला संघर्ष भी समाप्त हो गया।

मानव स्वतंत्रता सम्बन्धी घोषणा –पत्र जिसमें यह घोषणा की गई कि सभी मनुष्य समान पैदा हुए हैं तथा जीवन, स्वतंत्रता तथा प्रसन्नता की प्राप्ति मनुष्य के अभिन्न अधिकार है पर हस्ताक्षर करने वालों ने दास प्रथा के उन्मूलन पर ध्यान नहीं दिया। मेग्नाकार्टा तथा ''बिल आफ राइट'' बनाने वालों ने भी दास प्रथा की बुराई की ओर ध्यान नहीं दिया। उनके लिए स्वतंत्रता से आशय केवल सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार की प्रत्याभूति से अधिक कुछ नहीं था। औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरुप समाज में एक नए वर्ग औद्योगिक वर्ग का जन्म हुआ। औद्योगिक प्रगति के साथ इस वर्ग के आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव में तीव्रता से वृद्धि हुई, किन्तु राजनीतिक सत्ता कुलीन वर्ग जिसका भूमि पर स्वामित्व था, के हाथों में बनी रही। सामाजिक क्रान्ति के परिणाम स्वरुप सांमतों का वंशानुगत अधिकार समाप्त हो गया। राजनीतिक सत्ता उनके हाथ से औद्योगिक एवं व्यापारिक वर्ग के हाथों में स्थानान्तरित हो गई। यह सामंतवाद के अवसान तथा पूँजीवाद के विकास का दौर था।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय ही सामाजिक न्याय की विचारधरा प्रस्फुटित होने लगी थी। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति तक स्वतंत्रता आन्दोलन में राष्ट्रीय तथा सामाजिक दोनों ही विचारधाराएँ समानान्तर रुप से प्रवाहित हो रही थीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक तथा राष्ट्रीय क्रान्ति को अभी भी निरन्तर रखने की आवश्यकता थीं। स्वतंत्रता संग्राम के कर्णधार विशेश रुप से विवेकानंद, तिलक, अम्बेडकर, महात्मा गाँधी, सुभाष बोस, पंडित नेहरु, आदि केवल राजनीतिज्ञ नहीं थें वे भारतीय समाज में सामाजिक – आर्थिक न्याय की स्थापना के प्रबल समर्थक थे। महात्मा गाँधी एवं पंडित नेहरु के प्रवेश के पश्चात् तो स्वतंत्रता संग्राम, साम्राज्यवाद विरोधी समाजवाद का पक्षधर, सामन्तवाद विरोधी तथा हरिजनों का पक्षधर, महिलाओं एवं श्रमिकों का प्रबल पक्षधर हो गया। अतएव इससे अपना प्रमुख लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना निर्धारित किया जिससे कि अधिकांश लोगों का कल्याण सम्भव हो सके। स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं के नेताओं ने यह स्वीकार किया कि हमारे मौलिक अधिकार तभी अर्थपूर्ण हो सकते हैं, जबकि सामाजिक – आर्थिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना की जाए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कराची तथा लाहौर अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में यही विचार मुख्य रुप से प्रस्फुटित हुआ। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने सामाजिक तथा आर्थिक न्याय पर आधारित जिस समाज की कल्पना की थी उसी की थी वे भारतीय संविधान के अन्तर्गत साकार करना चाहते थे। उनकी यह मान्यता थी कि कानून एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सामाजिक आर्थिक क्रान्ति सम्भव हैं। संविधान जिसे कि मौलिक संविधि कहा जाता है वास्तव में ऐसा साधन है जिसके द्वारा सामाजिक – आर्थिक विकास को गति प्रदान की जा सकती है। समाजिक – आर्थिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना के लक्ष्य को उस प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया गया जिसके शिल्पी पंडित नेहरु थे। इस प्रस्ताव में संविधान के अनेक आधारभूत सिद्धान्तों के साथ ही सामाजिक – आर्थिक न्याय के विचार को प्रस्तुत किया। यह प्रस्ताव इस प्रकार था– ''संविधान सभा एक ऐसे संविधान के निर्माण की घोषणा करती हैं जिससे भविष्य में ऐसी शासन व्यवस्था का संचालन होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, स्तर की समानता, अवसर की समानता तथा कानून की समानता प्राप्त होगह जिसमें अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गो तथा आदिवासी क्षेत्रों, दलित तथा पिछड़े वर्गों के लिए पर्याप्त रुप से आरक्षण की व्यवस्था की जाऐगी।

उपर्युक्त प्रस्ताव एक महत्वपूर्ण दस्तावेज था जिसमें सामाजिक - आर्थिक न्याय का तो विचार प्रस्तुत किया गया वहीं संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार एवं नीति निर्देशक सिद्धन्तों का आधार सिद्ध हुआ। तथापि सामाजिक - आर्थिक न्याय के विचार को भारतीय संविधान के अन्तर्गत संविधान निर्माताओं द्वारा सम्मिलित करने के वास्तविक उद्देश्य को समझने के लिए संविधान सभा में प्रस्तुत किए गए विचारों का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता हैं। सामाजिक - आर्थिक न्याय के प्रस्ताव पर विचार करते हुए दो भिन्न प्रकार के विचार प्रस्तुत किए गए। प्रथम विचार के अनुसार सामाजिक - आर्थिक न्याय शब्द की व्याख्या स्पष्ट रुप से इस प्रकार की जानी चाहिए कि समाजवाद के सिद्धान्त को स्पष्ट रुप से स्वीकार किया जाए। इस विचारधारा का समर्थन प्रारुप समीति के अध्यक्ष डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने किया। उन्होंने कहा कि यदि सामाजिक - आर्थिक न्याय के प्रस्ताव को वास्तविक रुप से लागू किया जाना हैं तथा इस सम्बन्ध में हम गम्भीर हैं कि सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना को कार्यरुप में परिणित किया जाए तो हमें ऐसी कुछ व्यवस्थाऍं करने होगीं जिससे यह स्पष्ट हो कि हमारा लक्ष्य देश में सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना हैं। इसके लिए उद्योगों तथा भूमि का राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक होगा। मैं नहीं समझता कि भविष्य में किसी भी सरकार के लिए तो सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना में विश्वास रखती हैं ऐसी करने में सफल हो सकेगी जब तक कि उसकी अर्थव्यवस्था समाजवादी न हों।

दूसरे पक्ष का मत था कि संविधान सभा के सदस्यों को कोई ऐसा जनाधार प्राप्त नहीं है कि वह संविधान में किसी आर्थिक नीति का समावेश करने के लिए स्वतंत्र हो अतएव उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के विचार का विरोध किया। कुछ सदस्यों का यह विचार था कि समाजवादी सिद्धान्त को जोड़ने से संविधान अत्यधिक कठोर हो जाएगा तथा यह भी हो सकता हैं कि हमारी प्रजातांत्रिक संस्थाओं द्वारा अपनी नीतियों को क्रियान्वित करने में कठिनाई उत्पन्न हो। अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर ने इस सम्बन्ध में कहा कि संविधान में स्पश्ट रुप से किसी आर्थिक नीति का उल्लेख करने से यह कठोर हो जाएगा। संविधान विकासशील समाज की आवश्यकताओं को पूरा कर सके तथा विकास कार्यो को सम्पन्न कर सके इसके लिए शासकों को अपनी इच्छानुसार आर्थिक नीतियों का निर्माण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

जवाहरलाल नेहरु ने इस प्रस्ताव पर विचार करते हुए कहा ''यदि मेरे दृष्टिकोण से आप सहमत हो तो हमारी इच्छा एक समाजवादी राज्य की स्थापना है किन्तु संविधान में किसी भी मामले के सम्बन्ध में विवादास्पद स्थितियों का उल्लेख करना उचित नहीं हैं'' यही कारण है कि हमनें सैद्धन्तिक रुप से समाजवाद का उल्लेख नहीं किया है लेकिन हमारी समस्त व्यवस्थाऍं उसी के अनुरुप हैं। सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में विचार करते हुए श्री नेहरु ने कहा -''हमारा सम्पूर्ण संविधान बेकार तथा निकम्मा हो जाऐगा . . . . यदि भारत अद्योगति को प्राप्त करता है तो हमारी भी दुर्गति होगी, यदि भारत का उत्थान होता हैं तो हमारा भी उत्थान होगा, यदि भारत जीवित रहेगा तथा हम जीवित रह सकेंगें। पंडित नेहरु के इस प्रभावकारी विचार का परिणाम यह हुआ कि संविधान सभा में सामाजिक - आर्थिक न्याय के विचार को बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार कर लिया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने भविष्य के लिए सामाजिक - आर्थिक न्याय की प्राप्ति को सरकार के लिए प्रमुख लक्ष्य के रुप में निर्धारित किया तथापि उन्होंने इसे प्राप्त करने के साधनों का उल्लेख संविधान में जानबूझकर नहीं किया। अतएव यह प्रत्येक सरकार का धर्म हैं कि वह प्रत्येक देशवासी के लिए सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना का प्रयास करे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह उस सरकार की इच्छा पर छोड़ दिया गया जिसे जनसमर्थन प्राप्त हुआ हैं तथा जो जनादेश के कारण सत्तारुढ़ हुई हैं। किसी भी सरकार को यह अधिकार नहीं हैं कि वह किसी भी स्थिति में संविधान द्वारा निर्धारित जनादेश प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना के ध्येय को दृष्टि ओझल करें।

डॉ. राधाकृष्णन् ने सामाजिक - आर्थिक न्याय पर विचार करते हुए कहा कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें बहुत तेजी से प्रयास करने होंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति तथा एक ऐसी नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक - आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके इसके लिए संविधान के चतुर्थ अध्याय में नीति निर्देशक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया हैं।

लोक-कल्याणकारी राज्य में यदा-कदा व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सामाजिक-आर्थिक योजना के निर्माण में अर्न्तद्वन्द्व हो सकता हैं लेकिन ऐसी स्थिति में यह दृष्टिगत रखना चाहिए कि राज्य सामाजिक -आर्थिक न्याय की स्थापना के लिए सामान्य नागरिकों को दृष्टिगत रखकर अपने कार्यो का सम्पादन करता हैं। सामाजिक-विधिशास्त्र की यह मान्यता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का यथासम्भव हनन न हो तथा सामाजिक-आर्थिक न्याय को प्राप्त किया जा सकें।

सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना के लिए संवैधानिक प्रावधान

स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने जिस सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना का स्वप्न देखा था उसे साकार करने का प्रयास भारतीय संविधान के अन्तर्गत किया गया। डॉ. अम्बेडकर जिन्हें कि भारतीय संविधान का प्रमुख शिल्पी माना जाता हैं की दृष्टि आस्था सामाजिक - आर्थिक न्याय में थी उनके अनुसार स्वतंत्रता, समानता, तथा बन्धुत्व सामाजिक न्याय के पर्यायवाची हैं। भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक सिद्धान्तों की व्यवस्था संविधान में करके सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना का प्रयास किया। संविधान सभा का सर्वप्रथम कार्य ऐसे लक्ष्यों एवं निदेशक सिद्धान्तों

की व्यवस्था करना था जो कि भारतीय संविधान का आधार होगे। 13 दिसम्बर 1946 को पंडित जवाहरलाल नेहरु ने संविधान सभा में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया यही प्रस्ताव संविधान की प्रस्तावना का मुख्य आधार बना। भारत के सविधान की प्रस्तावना में कहा गया हैं- ''हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उनके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करने के लिए तथा सबमें व्यक्तिक्त की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर संविधान को अधिकृत, अधिनियम तथा आत्मार्पित करते हैं।'' इस प्रकार भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना के उस लक्ष्य को निर्धारित किया गया जिससे प्रेरणा प्राप्त कर संविधान का निर्माण किया गया। डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार ''प्रस्तावना में जिन सिद्धान्तों, तथ्यों तथा आदर्शो का निरुपण हुआ हैं वे समूचे संविधान के अन्तर्व्याप्त हैं तथा संविधान की विभिन्न धाराओं का उद्गम प्रस्तावना में विद्यमान है।'' पं. जवाहरलाल नेहरु द्वारा उद्देश्य प्रस्ताव को वर्तमान संविधान की प्रस्तावना की आधार शिला कहा जा सकता हैं। वास्तव में यह उद्देश्य प्रस्ताव भारतीय स्वाधीनता का घोषणा-पत्र था।

इस प्रकार भारतीय संविधान की प्रस्तावना उस दर्पण के सदृश्य है जिसमें भारतीय संविधान के निर्माताओं के समस्त विचारों की छवि प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा जिस सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना का संकल्प लिया गया था उसे क्रियान्वित करने के साधन की व्यवस्था भारतीय संविधान के 42वें संशोधन द्वारा 1976 में की गई। इस संविधान संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द को जोड़ दिया गया। यद्यपि संविधान संशोधन द्वारा कुछ भी नया नहीं जोड़ा गया अपितु 'सामाजिक क्रान्ति' का जो विचार संविधान में निहीत था उसे शीघ्रतापूर्वक प्राप्त करने के लिए समाजवाद की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया। न्यायमूर्ति चिन्नेप्पा रेड्डी का विचार है ''यद्यपि समाजवाद शब्द को भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संविधान संशोधन द्वारा बाद में जोड़ा गया, लेकिन समाजवाद की स्थापना करना संविधान निर्माताओं का प्राथमिक लक्ष्य था जैसा कि राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की व्यवस्था से स्पष्ट रुप से परिलक्षित होता हैं।'' संविधान संशोधन द्वारा केवल इसी प्राथमिकता को निर्धारित किया गया। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने सम्भवत: जानबूझकर -'समाजवाद' शब्द का प्रयोग नहीं किया था क्योकि वे किसी वाद-विवाद में भी पड़ना उचित नहीं समझते थे क्योकिं संविधान सभा जनप्रतिनिधि सभा नहीं है जिसे कि देश में कोई मौलिक परिवर्तन का अधिकार प्राप्त हो। यह अधिकार केवल जनता द्वारा निर्वाचित संसद को ही हो सकता हैं।

एच.एम.सीरवाई ने समाजवादी शब्दों को प्रस्तावना में जोड़ने पर आपत्ति की है तथा उसे असत्य कहकर उसकी आलोचना की हैं। उनका तर्क हैं कि यह कहना ऐतिहासिक दृष्टि से गलत है कि भारत में सन् 1976 के 42 वें संविधान संशोधन में प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द जोड़े जाने से पूर्व समाजवादी व्यवस्था नहीं थी। संविधान की प्रस्तावना में किया गया संशोधन संवैधानिक रुप से विधि सम्मत है क्योकि यह न केवल संविधान की भावनाओं के अनुकूल हैं अपितु यह संविधान के दर्शन की मान्यता के भी अनुकूल हैं। संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द को जोड़ने का निहितार्थ यह भी है कि न्यायपालिका राष्ट्रीकरण के पक्ष में अधिक से अधिक निर्णय दे सके। संविधान के 45वें संविधान संशोधन विधेयक 1978 द्वारा समाजवादी षब्द की व्याख्या की गई जिसका अर्थ एक ऐसी गणतंत्रात्मक व्यवस्था से था जिसमें सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्ति दिलाना था। परन्तु इस संशोधन प्रस्ताव को राज्य सभा द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। अतएव भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाजवादी शब्द की परिभाषा नहीं की जा सकी।

भारतीय संविधान के चतुर्थ भाग में राज्य के जिन नीति निर्देशक सिद्धान्तों की व्यवस्था की गई हैं उनका उद्देश्य प्रस्तावना में सम्मिलित समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करना हैं। निर्देशक सिद्धान्तों का सारतत्व संविधान के अनु. 38 में दिया गया हैं, इसमें संविधान की प्रस्तावना की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती हैं। ''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करे जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं के अनुप्राणित करें, भरसक कार्यसाधक के रुप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा। भारतीय संविधान का अनु. 38 के प्रावधान आयरलैण्ड के संविधान के अनु. 45(1) का अनुकरण हैं दोनों में भेद केवल इतना है कि आयरलैण्ड के संविधान की प्रस्तावना में न्याय एवं चैरिटी शब्द का प्रयोग किया गया है जबकि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय शब्द का प्रयोग किया गया हैं। आयरलैण्ड के संविधान निर्माताओं ने सामान्य जनता के हित की वृद्धि के लिए इस प्रकार की सामजिक व्यवस्था का निश्चिय किया था जिसमें न्याय जा सके। किन्तु भारतीय संविधान के निर्माताओं ने नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत अनु. 38 में उल्लिखित उद्देश्यों का प्रतिबिम्ब संविधान की प्रस्तावना में परिलक्षित करते हुए सामाजिक - आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया।

संविधान के 42 वे संशोधन विधेयक 1976 द्वारा प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द को जोड़ा गया हैं। इसका तात्पर्य है कि राज्य का कोई राजकीय धर्म नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति को अन्त:करण की स्वतंत्रता होगी तथा प्रत्येक राजकीय धर्म नहीं होगा। माननें, उसका पालन करनें तथा उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई हैं।

इसके पूर्व भी प्रस्तावना में विश्वास, धर्म तथा उपासना की स्वतंत्रता प्रस्तावना द्वारा प्रदान की गई थी। इसके साथ ही भारतीय संविधान के अनु. 25 से 28 तक इस प्रकार की स्वतंत्रता की गारण्टी नागरिकों को प्रदान की गई हैं। संविधान की प्रस्तावना में ''लोकतांत्रिक गणराज्य'' की स्थापना का लक्ष्य स्पष्ट किया गया हैं। प्रजातंत्र एक जीवन पद्धति है जिसके अन्तर्गत मानव गरिमा की स्थापना, समानता तथा 'विधि का शासन' की व्यवस्था होती हैं। प्रस्तावना में ही विचार अभिव्यक्ति तथा विश्वास की स्वतंत्रता आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया हैं। प्रस्तावना के इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संविधान के तृतीय अध्याय में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई हैं। स्तर तथा अवसर की समानता के अधिकारों की व्यवस्था संविधान के तृतीय अध्याय के विभिन्न प्रावधानों द्वारा की गई हैं। वास्तविकता तो यह हैं कि समानता का अधिकार लोकतांत्रिक गणराज्य की मूल भावना एवं विश्वास हैं। अनु. 29 (2) में यह प्रावधान किया गया हैं कि राज्य द्वारा घोषित अथवा राज्य विविध से सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षणिक संस्था में प्रवेश पाने में किसी नागरिक के साथ जाति, लिंग आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरता जाऐगा। इसी प्रकार अनु. 19 के अन्तर्गत वृन्ति स्वातंष्य के अधिकार की अभिस्वीकृति के साथ महिलाओं सहित सभी पिछड़े वर्गो के लोगों को अपनी रुचि के अनुसार आजीविका अपनाने का अवसर प्रदान हो गया। एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना तथा पिछड़े वर्गो के विकास की दिशा में मोलिक अधिकारों के उपर्युक्त प्रावधान किसी क्रान्तिकारी अभियान से कम नहीं हैं।

संविधान के भाग 4 में नीति निर्देशक सिद्धान्तों का उल्लेख हैं जिनके द्वारा राज्य को निर्देशित किया गया हैं कि वह नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक न्याय प्रदान करने के लिए आवश्यक वैधानिक तथा प्रशासकीय पहल करे। यह भाग वास्तव में संजीवनी क्रान्ति का दस्तावेज हैं। नीति निदेशक तत्व भारतीय संविधान की संजीवनी व्यवस्थाएँ हैं। इन सिद्धान्तों में भारतीय संविधान का तथा उसके सामाजिक, आर्थिक न्यायदर्शन का वास्तविक तत्व निहित हैं। ये तत्व भारतीय संविधान कीर प्रतिज्ञाओं तथा आकांक्षाओं को वांणी प्रदान करते हैं। संविधान निदेशक सिद्धान्तों का मार्ग प्रशस्त करता हैं तथा निदेशक सिद्धान्त एवं उनका कार्यान्वयन संविधान को सामाजिक शक्ति से अभिसिंचित करते हैं। निदेशक सिद्धान्तों का उद्देश्य शांतिपूर्ण एवं वैधानिक ढंग से क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त कर कतिपय सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों को तत्काल प्राप्त करना हैं। इस प्रकार सामाजिक क्रान्ति के माध्यम से संविधान सामान्य व्यक्ति की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर समाज की संरचना में परिवर्तन करना चाहता हैं।

भारतीय संविधान के तृतीय भाग मौलिक अधिकारों द्वारा निर्योग्यताओं का उन्मूलन कर दिया गया। इन वर्गो की निर्योग्यताओं का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत था। ये शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक रुप से वंचित थे। पिछड़े वर्गो के अन्तर्गत आने वाली समूह इन निर्योग्यताओं से न्यूनाधिक रुप से पीड़ित थें। संविधान के अनु. 17 के माध्यम से अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया तथा अस्पृश्यता जनित समस्त व्यवहार को कानूनी रुप से दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। अनु. 15 के अन्तर्गत सार्वजनिक स्थलों के उपयोग पर जो प्रतिबंध लगे थे उन्हें समाप्त कर दिया गया। अनु. 25 (2 ब) के माध्यम से अस्पृश्य जातियों के लोगों के लिए सार्वजनिक उपयोग के मंदिरों के द्वार खोल दिए गए। संविधान के अनु. 38 में ऐसी व्यवस्था करने के लिए राज्य को निर्देशित किया गया जिससे कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की स्थापना हो तथा आय की असमानताओं को कम किया जा सके। अनु. 39 में राज्य से जहाँ यह अपेक्षा कि वह नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा वहीं इस बात पर भी जोर दिया गया कि राज्य उत्पादन के साधनों का सर्वधारण के लिए अहितकारी सकेन्द्रण को रोकने तथा सामूहिक हित के सर्वोत्तम उपयोग की दृष्टि से भौतिक संसाधनों के स्वामित्व व नियंत्रण को नियमित करने का प्रयाय भी करेगा। अनु. 41ए, 42ए, 43 एवं 45 राज्य के कल्याणकारी कार्यो से संबंधित हैं। अनु. 41 के अन्तर्गत राज्य को निर्देशित किया गया हैं कि वह अपनी आर्थिक क्षमता व सीमा के अनुरुप लोगों को बेराजगारी, बीमारी, असमर्थता व अन्य प्रकार की अशक्तता की अवस्था में काम-काज तथा षिक्षा एवं सामाजिक सहायता का अधिकार उपलब्ध कराने का प्रावधान करे। अनु. 42 कार्य की उपयुक्त मानवोचित दशा तथा मातृत्व लाभ सुनिष्चित करने से सम्बन्धित है। अनु. 43 में निर्देशित किया गया है कि राज्य उपयुक्त विधान, आर्थिक संगठन या अन्य किन्हीं माध्यमों से सभी श्रमिकों चाहे वे कृषि श्रमिक, औद्योगिक या अन्य किसी प्रकार के श्रमिक हो के लिये कार्य, निर्वाह योग्य मजदूरी तथा कार्य के लिए समुचित दशाये उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा जिससे कि उनके लिए उत्तम जीवन स्तर, अवकाश के पूर्ण उपयोग तथा सामाजिक व सांस्कृतिक अवसर सुनिश्चित हो सकें। अनु. 45 बालकों के लिए नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रबंध किए जाने से संबंधित हैं।

कमजोर वर्गों को सामाजिक न्याय

समाज के दुर्बल वर्गों के हितों की अभिवृद्धि के संदर्भ में संविधान का अनु. 46 अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। यह अनुच्छेद राज्य को निर्देषित करता हैं कि यह समाज के कमजोर वर्गो विशेष रुप से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा व आर्थिक हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय व सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा। यद्यपि अनु. 15 में नागरिकों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव का निषेध किया गया, तथापि स्त्रियों एवं बालकों के हितों के संवर्धन को दृष्टिगत रखते हुए 15(3) के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि इस अनुच्छेद की कोई बात

राज्य को स्त्रियों एवं बालकों के लिये कोई विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी। आगे चलकर 1951 में संविधान में पहली बार संशोधन किया गया जिसके अनुसार इस अनुच्छेद में एक धारा जोड़ी गई जिसमें अर्थात् अनु. 15(4) में यह कहा गया कि इस अनुच्छेद या अनु. 29(2) की कोई बात राज्य को सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गो की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी। अनु. 16(1) में लोक नियोजन में अवसर की समानता का प्रावधान किया गया हैं और (2) में इस बाबत किसी प्रकार का भेद का निषेध किया गया हैं तथापि नियोजन में कमजोर वर्गो के हितों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से इस अनु. की उपधारा (4) मे इस बात का प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिसका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य की सेवाओं में पर्याप्त नहीं हैं, नियुक्तियों या पदो के आरक्षण के लिए उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी।

विधान मण्डलों में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियो का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अनु. 330 एवं 332 के अन्तर्गत इन जातियों के क्रमश: लोक सभा एवं विधानसभाओं में स्थान आरक्षित किये गए। इसी प्रकार विभिन्न स्तरों पर पंचायतों में महिलाओं सहित इन जातियों प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए राज्य पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत आवश्यक प्रवाधान किये गये हैं। अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की समस्याओं एवं उन्हें संविधान द्वारा प्रदत रक्षोपयों से संबधित विषयों का अध्ययन कर उनकी उन्नति हेतु आवश्यक सुझाव प्रदान करने की दृष्टि से राष्ट्रपति द्वारा एक आयोग कि न्युक्ति का प्रवाधान किया गया हैं। संप्रति इस आयोग को वैद्यानिक दर्जा भी प्रदान कर दिया गया हैं। इसी प्रकार महिलाओं एवं अल्प संख्यक को के हितो की रक्षा से सम्बन्धित कार्यो पर नजर रखने की दृष्टि से राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर महिला, अल्पसंख्यक एवं मानवधिकार आयोगा का भी गठन किया गया हैं। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के अतिरिक्त सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से अन्य पिछड़े वर्गो की समस्याओं का अध्ययन करने एवं उनकी दशा में सुधार लाने की दृष्टि से आवश्यक उपाय सुझाने के लिए संविधान के अनु. 340 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने पिछड़ा वर्ग आयोग काका कालेलकर की अध्यक्षता में 1955 बना। इससे लगभग दो दशक पश्चात् बी.पी.मण्डल की अध्यक्षता में द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग (1978-80) का गठन हुआ। इन आयोगों की अनुशंसाओं को दृष्टिगत रखते हुए केन्द्र तथा राज्य की नौकरियों में पिछड़े वर्गो के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया।

विशेष संवैधानिक प्रावधान

इन वर्गो को सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दृष्टि से इन्हें क्षतिपूर्ति प्रदान किया जाना जरुरी था जिसके लिए नागरिको के भेदभाव की नीति को अपनाया जाना आवश्यक था। इस नीति के तहत कतिपय विषयों में इन वर्गो को सामान्य वर्गो की तुलना में प्राथमिकता प्रदान की गई। ये विषय मुख्यत: तीन प्रकार के थे- आरक्षण, विशेष संरक्षण तथा लक्षित समूह-परक विशेष विकास कार्यक्रम। संविधान के अनु. 330 एवं अनु. 332 के तहत संसद एवं राज्य विधान मण्डलों में अनुसूचित जातियों एवं जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं। राजनैतिक आरक्षण के अतिरिक्त सम्पूर्ण जनसंख्या में इनके अनुपात को दृष्टिगत रखते हुए सरकारी सेवाओं एवं शैक्षिक संस्थाओं में राष्ट्रीय स्तर पर इन जातियों के लिए क्रमश: पन्द्रह एवं साढ़े सात प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए हैं। पिछड़े वर्गो के लिए पूर्व में राष्ट्रीय स्तर पर किसी प्रकार क आरक्षण का प्रावधान नहीं था। कुछ राज्यों विशेष रुप से दक्षिण भारत के राज्यों में पिछड़े वर्गो के लिए सरकारी सेवाओं तथा शैक्षिक संस्थाओं में आरक्षण का प्रावधान नहीं था जबकि उत्तरी भारत के राज्यों में इन वर्गो के छात्रों में इन वर्गो के छात्रों के लिए उनकी आर्थिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए केवल छात्रवृत्ति प्रदान किए जाने का ही प्रावधान था। केन्द्र सरकार ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए वर्ष 1990 में केन्द्र सेवाओं में पिछड़े वर्गो के लोगों के लिए 27 प्रतिशत स्थान के आरक्षण की घोषणा की। केन्द्र सरकार के निर्णय को देखते हुए उत्तर भारत के राज्यों में की पिछड़े वर्गो के लिए राज्य में उनकी जनसंख्या को ध्यान में रखने हुए स्थान आरक्षित किए गए हैं।

सुरक्षात्मक प्रबन्धन

कमजोर वर्गो को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से संविधान में कई प्रावधान किए गए हैं जिनमें स्त्रियों एवं बालकों से संबंधित अनु. 15(3) एवं अनु. 24 तथा अनुसूचित जातियों, जनजातियों व सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो से संबंधित अनु. 15(4), 16(4) तथा 23 विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। कमज़ोर सामाजिक आर्थिक दशा के कारण इन वर्गो के सौदेबाजी की शक्ति नहीं होती और ये शोषण अन्याय और अत्याचार के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं जिनसे उनकी रक्षा के लिए अनेक वैधानिक एवं प्रशासनिक उपाय किए गए हैं। इन विधानों में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955 नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियाम 1989, नारी संबंधी विधान विशेष रुप से हिन्दू विवाह एवं विवाह विच्छेद अधिनियम 1955, सप्रेशन आफ इम्मारल ट्रेफिक इन वुमेन एण्ड मर्ल्स एक्ट 1956, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961 तथा न्यूनतम वेतन कानून 1948, बंधुआ मजदूर उन्मूलन अधिनियम 1976 एवं बाल श्रम निषेध एवं नियमन कानून 1986 मुख्य हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *अर्नेस्ट बार्कर - प्रिंसीपल ऑफ सोशल एण्ड पोलिटिकल थ्योरा, पृष्ठ 102*
2. *अर्नाल्ड ब्रेख्त - पोलिटिकल थ्योरा, पृष्ठ 136*
3. *सोशियल जस्टिस इन सोशल डायनेमिक्स रिचर्ड ब्राण्ड संस्करण - सोशियल जस्टिस, पृष्ठ 92*
4. *आर.पी. सिंह - सामाजिक न्याय, अवधारणात्मक, विवेचन सामाजिक न्याय एवं विकास 1 (1) 1-16*
5. *गजेन्द्र गडकर - लॉ लिबर्टी एण्ड सोशल जस्टिस*
6. *छागला - प्रकाश काटन मिल्स बनाम स्टेट ऑफ बाम्बे, 1959 एल.आर. 836*
7. *एस.पी. कश्यप - आनेस्ट एफर्ड नीडेड फोर स्पेशल जस्टिस कुरुक्षेत्र 39 (1) 1990 पृष्ठ 37-'41*
8. *ग्रेनविल आस्टिन - इण्डियन कान्स्टीट्यूएशन कार्नर स्टोन ऑफ ए नेशन, पृष्ठ 26*
9. *के.पी. कृष्ण सेट्टी - फण्डामेन्टल राइट्स एण्ड सोशियो - इकानिमिक जस्टिस इन इण्डियन कान्स्टीट्यूएशन, पृष्ठ 13*
10. *संविधान सभा वाद-विवाद, पृष्ठ 90*
11. *भारतीय संविधान अनुच्छेद 38*
12. *बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एवं स्पीचेज खण्ड 3, बाम्बे महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित 1987*
13. *डॉ. सुभाष कश्यप - संविधान की आत्मा, 1971, पृष्ठ 35*
14. *संजीव कोक मेन्यूफेक्चरिंग कम्पनी बनाम भारत कुकिंग कोल लिमिटेड, पृष्ठ 251*
15. *एच.एम. सिरवई - कान्स्टीट्यूएशन ला ऑफ इण्डिया, संस्करण खण्ड 3, 1841*
16. *एक्सेल वीयर बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, ए.आइ.आर. 1979, एस.सी. 25*
17. *भारतीय संविधान, अनुच्छेद 14, 15, 16 एवं 17*

ऊर्जा संरक्षण राज्य की प्रथम आवश्यकता

डॉ. (श्रीमती) वसुधा अग्रवाल
प्राध्यापक, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

धरा रचि त्रिदेव ने, सृष्टि दीनी सजाये।
लिये हाथ में ऊर्जा, मानव दिया पठाये।

जैसा कि उपरोक्त पक्तियों से स्पष्ट है कि इस सृष्टि का निर्माण त्रिदेव अर्थात् भगवान श्री शंकर के हाथों हुआ, परंतु जब उन्होने जब इस सृष्टि की रचना की और इसे प्राकृतिक सुन्दरता दी तब उन्होने सोचा कि इसका आनंद व सुख भोगने के लिये कोई तो हो। तब उन्होने प्रांणी को रचा और उसे प्रांण अर्थात् शक्ति प्रदान कर इस पृथ्वी की ओर भेज दिया। तब से मनुष्य और ऊर्जा का अटूट संबंध बन गया है। ऊर्जा मतलब शक्ति, मनुष्य और ऊर्जा एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। मनुष्य ऊर्जा के अभाव में एक कदम भी नहीं चल सकता है। हर कदम पर ऊर्जा उसकी हमसफर होती है। चाहे वह चल रहा हो, सो रहा हो या कार्यरत हो। जिस प्रकार किसी भी यंत्र को चलाने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार मनुष्य को अपने शारीरिक व मानसिक यंत्र को गतिशील बनाये रखने के लिये ऊर्जा की अत्यंत आवश्यकता होती है। इस पृथ्वी ने मनुष्य को ऊर्जा के कई स्त्रोत प्रदान किये हैं। जैसे कि जल, वायु, खनिज आदि ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। परन्तु आज के इस आधुनिक मनुष्य की लापरवाही के कारण ये स्त्रोत अपनी क्षमता खोते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि इनका संरक्षण या बचाव कैसे किया जाये क्योंकि पृथ्वी पर सभी स्त्रोत सीमित हैं। पर यह जानते हुये भी मनुष्य इसका दुरुपयोग कर रहा है और सारे ब्रह्माण्ड के लिये यह एक चिंता का विषय बना गया है। आज हर देश में ऊर्जा को लेकर अच्छा खासा चिंताजनक माहौल निर्मित हो चुका है। ब्रह्माण्ड को इस चिंता से मुक्त करने का प्रयास मनुष्य को ही करना है।

राज्य और ऊर्जा का संबंध

प्राचीन विद्वानों ने राज्य के निर्माण में भूमि, जनसंख्या, और राज्य की मुख्य भूमिका मानी है परन्तु राज्य की एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण मांग होती है कि वह भी ऊर्जावान राज्य हो क्योंकि ऊर्जा के स्त्रोतों के कारण ही कोई राज्य समृद्ध और खुशहाल बनता है चाहे वह आर्थिक दृष्टि से हो या सामाजिक दृष्टि से। राज्य में रहने वाले लोगों को हर तरह की ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिससे वह अपने राज्य के विकास में चार चाँद लगा सकें। मनुष्य को शरीर चलाने के लिये भोजन की ऊर्जा चाहिये तो वहीं दिमाग चलाने के लिये मानसिक ऊर्जा। किसी भी राज्य या देश के लिये ऊर्जा के स्त्रोत आज उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना कि किसान की फसल और साहूकार का असल और इस बात से हम कभी विमुख नहीं हो सकते। राज्य को सुचारु रुप से चलाने व उसकी सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में प्राकृतिक संसाधन अपनी अहम भूमिका निभाते हैं जैसे जल संसाधन, वन संसाधन, खनिज संसाधन यदि इस गाड़ी का एक भी डिब्बा पटरी से उतर गया तो वह रुक जायेगी। अर्थात् ऊर्जा का अलग स्थानों पर अलग – अलग उपयोग होता है। आज के इस वैभवशाली युग में जहां मनुष्य को सभी ऐशो आराम आसानी से प्राप्त हो जाते हैं, वहीं प्राचीनकाल में इनके लिये निवासियों को मौसम और प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता था। आज हमारा राज्य जिस प्रकार से समस्याओं का मजबूती से मुकाबला कर रहा है वह सभी यहां के वाशिंदों की मेहरबानी है। राज्य में पानी,

बिजली का काल अपना मुंह खोले युवा पीढ़ी के सामने खड़ा है। ऐसे में शायद हमें अपनी लापरवाही का एहसास हो जाये तो हम इस समस्या से मुक्त करा सकते हैं क्योंकि समस्याओं के चलते कोई भी राज्य विकास के शिखर पर नहीं पहुंच सकता। इसके लिये जरुरत है जनचेतना और ऊर्जा शक्ति की।

तालिका - 1

राज्य विद्युत मण्डल के ताप विद्युत गृह

क्र.	ताप विद्युत गृह	विद्युत उत्पादन क्षमता (मेगावाट में)
1.	अमरकंटक - 1, शहडोल	250
2.	अमरकंटक - 2, शहडोल	340
3.	सतपुड़ा - 1, पाथाखेड़ा, बैतूल	387
4.	सतपुड़ा - 2, पाथाखेड़ा, बैतूल	410
5.	सतपुड़ा - 3, पाथाखेड़ा, बैतूल	420
6.	सतपुड़ा - 1, पाथाखेड़ा, बैतूल	420
7.	संजय गांधी, वीरसिंहपुर, पाली, उमरिया	420
	कुल क्षमता	2647

विद्युत ऊर्जा

वक्त के इस अंधकार को तुझे आज मिटाना होगा
लेकर मशाल हाथ में, सूरज नया उगाना होगा।

मनुष्य से इस पंक्ति में जनचेतना का प्रकाश फैलाने की बात कही जा रही है, परन्तु यह क्या यह तो अपने ही हाथों से राज्य को अंधकार में डूबा रहा है। जी हाँ हम बात कर रहे हैं विद्युत ऊर्जा की जो आज राज्य के शरीर की रीड़ की हड्डी के समान विद्यमान है। इतने बड़े बड़े कारखानों और इनका संचालन एक मामूली सी चीज करती है, ये ऊर्जा की शक्ति है। आज जहां भी देखो विद्युत ऊर्जा यानि बिजली का दोहन सबसे ज्यादा हो रहा है क्योंकि तकनीकि और आधुनिक समय के कारण हम अपना का काम एक लोहे की बेजान वस्तु पर छोड़ देते हैं यह लोहे का आदमी (मशीन) अपने शरीर में विद्युत को रक्त के समान संचारित करता है। स्वंय उपयोग करते समय हम यह बात कैसे भूल जाते हैं कि यह एक मनुष्य के द्वारा निर्मित की जाने वाली ऊर्जा शक्ति है जिसका दुरुपयोग करके हम स्वंय अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। इसका निर्माण बड़े - बड़े बांधों में जल के द्वारा होता है। इसके बाद इसे कुछ समय के लिये ही संग्रहित किया जाता है। राज्य के प्रत्येक स्थान पर इसका उपयोग होता है, लेकिन इसके निर्माण करने के क्षेत्र सीमित हैं। इसका निर्माण तो सीमित मात्रा में होता है लेकिन इसका उपयोग असीमित होता है।

तालिका - 2

मध्य प्रदेश में उपलब्ध विद्युत उत्पादन क्षमता

क्र.	विद्युत उत्पादन	विद्युत उत्पादन क्षमता (मेगावाट में)
1.	राज्य विद्युत तापगृह	3252.5
2.	राज्य जल विद्युत गृह	1322.95
3.	संयुक्त उपक्रम जल परियोजना	2556.5
4.	केन्द्रीय विद्युत उत्पादन क्षमता	2240.5
5.	केप्टिव उत्पादन क्षमता	1778
	कुल उपलब्ध विद्युत क्षमता	11,149.10

तालिका - 3

मध्य प्रदेश में विद्युत उत्पादन क्षमता वृद्धि योजना

क्र.	विद्युत उत्पादन	विद्युत उत्पादन क्षमता (मेगावाट में)
1.	मध्य प्रदेश विद्युत मण्डल की परियोजाओं से	1200
2.	नर्मदा परियोजना से	35
3.	केन्द्रीय क्षेत्र की परियोजना से	928
4.	अन्य परियोजनाओं से	2544
	कुल उपलब्ध विद्युत क्षमता	4707

मध्यप्रदेश राज्य के लिये विद्युत समस्या एक विकराल रुपी दानव बन चुकी है। कारण वही लापरवाही और कर्तव्यविमुखता एवं जनचेतना का अभाव, जब हम घर से बाहर जाते हैं तो कमरे की बिजली जलती छोड़ जाते हैं अपने इस मूर्खतापूर्ण कार्य से हम ऊर्जा को नष्ट करते हैं। जरा सोचिये बिजली से संचालित होने वाली मशीनें यदि बंद हो जायें तो कैसा महसूस करेंगे आप? यह क्या आप तो डर गये लेकिन यही वास्तविकता हमारे भविष्य की कड़वी सच्चाई है क्योंकि जिस प्रकार हम इसका दोहन करते जा रहे हैं इसकी मांग बढ़ती जा रही है। इसके उत्पादन पर होने वाले खर्च का वहन सरकार द्वारा किया जाता है, परन्तु उसे भी इसका भुगतान प्राप्त नहीं होता क्योंकि राज्य में 40 प्रतिशत विद्युत का उपयोग अवैध तरीके से होता है जिसका ना तो कोई बिल आता है और ना ही कोई भुगतान किया जाता है। हजारों यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने वाली रेलगाड़ी का संचालन भी विद्युत से होता है, लेकिन इस सफर के साधन में भी हजारों यात्री बिना टिकट ही यात्रा करते हैं जो एक दण्डनीय अपराध है, परन्तु उससे भी बड़ा अपराध हम उस समय करते हैं जब हम गतिज ऊर्जा का भुगतान नहीं करते हैं। आज हमारे राज्य के हर कोने में विद्युत ऊर्जा संचारित हो रही है जिससे इसका उपयोग बढ़ा है जिसके माध्यम से हम टेलीविजन, रेडियो, रेफ्रिजरेटर, हीटर, वाशिंग मशीन, आदि ऐसे आधुनिक उपकरण हैं जो बिजली के बिना एकदम बेजान से हो जाते हैं। राज्य में यदि विद्युत की समस्या समाप्त हो जायेगी तो वह अपने आप विकास के पथ पर चलता रहेगा। क्योंकि कारखाने गाड़ियाँ सुचारु रुप से चलेंगीं परन्तु इसके लिये हमें विद्युत ऊर्जा का महत्व समझना होगा और इसका सही उपयोग और संग्रहण करना होगा ताकि राज्य समस्याओं के अंधेरे में ना डूबे।

तालिका - 4

प्रदेश में आने वाले वर्षों की विद्युत की स्थिति

क्र.	वर्षो	आवश्यकता	उपलब्धता	कमी (मेगावाट में)
1.	2010	8709	6126	2538
2.	2011	9225	7238	1987
3.	2012	9473	7865	1608
4.	2013	9622	8123	1499
5.	2014	9978	8698	1280

जलीय एवं खनिज ऊर्जा-

जल ही जीवन जानिये, मानो मेरी बात।
संरक्षण इसका करें, हो जब भी बरसात।।
वसुन्धरा ने खनिज दिया, पेड़ ने दीन्ही वायु।
जो प्रतिघात करो तुम इन पर, घटे आपकी आयु।।

उपरोक्त दोहे के माध्यम से जल और खनिज ऊर्जा की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। मुख्य बात जल के संरक्षण के बारे में कही गयी है कि पानी कोई भी हो चाहे वह नदी का हो, नालों का हो या फिर बरसात का, हमें उसका संग्रहण करना चाहिये।

हमारे राज्य में पानी के संग्रहण के लिये कई अभियान चलाये गये और इसके संग्रहण पर जोर दिया गया क्योंकि जल संसाधनों का दोहन कई हजार वर्षो से किया जा रहा है। यह सच है कि हमारी पृथ्वी के एक तिहाई हिस्से में पानी है, परन्तु यह भी सच है कि इसका जल स्तर बढ़ी तीव्र गति से घटता जा रहा है क्योंकि हम इसका संग्रहण करना भूल गये हैं हमारे राज्य में जल की समस्या एक गंभीर रुप धारण कर चुकी है। जल समस्त प्राणी जगत की मूलभूत आवश्यकता है और इससे हम इंकार नहीं कर सकते फिर हम संग्रहण करना कैसे भूल गये। पानी का सदुपयोग करने की परंपरा तो जैसे हमारे राज्य में समाप्त हो चुकी है। आज भी राज्य के कई हिस्सों में पीने योग्य स्वच्छ जल का अभाव है परिणामत: यहां के निवासी दूषित जल पीकर बीमारी की शरण में जा रहे हैं। जल का संग्रहण कैसे किया जाये शायद इस विषय पर हमें राजस्थान राज्य से कुछ सीख लेनी चाहिये। जो पानी का सदुपयोग और संग्रहण करना जानते हैं उनके घरों की छत इस प्रकार की होती है कि बरसात का पानी पाईप के द्वारा आंगन में बनी टंकी में संग्रहित हो जाता है जिसका उपयोग वे नहाने, धोने और अन्य कामों में करते हैं पर क्या हम ऐसा नहीं कर सकते, कर सकते है पर हम ऐसा करते नहीं और परिणाम बरसात का पानी बरबाद हो जाता है और बाद में इसके अभाव में बस चिंता करते रहते हैं। राज्य में पर्याप्त जल संसाधन हैं परन्तु उनका संरक्षण नहीं किया जा रहा है। यही हाल खनिज ऊर्जा का है देखरेख और संरक्षण के अभाव में यह समाप्त होते जा रहे हैं किसी भी राज्य के प्राकृतिक संसाधन और ऊर्जा उसके विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं जिससे राज्य और उसके निवासी अपने जीवन स्तर का विकास करते रहते हैं।

तालिका - 5
जल विद्युत मण्डल के जल विद्युत ताप गृह

क्र.	जल विद्युत ताप गृह	विद्युत उत्पादन क्षमता (मेगावाट में)
1.	चम्बल-	386
	अ. गांधी सागर, मंदसौर	150
	ब. राणा प्रताप, चित्तौड़	172
	स. जवाहर, कोटा	99
	कुल 386 में मध्य प्रदेश का हिस्सा 193 मेगावाट	
2.	पेंच, छिंदवाड़ा	107
3.	रानी अवंती बाई, बर्गी, जबलपुर	90
4.	बाण सागर टोंस - 1 सीधी	315
5.	बाण सागर 2-3 सीधी	90
6.	बाण सागर 4 शहडोल	20
7.	वीरसिंह पुर, उमरिया	20
8.	राजघाट, ललितपुर	22.5
9.	मड़ीखेड़ा, खरगौन	40
10.	लघु जल	5.4
	कुल जल विद्युत कुल विद्युत	922.95 3780

कुल सौर ऊर्जा 75000×10^{14} किलोवाट उत्पादन क्षमता है।

कुल पवन ऊर्जा 20000 मेगावाट उत्पादन क्षमता है।

स्त्रोत:- म. प्र. मध्य विद्युत क्षेत्र भोपाल (भोपाल, ग्वालियर/चंबल संभाग)
म. प्र. पश्चिमी विद्युत क्षेत्र इंदौर (इंदौर व उज्जैन संभाग)
म. प्र. पूर्वी विद्युत क्षेत्र जबलपुर (जबलपु, रीवा, शहडोल व सागर संभाग)

संसाधनों के अभाव के राज्य की स्थिति दयनीय होती जा रही है। और हमें अपने विकास के लिये दूसरों का मुँह देखना पड़ रहा है। इसके लिये नवगठित राज्य छत्तीसगढ और झारखण्ड इसका उदाहरण हैं। ऊर्जाहीन राज्य उस लंगड़े व्यक्ति के समान होता है जिसे एक कदम चलने के लिये बैशाखी आवश्यकता पड़ती है अर्थात् शक्तिविहीन राज्य कभी विकास नहीं कर सकता। हमारे राज्य को भी ऐसी बैशाखी न साधनी पड़े इसके लिये ऊर्जा का संरक्षण अत्यंत आवष्यक है। पानी का महत्व बताते हुये रहीम जी ने भी कहा था :-

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून
पानी गये ना ऊबरे मोती, मानस, चून।

अर्थात् पानी ही मनुष्य की मूलभूत शक्ति है क्योंकि इसके बिना उसका और समस्त प्रांणी जगत का आधार है इसके बिना उसका और समस्त प्रांणी जगत का कल्यांण नहीं हो सकता। इसलिये अपने पानी को संग्रहित करके मनुष्य जीवन को लज्जित होने से बचा सकता है।

ऊर्जा संकट के समाधान के लिये सुझाव -

ऊर्जा संकट के समाधान के लिये तथा शक्ति की पर्याप्त तथा निरंतर आपूर्ति के लिये देश में उपलब्ध तेल, कोयला, जल, ताप, और आणविक सभी संसाधनों का खुलकर विकास किया जाना चाहिये। हमें अपनी ऊर्जा की आपूर्ति स्वंय अपने संसाधनों से करनी होगी अत: इसके संकट से पार होने के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं

1. कोयला उत्पादन बढ़ाया जाये - देश के विद्युत उत्पादन में कोयला अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। यहां कुल उत्पादित विद्युत का 69 प्रतिशत उत्पादन कोयले द्वारा ही होता है। कोयले के भण्डार भी यहां पर्याप्त मात्रा में हैं। अत: इसके उत्पादन को बढ़ाना चाहिये ताकि इससे और अधिक विद्युत बनायी जा सके।

2. जल विद्युत का उत्पादन बढ़ाया जाये - कोयला, तेल, पानी व परमाणु के द्वारा विद्युत का उत्पादन किया जा सकता है। देश में परमाणु का भी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। ऐसे में जल विद्युत उत्पादन में वृद्धि की ओर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिये।

तालिका - 6

मध्य प्रदेश में विद्युत उत्पादन क्षमता वृद्धि योजना वर्ष - 2013-14

क्र.	विद्युत उत्पादन परियोजनाएं	विद्युत उत्पादन क्षमता (मेगावाट में)
1.	मालवा विद्युत परियोजना वर्ष - 2013-14	1200
2.	सतपुड़ा ताप गृह वर्ष - 2013-14	500
3.	बड़ ताप विद्युत गृह से	3600
4.	मोड़ा नागपुर परियोजना से	71.5
5.	मेसर्स टोरंट पावर परियोजना	100
6.	डीबीसी दुर्गापुर	100
7.	महेश्वर जल विद्युत परियोजना	400
8.	बीना परियोजना से	110
9.	निजी कंपनियों से	55.5
विद्युत उत्पादन में कुल वृद्धि वर्ष - 2013-14		6137

3. गैस के उत्पादन में वृद्धि - तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम ओ.एन.जी.सी. की क्रियाओं में पर्याप्त विस्तार करके प्राकृतिक गैस की नवीन स्थानों पर खोज करके कार्यक्रम तेज किया जाना चाहिये साथ ही देश में जल वाली प्राकृतिक गैस का उत्पादन घटाने के संबंध में आवश्यक प्रयत्न किये जाने चाहिये।

4. पेट्रोलियम पदार्थों का आंतरिक उपयोग कम करना : देश में खनिज तेलों के उत्पादन एवं उनकी मांग को देखते हुये यह उचित है कि तेल के उपयोग को कम किया जाये जिससे कि विदेशी मुद्रा की बचत हो सके। जिसके लिये ग्रामीण विद्युतीकरण का विकास तेजी से किया जाये। ताकि मिट्टी के तेल की बचत हो सके तेलों पर आधारित विद्युत ग्रहों को कोयले में परिवर्तित कर देना चाहिये। शहरों में परिवहन के साधनों में तेल का अधिक उपयोग होता है अत: इस संबंध में उचित नीति अपनाकर तेल के उपयोग को कम कर देना चाहिये।

5. विद्युत के अपव्यय में कमी : ऊर्जा संकट के समाधान के लिये इसके वितरण तथा प्रयोग में मितव्ययता की जानी चाहिये। इसके लिये ऐसी तकनीकों का उपयोग बढ़ाना चाहिये जिससे ऊर्जा के प्रयोग में बचत हो सके तथा बेकार होने वाली ऊर्जा को रोका जा सके। ऐसा अनुमान है कि वर्तमान में विभिन्न उपयोंगों में लगभग तीस प्रतिशत ऊर्जा बेकार हो जाती है। इस बरबादी को वितरण में सुधार तथा ऊर्जा बचत की तकनीक के विकास द्वारा रोका जा सकता है।

6. गैर परम्परागत ऊर्जा के साधनों का विकास : ऊर्जा एवं शक्ति के उत्पादन को बढ़ाने के लिये परम्परागत साधनों के विकास के साथ - साथ गैर परम्परागत साधनों का विकास भी अति आवश्यक है। इसके अंतर्गत ऊर्जा एवं शक्ति के जितने साधनों का विकास संभव है उन्हे बढ़ाया जाना चाहिये। इसके अंतर्गत परमाणु ऊर्जा, सौर ऊर्जा, एवं गोबर गैस ऊर्जा आदि साधनों का विकास आवश्यक है। साथ ही गैस के उत्पादन में वृद्धि की जानी चाहिये। राज्य में व्याप्त ऊर्जा संकट के निवारण के लिये बताये गये सुझाव अति आवश्यक हैं। यदि हम इन उपायों को अपने दैनिक जीवन में समाहित कर लें तो हम अपने राज्य को ऊर्जा संकट से मुक्ति दिला सकते हैं।

आज हमारा राज्य जिन भयानक समस्याओं से लड़ रहा है इन समस्याओं को हमें मिलजुलकर मिटाना होगा इसके लिये हमें जरुरत है जन चेतना की जो मानव में अपने कर्तव्यों का भाव प्रकट कर सकें। प्राकृतिक ऊर्जा का सही उपयोग व इसका पुन: निर्माण दोनों ही विधाओं में हमें पारंगत होना पड़ेगा। कई ऊर्जा स्त्रोत ऐसे होते हैं हम जिनको पुर्नउपयोग के लायक बना सकते हैं परन्तु हम ऐसा न करके खुद इनको समाप्त करने पर तुले हुये हैं। नतीजा राज्य में जल, बिजली आदि की समस्याओं के कीटाणु आसानी से पनप रहे हैं एक राज्य तभी खुशहाल हो सकता है जबकि उसके संसाधनों का रखरखाव व पुर्ननिर्माण सही ढ़ंग से किया जायें क्योंकि यह राज्य की मूलभूत आवश्यकतायें होती हैं। जल संसाधन, वन संसाधन और खनिज संसाधन के संरक्षण के द्वारा ही हम अपने राज्य को प्रगति के पथ पर ले जा सकते हैं। प्रस्तुत लेख में जिन बातों का आंकलन किया गया है उनके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि ऊर्जा ही शक्ति और शक्ति ही विकास की पूंजी है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि ऊर्जा का संग्रहण किसी भी राज्य के लिये कितना आवश्यक है।

पानी, बिजली और खनिज इनको रखो संभाल,
संरक्षण इनका करो तब राज्य बने खुशहाल।

तो आओ हम यह शपथ लें कि हम अपने राज्य को प्रगति के पथ पर ले जायेंगे और प्राकृतिक व मानव निर्मित ऊर्जा का संग्रहण करेंगें जिससे सभी का कल्याण हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *भारत सरकार के संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी विभाग*
2. *मध्य प्रदेश विद्युत क्षेत्र ग्वालियर से प्राप्त जानकारी के अनुसार*
3. *म. प्र. मध्य विद्युत क्षेत्र भोपाल से प्राप्त जानकारी के अनुसार,*
4. *म. प्र. पश्चिमी विद्युत क्षेत्र इंदौर से प्राप्त जानकारी के अनुसार,*
5. *म. प्र. पूर्वी विद्युत क्षेत्र जबलपुर से प्राप्त जानकारी के अनुसार,*
6. *सामान्य अध्ययन - आनंद कुमार पाण्डेय - हिन्दी ग्रंथ अकादमी पृष्ठ सं. - 406 से 413 तक*
7. *यूनीफाइड अर्थशास्त्र - अनुपम गोयल, शिवलाल प्रकाशन आगरा पृष्ठ सं. - 235*

शेखावाटी के भित्तिचित्र : मुगल एवं ब्रिटिश काल में उनका विकास

डॉ. चार्वी महला
पोस्ट डॉक्टोरल फैलो, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

shodhshree@gmail.com

> ''जोधा जी बसायो जोधपुर, जैसलमेर जैसल भाटी,
> कच्छावा वीर शेखाजी के नाम से है शेखावाटी
> रोहिड़ा का फूल खिले, इतरावे कींकर और जांटी,
> आयोड़ा का मान अठे, आ ठेठ से परिपाटी,
> बड़ी-बड़ी हेलियां, चित्रकारी बै पर अनूठी,
> आ है म्हारी शेखावाटी...''

जो भी उपर्युक्त पंक्तियों का श्रवण या पठन करता है शेखावाटी अंचल की महक का आभास गाहे-बगाहे उसे हो ही जाता है। शेखावाटी का भू-भाग प्राचीन समय से ही महत्वपूर्ण रहा है। इस भूमि का इतिहास बड़ा विलक्षण और संस्कृति अति गौरवपूर्ण रही है। प्राचीन वैपरित्य के कारण भूतकाल में बड़ी शक्तियां इस क्षेत्र से दूर रही जिनके फलस्वरुप यह क्षेत्र उनकी विनाश लीला की क्रीड़ा भूमि न बनकर बिना किसी व्यवधान के अपने नगरीकरण, कला सम्पदा और आर्थिक-सांस्कृतिक धरोहर को अपने प्राचीन कलेवर में समेट कर सुरक्षित रख सका। यह भू-भाग अतिप्राचीन है। यह भू-भाग अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा है। नगरीकरण, आर्थिक, कलात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से यह क्षेत्र दीर्घ अवधि तक सुसम्पन्न एवं संवर्धित होता रहा है।

शेखावाटी शब्द का प्रयोग शेखा की वाटिका से रखा गया। इतिहास के अनुसार कच्छावा राजकुमार राव शेखाजी से पहले इस क्षेत्र पर सैनिक घुमंतु शासक आते-जाते रहे। राव शेखा के परिवार ने आमेर (जयपुर) एक छोटी रियासत से इस क्षेत्र पर शासन किया। महाराव शेखाजी ने आमेर की सामन्तशाही का उल्लंघन करते हुए 1471 में अपनी संप्रभुता की घोषणा की और उन्हीं के नाम पर इस क्षेत्र का नाम शेखाजी की फुलवारी (वाटिका) शेखावाटी रखा गया। वर्तमान शेखावाटी प्रदेश में राजस्थान के सीकर और झुंझुनू जिले आते हैं। शेखावाटी की माटी की अपनी खासयित है यही कारण है कि यह अंचल शूरवीर योद्धाओं, देश के प्रमुख उद्योगपतियों, महान संत महात्माओं और सरस्वती पुत्रों की जन्म स्थली रहा है।[1]

शेखावाटी के इस छोटे से भू-भाग में कई नगर एवं कस्बे हैं। इन नगरों में कला और साहित्य का भरपूर विकास हुआ। यहां अनेक मन्दिरों, भवनों, किलों, छतरियों, बावड़ियों, तालाबों, कुओं, धर्मशालाओं एं रम्य चित्रों से अलंकृत हवेलियों का निर्माण हुआ जो कला की अनुपम धरोहर है। इन नगरों का संसार अति महत्वपूर्ण रहा है। शेखावाटी की भित्तिचित्रण की परम्परा बहुत प्राचीन है। यहां के प्रारम्भिक चित्र हमें उदयपुरवाटी में संत जोगीदास शाह की छतरी एवं परसरामपुरा में स्थित गोपीनाथ मन्दिर में देखने को मिलते हैं। प्रारम्भिक चित्र पौराणिक विषयों अर्थात् धार्मिक विषयों पर आधारित थे लेकिन कालान्तर में यहां की भित्तियों पर सभी विषयों से सम्बन्धित चित्र चित्रित होने लगे। यहां के भित्तिचित्रों पर मुगल, ब्रिटिश एवं राजस्थान की अन्य शैलियों का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है।[2] इनसे प्रभावित होने के बावजूद इस शैली की

ISSN 2277-5587

अपनी विशेषता है। अत: इस शैली की विशेषता एवं इस पर अन्य शैलियों का प्रभाव दिखाना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

लोक रीति-रिवाजों, पर्वों एवं देवी देवताओं और मांगलिक संस्कारों के ये भित्तिचित्र शेखावाटी की सांस्कृतिक गतिविधियों का भी परिचय देते हैं। इनमें अधिकांश भित्तिचित्र धार्मिक हैं जिनमें लोक कथानक चित्रों की बहुतायत है। शेखावाटी क्षेत्र में स्थापत्य की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। जिससे समग्रता का आभास मिलता है। स्थापत्य कला (महल, गढ़, किले, हवेली, मंदिर, कुएं, बावड़ी, मस्जिद, छतरी आदि) अनेक रुपों में अभिव्यक्त हुई है। जो प्रत्येक भित्तिचित्रों से सुसज्जित हैं। भित्तिचित्र शेखावाटी के इतिहास का ऐसा दर्पण है जिसमें तत्कालीन समाज का सच्चा प्रतिबिंब देखने को मिलता है।[3]

शेखावाटी के स्थापत्य का आधार लिए ये भित्तिचित्र हमें उस वर्तमान में ले जाते हैं जब शेखावाटी का संपूर्ण मानसिक परिवेश अपनी सृजनात्मकता की उन्नत अवस्था में रहा।[4] शेखावाटी की प्राकृतिक सुन्दरता एवं इन्द्रधनुषीय रंगों को मूर्त रूप मध्ययुगीन काल में दिया गया। राजा, महाराजाओं, सेठों ने इसी प्राकृतिक सौन्दर्य अर्थात् इन्द्रधनुषीय रंगों को महलों, हवेलियों, कुओं, बावड़ियों आदि पर उतारना प्रारम्भ किया और भित्ति चित्रों की यही परम्परा 19वीं शताब्दी में अपनी चरम सीमा पर थी। मुख्यत: शेखावाटी में भित्ति चित्र की परम्परा 17वीं शताब्दी से मानी जाती है। इसका मुख्य प्रमाण 1749 में उदयपुरवाटी में संत जोगीदास शाह की छतरी एवं 1758 में परसरामपुरा गांव में शार्दुल सिंह की छतरी पर बने भित्ति चित्र हैं।[5]

प्रारम्भ में चित्रित की गई हवेलियों में मुख्य रुप से तीन रंगों लाल, नीला, हरे रंग का ही प्रयोग किया गया था। इन प्रारम्भिक रंगों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि उक्त हवेली किस काल या समय में निर्मित है। इस क्षेत्र के भित्ति चित्रों का मुख्य विषय धार्मिक ही रहा। ये चित्र उस समय की जीवन शैली को प्रदर्शित करते हैं जब वहां न कोई लिखित कानून था और न ही अपराध रोकने जैसे कोई व्यवस्था थी। स्थानीय लोगों के अनुसार धार्मिक भावनाओं के माध्यम से ही समाज में लोगों के रहन-सहन को नियन्त्रित किया जा सकता था। अत: लोगों को धर्म का संदेश देने, नए-नए आवष्किारों, साधनों से जनता को अवगत कराने, यहां तक कि रोजमर्रा की जिन्दगी को भी भित्ति चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।[6]

शेखावाटी क्षेत्र में यहां का व्यापारी वर्ग यहां से गुजरने वाले व्यापारियों के साथ अपना व्यापार करते तथा धन कमाते थे। यह क्षेत्र उस समय व्यापारिक मार्ग था। शेखावाटी क्षेत्र के व्यापारी केवल यहीं पर नहीं बल्कि पश्चिमी देशों के व्यापारियों यथा - ईरान, ईराक, अफगानिस्तान आदि के साथ भी धन कमाने का कार्य किया करते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बन्दरगाहों की सुविधा उपलब्ध कराने के बाद में सेठ लोग ज्यादा पैसा कमाने के लालच में कलकत्ता, मद्रास, मुंबई आदि स्थानों पर बस गये। इसी से इन्होंने अत्यधिक मात्रा में धन कमाया। इस धन का उपयोग उपयोग अपने ऐशो आराम के अतिरिक्त अपनी जन्म भूमि पर भी किया। यहां अपनी सम्पन्नता दिखाने के लिए हवेलियों, धर्मशालाओं, कुओं व बावड़ियों का निर्माण भी करवाया।[7] इस प्रकार राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में भित्ति चित्रों का शनै: शनै: विकास होने लगा था। इस विकास की दर ने जो गति पकड़ी उसके उदाहरण हमारे सामने वर्तमान की शेखावाटी की हवेलियों, मकान, बावड़ियों, धर्मशालाओं आदि में उकेरे हुये भित्ति चित्र प्रस्तुत करते हैं।

शेखावाटी की हवेलियां कस्बों एवं गांवों में अधिक हैं। इसलिये लोकजीवन के प्रभाव से वे अछूती नहीं हैं। भित्ति चित्रण में लोक कथाओं का वैशिष्ट्य भी देखते ही बनता है। जैसे ढोला मारू, निहालदे-सुल्तान, पृथ्वीराज-संयोगिता, खातण-गौरी आदि के अंकन के साथ लोक जीवन की अनेक भाव-भंगिमाओं को भी कलाकारों ने अपने चित्रण का विषय बनाया है। शेखावाटी शैली में सर्वाधिक विषय उन्नीसवीं शताब्दी के बदलते परिवेश को अभिव्यक्त करने के लिये बनाये गये हैं। इस दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी के बदलाव, रहन-सहन, नये-नये अविष्कारों और उनका प्रभाव आदि का अध्ययन इन चित्रों के माध्यम से सहज ही किया जा सकता है। रेल, मोटर, हवाईजहाज, कपड़े सीलने की मशीन, साइकिल, बग्घी, बैण्ड बाजा, कुर्सी, सोफासेट आदि हैं।[8]

सेठों व साहूकारों द्वारा विशाल हवेलियों का निर्माण तो करवाया गया परन्तु इनकी दीवारों का सुनापन समास करने के लिए इन्हें भित्ति चित्रों से सुसज्जित करवाया गया और यहीं से भित्ति चित्रों की परम्परा आरम्भ हुई। साथ ही जो दृश्य कलकत्ता या अन्य बड़े शहरों में देखने को मिलते थे उन्हें यहां पर चित्रित करवाया जिससे स्थानीय जनता उससे अवगत हो सके अथवा उस साहुकार एवं सेठ का रुतबा लोगों में कायम रहे जैसे रेलगाड़ी, मोटर, कार, ग्रामोफोन इत्यादि।

17वीं शताब्दी में बने प्रारम्भिक भित्ति चित्रों का विषय - धार्मिक ही रहा परन्तु 19वीं शताब्दी में बदलते परिवेश के परिणामस्वरुप व साहुकारों द्वारा अंग्रेजों की होड़ करने के कारण ब्रिटिश प्रभाव के चित्र अधिक बनने लगे। परन्तु जब मनोरंजन की बात की जाये तो उस समय के सम्पन्न जागीरदारों व सेठों की रंगीन मिजाजों के बारे में जिक्र करना भी आवश्यक है। इसका प्रमाण यहां के हवेलियों के शयन कक्षों में उत्तेजक भित्ति चित्रों से लगाया जा सकता है, जहां काम कला का भरपुर चित्रण है। कहा जाता है कि साहुकार जवानी में तो कमाई करते रहे परन्तु जब अधेड़ अवस्था पार करके सम्पन्नता हासिल की तो वे शारीरिक रुप से अपने आपको असहाय महसूस करने लगे तो ऐसे में ये चित्र कामोतेजना बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते थे।[10]

भारत में मुगल चित्रकला का प्रारम्भ 16वीं से 17वीं शताब्दी के मध्य हुआ। यह वही समय था जब मुगल बादशाहों द्वारा भारत के बहुत

बड़े भाग पर शासन किया जा रहा था। मुगल कला का जन्म, उन्नयन एवं पतन मुगल साम्राज्य के उत्थान एवं पतन के साथ ही निहित था। मुगल बादशाहों द्वारा प्रोत्साहित इस कला ने विश्व में अपनी एक महत्त्वपूर्ण चित्र शैली के रुप में प्रसिद्धि प्राप्त की है। मुगल राजपूतों सम्बन्धों के परिणास्वरुप मुगल शैली का राजस्थान में प्रवेश हुआ। शेखावाटी के भित्ति चित्रों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि यहां के भित्ति चित्र अन्य भारतीय शैलियों से साम्यता रखते हैं। यहां के प्रारम्भिक भित्तिचित्रों पर मुगल एवं जयपुर शैली का प्रभाव आया है। मुख्य रुप से शेखावाटी में भित्ति चित्रों की परम्परा एवं विकास के चरण 17वीं शताब्दी से मानी जा सकती है। प्रारम्भ में ये चित्र मन्दिर, सरायों, धर्मशालाओं, छतरियों आदि पर चित्रित किये गये थे। मुगल प्रभाव मुख्य रुप से उन्हीं स्थानों पर दिखाई देता है जो जयपुर के आसपास या फिर केन्द्र सत्ता के सम्पर्क में थे। जैसे झुन्झुनू, नीम का थाना, खण्डेला, फतेहपुर आदि।[11]

मुगल प्रभाव एवं शेखावाटी के भित्ति चित्रों के विकास को विभिन्न रुपों में देखा जा सकता है जैसे वास्तुकला, वेशभूषा, पशु-पक्षी चित्रण आदि। भित्ति चित्रों ने ही नहीं बल्कि वास्तुकला ने कला ने भी यहां विकास की गति पकड़ी। जैसे कि मुगल प्रभाव के कारण इस क्षेत्र में बिना पाल के कुओं के स्थान पर चार मीनार वाले कुएं बनने लगे थे। चार मीनारें मुगल वास्तुकला की ही देन है।[12] मुगल शैली का प्रभाव यहां के भित्ति चित्रों की वेशभूषा पर दिखाई देता है। यहां चित्रित पुरुष एवं महिलाओं की वेशभूषा पर भी मुगल प्रभाव स्पष्ट रुप में देखा जा सकता है। मुगल पुरुष की वेशभूषा में जामा, चुस्त पायजामा, कमर में पटका, पगड़ी पहने आदि चित्रित किया है। यहां के परुषों की पगड़ी में मुगल प्रभाव स्पष्ट रुप से नजर आता है। यहां कई पुरुषों को तंग पायजामा व झींगा पहने भी चित्रित किया गया है। स्त्रियों को दुपट्टा ओढ़े दिखाया जाना भी मुगल प्रभाव का परिचायक है।[13] यहां के दुर्गो में चित्रित चित्रों पर मुगल प्रभाव सर्वाधिक है। खण्डेला जो कि सीकर जिले में स्थित है, के दुर्ग में स्थानीय शैली के साथ-साथ मुगल प्रभाव भी आया है। मुगल शैली का सर्वाधिक प्रभाव झुंझुनू जिले के उदयपुरवाटी में स्थित संत जोगीदास शाह की छतरी पर दिखाई देता है। जहां पर मुगल बादशाहों एवं सूफी संतों को चित्रित किया है। सम्भवत: यह शेखावाटी का एकमात्र स्थान है जहा सूफी संतों को दिखाया गया है।[14]

सत्रवहीं शताब्दी में भित्तिचित्रों को ही नहीं बल्कि सभी प्रकार के चित्रों को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ एवं उनका विकास द्रुत गति से हुआ। राजस्थान के नेरेशों का जहांगीर के दरबार से भी निकट सम्पर्क था।[15] जब सम्पूर्ण राजस्थान के भित्तिचित्रों पर मुगल प्रभाव था तो स्वाभाविक है कि उनका प्रभाव शेखावाटी पर भी पड़ना था। इसी के फलस्वरुप बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शेखावाटी के एक-एक कस्बे की एक-एक हवेलियों पर भित्ति चित्र चित्रित होने लगे। यहां के लगभग सभी भित्तिचित्र मुगल प्रभाव से ओत प्रोत हैं लेकिन फिर भी ये शेखावाटी की भित्ति चित्र परम्परा एवं उनकी विकास की कहानी के उत्कृष्ट उदाहरण है।

भारतीय कला के अध्ययन की दृष्टि से इसका ऐतिहासिक उद्भव उस युग से होता है जब 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजों की एक व्यापारिक मंडी 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने भारत में अपना अस्तित्व बना लिया था और इस आड़ में अंग्रेजों ने भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्रों में अपनी जड़ें जमा ली थीं। इस ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 19वीं शताब्दी में भारत एवं उसके राज्यों को 'कम्पनी चित्रण शैली' देकर भारतीय कला क्षेत्र में वृद्धि की है।[16] शेखावाटी क्षेत्र में अधिक भित्ति चित्रांकन का प्रादुर्भाव हवेलियों के निर्माण से ही माना जाना चाहिए। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद यहां के सेठों ने अपना व्यापारिक क्षेत्र बढ़ाया। वे अंग्रेजों के व्यापार के सहयोगी बने और अपने साहस और उत्साह के कारण घर से कलकत्ता, बम्बई जैसे महानगरों की ओर प्रस्थान कर चले।[17] 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही यह क्षेत्र व्यापारिक केन्द्रों में शामिल हो गया तथा सेठ साहूकारों ने के बाहर जाकर व्यापार करने के कारण यह क्षेत्र धनी हो गया। इस प्रकार पिलानी के बिड़ला, नवलगढ़ के पोद्दार, मुकुन्दगढ़ के कानोडिया, फतेहपुर के गोयनका, रामगढ़ के रुईयां इत्यादि बड़े औद्योगिक घरानों ने राजस्थान की अर्थनीति में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। उन्होंने अपने-अपने नगरों एवं कस्बों में बड़ी-बड़ी हवेलियों एवं छतरियों आदि का निर्माण करवाया व उन्हें चित्रित करवाया।

ब्रिटिश शैली से प्रभावित शेखावाटी के भित्ति चित्रों में लोक जीवन की झांकी देखने को मिलती है। अंग्रेजी आगमन से यातायात के साधनों, रहन सहन, वेशभूषा तथा नवीन अविष्कारों के कारण सेठ लोग प्रभावित हुअए और उन्होंने कम्पनी सभ्यता के प्रभाव को अपनी हवेलियों में अंकित करवाया।[18] अंग्रेजी सभ्यता के कारण भित्ति चित्रों की विषय वस्तु भी परिवर्तित हुई। सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक इस शैली का विकास हुआ। ब्रिटिश शैली से प्रभावित चित्रों में कलाकारों ने विदेशी विषय वस्तु को अधिकत्तर नहीं देखा, इसलिए उन्होंने अपनी कल्पना को विशेष रुप से साकार रुप में प्रस्तुत किया। इस क्षेत्र के प्रारम्भिक चित्र प्रमुखत: धार्मिक एवं पौराणिक विषयों से सम्बन्धित होते थे परन्तु अंग्रेजों के आने के बाद औपनिवेशिक प्रभाव यहां के भित्तिचित्रों में नजर आने लगा।[19]

शेखावाटी के भित्ति चित्रों के विकास पर ब्रिटिश प्रभाव इतना पड़ा कि यहां के चितेरे अंग्रेजी शैली का नकल करने लगे। इस प्रभाव के कारण मोटर गाड़ी, पुरानी परम्परा में प्रचलित हाथियों से ज्यादा प्रचलित हो गई और फरिश्ते (एन्जिल्स) पुरातन परम्परा के देवताओं से अधिक लोकप्रिय हो गये। ब्रिटिश प्रभाव के कारण भित्तिचित्रों में भारतीय सैनिकों के स्थान पर विदेशी टोपधारी सैनिकों के चित्रांकन का विकास होने लगा। बग्गियों में राजा, महाराजा, सेठ-सेठानियों के स्थान पर अंग्रेजी बाबू-मेम के चित्रों का विकास

नजर आने लगा था। मारवाड़ियों को कारों में बैठे, चलाते हुए आदि का चित्रण होने लगा था। वेशभूषा की दृष्टि से भी भित्ति चित्रों विकास के चरण आगे बढ़ रहे थे जैसे कि स्थानीय वेशभूषा धोती कुर्ता के स्थान पर अंग्रेजी सूट-पेन्ट का चित्रांकन आरम्भ हो गया था। भारतीय नारी के स्थान पर विदेशी मेम (महिला) के चित्र बनने लगे। अंग्रेजी मेम को किताब पढ़ते हुए, कुत्ते को खिलाते हुए, सितार बजाते हुए, छाता पकड़े हुए आदि आदि मुद्राओं में अंकित किया जाने लगा।

औपनिवेशिक (ईस्ट इण्डिया) प्रभाव ने भित्ति चित्रों की विषय वस्तु ही नहीं बल्कि रंग पद्धति को भी प्रभावित किया। अब विदेशी रंगों एवं छाया प्रकाश का प्रचलन होने लगा। प्रारम्भिक चित्रों में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता था जिन्हें कलाकार हाथों से सिलबट्टे व लोढ़ी से महिनों तक पीसकर तैयार करते थे। परन्तु अब रेडिमेड रंगों का प्रयोग होन लगा।[20] शेखावाटी के भित्तिचित्रों को यांत्रिका साधनों, अंग्रेजों की वेशभूषा आदि ने ही प्रभावित नहीं किया वरन् कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में घटित होने वाली घटनाओं अथवा वहां अंग्रेजों द्वारा बनाये गये भवनों, स्टेडियम आदि को भी यहां भित्ति चित्रों में चित्रित किया गाय है। उदाहरण के लिये लक्ष्मणगढ़ में स्थित पालड़ीवाल की हवेली है जिसमें बम्बई, मद्रास, कलकत्ता आदि में स्थित प्रसिद्ध भवनों आदि को चित्रित किया है। इसी हवेली के एक चित्र में बाजार का दृश्य चित्रित किया गया है। जिसमें अंग्रेज व्यक्तियों के साथ-साथ भारतीय पुरुषों को भी दर्शाया गया है। दूसरे दृश्य में मद्रास के सीनेट हाउस को चित्रित किया गया है। इसी हवेली में इनके अतिरिक्त मद्रास के गवर्नमेन्ट हाउस, हाईकोर्ट, प्रेसीडेन्सी कॉलेज आदि को चित्रित किया गया है। इन चित्रों से यहां इस क्षेत्र पर कम्पनी प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखाई पड़ता है।[21]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र के भित्ति चित्रों की परम्परा प्राचीन थी एवं इनका विकास शनै: शनै: मुगल, ब्रिटिश एवं अन्य प्रभावों के कारण हुआ है। इस विकास के मार्ग में अनेक प्रोत्साहन एवं बाधाओं ने अपना मुकाम बनाया लेकिन बीसवीं शताब्दी में लोगों की रुचि परिवर्तित होने लगी और पर्यटन के विकास के साथ ही इन चित्रों की ओर फिर से रुझान पैदा हुआ। इस रुझान ने ही शेखावाटी के भित्ति चित्रों के विकास के चरणों को प्रकाश में लाने के लिए शोध कार्यों को प्रोत्साहन प्रदान किया। इन भित्ति चित्रों के फलस्वरुप शेखावाटी में नगरीकरण के चरणों के प्रति शोध की जिज्ञासा बढ़ी है। इन भित्ति चित्रों के अध्ययन एवं शोध के माध्यम से शेखावाटी अंचल के विभिन्न आयामों एवं पक्षों का अध्ययन की असीम संभावनाएं प्रतीत होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. *पुरोहित, डॉ. अनिला एवं मीणा, ख्यालीराम का लेख : शेखावाटी क्षेत्र की हवेलियों में भित्ती चित्र एवं उनका संरक्षण, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्स, पृ. 177*
2. *महला, डॉ. चार्वी : शेखावाटी भित्तिचित्रों पर मुगल एवं ब्रिटिश प्रभाव, प्राक्कथन, पृ. iii, iv*
3. *देखें दुलर, डॉ. पुष्पा का लेख : शेखावाटी के भित्तिचित्रों में समसामयिक परिवेश, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्स, पृ. 106*
4. *वही, पृ. 175*
5. *महला, डॉ. चार्वी : शेखावाटी भित्तिचित्रों पर मुगल एवं ब्रिटिश प्रभाव, पृ. 60*
6. *जांगिड़, लक्ष्मीकान्त : पर्यटन अवलोकन, पृ. 58*
7. *वही, पृ. 59*
8. *पुरोहित, डॉ. अनिला एवं मीणा, ख्यालीराम का लेख : शेखावाटी क्षेत्र की हवेलियों में भित्ती चित्र एवं उनका संरक्षण, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्स, पृ. 179*
9. *निर्विरोध, तारादत्त : शेखावाटी : सांस्कृतिक इतिहास के विविध आयाम, पृ. 13*
10. *पंचोली, डॉ. रामानुज : टेल्स ऑफ लव इन राजस्थान पेन्टिंग्स, पृ. 122-115*
11. *शर्मा, झाबरमल : सीकर का इतिहास, पृ. 22*
12. *ब्राउन, पर्सी : इण्डियन पेंटिग अन्डर दी मुगल्स, पृ. 20*
13. *प्रताप, रीता : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ. 162*
14. *महला, डॉ. चार्वी : शेखावाटी भित्तिचित्रों पर मुगल एवं ब्रिटिश प्रभाव, पृ. 78*
15. *पाण्डे, डॉ. राम : राजस्थान के भित्तिचित्र - एक सफरनामा, शोधक, पृ. 12*
16. *प्रताप, रीता : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ. 305*
17. *नीरज, जयसिंह : राजस्थानी चित्रकला, पृ. 83*
18. *सिंह, कुंवर संग्राम : जयपुरस् युनिक कॉन्ट्रीब्यूशन टू राजस्थान, पृ. 29-30*
19. *अग्रवाल, दिनेश चन्द्र : कम्पनी शैली - एक ऐतिहासिक सन्दर्भ, पृ. 29*
20. *कपूर, इले : राजस्थान दी गाइड टू पेन्टेड ऑफ शेखावाटी, पृ. 15*
21. *महला, डॉ. चार्वी : शेखावाटी भित्तिचित्रों पर मुगल एवं ब्रिटिश प्रभाव, पृ. 88*

गांधीवाद और स्वदेशी का समकालीन परिदृश्य : ग्रामीण विकास के संदर्भ में

shodhshree@gmail.com

दीपक सिंह
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

जितने भी वाद हैं जिन्होंने 20वीं और 21वीं शताब्दी में वर्चस्व बनाए रखा था उनमें गांधीवाद एक अलग तरीके के रुप में खड़ा है। इसका कारण यह है कि गांधीवाद ने दो जुड़वा सिद्धान्तों, सत्य व अहिंसा, पर बल दिया है। ''वाद'' विभिन्न विचारधाराओं की प्रतिनिधित्व करते हैं। ये वाद विभिन्न उपागमों के प्रवर्तक है, जो समस्याओं से जूझ रही मानवता के सामने समाधान प्रस्तुत करते हैं जिससे विश्व में शान्ति सुनिश्चित की जा सके। यद्यपि यें तरीके व उपागम भिन्न-भिन्न हैं। इनमें शक्ति का प्रयोग, विकास से जुड़े कारकों की पहचान और सबके लिए समानता सुनिश्चित करने पर बल दिया जाता है। इन सब उपागमों और गांधीवाद में एक अंतर यह है कि यह एक क्रमिक उपागम है और अहिंसा से सम्बन्ध है जिसे किसी अन्य तरीके से हटाया नहीं जा सकता हैं। यद्यपि गांधी ने स्वयं अपने विचारों व दृष्टिकोण के आधार पर किसी वाद को चलाने का समर्थन नहीं किया है। परन्तु विश्व ने एक अपवाद करते हुए उनके विचारों को एक वाद का नाम दे दिया। गांधी जिन विचारों को निरंतर हमारे सामने रख रहे थे वें कोई नए नहीं थे।[1] यें तो मुख्यत: विभिन्न धार्मिक और साहित्यिक स्त्रोतों से प्रेरित थे। उनका सार्वभौम धर्म का उपागम और सामुदायिक जीवन उनके अभिमत से निकटता से जुड़ गए थे और इसी प्रकार से यें उनके जीवन व एकीकृत विचारधारा से सत्य व अहिंसा के उपागम का एक भाग बन गए। वे प्राय: इस बात पर बल देते थे कि, ''मैंने किन्हीं नए सिद्धान्तों को जन्म नहीं दिया है परन्तु पुराने सिद्धान्तों को फिर से रखने का प्रयास किया है। गांधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है और मै अपने बाद कोई सम्प्रदाय छोड़कर जाना नहीं चाहता। मैं यह कोई दावा नहीं करता कि मैंने किसी नए सिद्धान्त को जन्म दिया है। मैंने तो सनातन सत्यों को अपने दैनिक जीवन और समस्याओं के समाधान में अपने ढंग से लागू करने का प्रयास भर किया है।''

उपरोक्त विनय के बावजूद, स्वयं गांधी के समय के दौरान गांधीवाद का उदय हुआ ओर अब समकालीन समय में ''गांधीगिरी''। विश्व के लिए यह शब्द इसलिए शक्तिशाली व व्यापक हुआ है कि यह बवाद बहुत ही प्रासंगिक है। गांधी युग के बाद बहुत से आन्दोलन सामने आये हैं। नागरिक अधिकारों के आन्दोलनों से लेकर पर्यावरण से जुड़े आन्दोलन, समय-समय पर अहिंसा की कारगरता की परीक्षा होती रही है। और प्राय: इन तरीकों और दृष्टिकोणों को विजय मिलती रही है। यद्यपि विश्व के कुछ शक्तिशाली देशों ने हिंसा का बहुत प्रयोग किया परन्तु समस्याओं का समाधान न हो पाया इस प्रकार से, गांधी की इस अनिच्छा के बावजूद कि उनके बाद कोई 'वाद' जैसे गांधीवाद को न चलाया जाए, गांधी और उनके तरीकों पर निरंतर बहस, अधिक शोध और चर्चाएं होती रही हैं। एक मुख्य विशेषता यह है कि गांधी ने सत्य व अहिंसा के जुड़वा सिद्धान्तों को समाज के व्यक्तियों को ही अपनाने के लिए नहीं कहा बल्कि इनका विस्तार समूहों और राष्ट्रों तक किया।[2]

इस युग में, जब हिंसा को एक मुख्य व व्यवहार्य शक्ति के रुप में व्यापक रुप से स्वीकार कर लिया गया है, ऐसे में इस युद्ध से ग्रस्त संसार के लिए गांधी के विचार राहत के रुप में आये हैं।

आधुनिक संसार के लिए गांधीवाद का अर्थ

क्या यह एक ऐसी विचारधारा है जिस पर पुराना होने का चस्पा लगा दिया जाए? क्या यह एक ऐसी विचारधारा है जिसका फिर से निर्माण करके अनुकरण किया जा सके? या यह एक ऐसी विचारधारा है जो अभी भी इस संसार को विश्वास दिलाती है कि अगर मानवता चाहे तो संघर्षों का समाधान शान्तिपूर्ण व परस्पर सहयोग के तरीके से ही हो सकता है? यह नई पीढ़ी को कौन सी प्रत्याशा दिलाती है? जैसा कि प्राय: कहा जाता है कि गांधीवाद चार स्तम्भों पर खड़ा है : सत्य, अहिंसा, नैतिकता और आध्यात्मिकता। यें विशेषताएँ उस दृष्टिकोण व महत्त्व को परिभाषित कर देती हैं जो गांधीवाद कहलाता है। गांधी की मानवता के लिए मुख्य चुनौती यह थी : अपने समय के दौरान उन्होंने हिंसा का पूरी शक्ति लगाकर विरोध किया और अनुकरण करने योग्य उदाहरण पेश किया। अब, इस शताब्दी में, क्या संभव है कि हम त्याग व विनम्रता की उसी भावना में उनके विचार का अनुकरण करें? जब हम गांधीवाद के बारे में बात करते हैं या नहीं, तब यह चुनौती हमारे सामने आती है। क्या अहिंसा की पद्धति अभी भी कार्य करेगी? क्या हम किसी भी कीमत पर, यहाँ तक की आत्म-त्याग करके, सत्य को अपनाने के योग्य है? क्या हम भौतिकतावाद व उपभोक्तावाद की ललक को छोड़कर आध्यात्मिक दृष्टिकोण का अनुकरण कर सकते है? क्या हम जहां आवश्यक हो नैतिक आधार लेकर इस पर दृढ़ रह सकते है? हम किस प्रकार से भलाई के लिए अपने में परिवर्तन ला सकते हैं और इसी ढंग से समान रुप से अपनी सामूहिक भलाई के लिए समाज के लिए क्या कर सकते है? प्राय: गांधी ने मानवता को अपने अन्त: करण पर चलने की सलाह दी थी: हमारे सामने यह चुनौतीपूर्ण कार्य है कि किस प्रकार से उनकी सलाह को मानकर समाज में योगदान दें।

समकालीन समय और समाज की स्थिति ने हमारे सामने बहुत सी चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। हमारे बदलते हुए जीवन स्तर ने व्यापक रुप से हमारे मूल्यों, दृष्टिकोणों और विश्वासों को निर्देशित किया है। भौतिकवाद ने मानवीय मूल्यों को अपने अधीन कर लिया है और यह हमारे सामने निरंतर एक खतरा है। इस भौतिकवाद ने हमे जकड़ लिया है, इससे बाहर आने का मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है। गांधी के समय के विपरीत, हम उन्नतिशील लोकतंत्र, स्वतंत्रता, स्वाधीनता और सद्इच्छा का उपभोग कर रहे हैं। राष्ट्र ने कुछ सीमा तक आर्थिक व सामाजिक रुप से प्रगति की है, यद्यपि शोषित व गरीब लोगों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है, मगर फिर भी इस उद्देश्य के लिए काफी कुछ करना बाकी है। साथ ही हम नई चुनौतियों का सामना कर रहें है जैसे संघर्षो का विस्तार, पर्यावरण का ह्रास, गरीबी उन्मूलन, लिंग असमानता और संपोषणता व स्थायित्व की कमी। यहां यह बात ध्यान देने की है कि गांधी ने अपने समय में ही इन सन्निकट समस्याओं के प्रति हमें चेताया था।

हम आज के संसार में जिन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं वे नानारुप लिए हैं। ये विविध रुपी, बहुपक्षीय, परस्पर विरोधी व अन्तर्विरोधी हैं। ऐसे बहुत से मुद्दे हैं जिन्होंने जीवन के सब क्षेत्रों- राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक- को प्रभावित किया है। युद्ध, विस्थापन, प्रवासी, जातीय संघर्ष और गरीबी जो हर युग में अत्यधिक ज्वलंत समस्या रही है, की समस्याएं सामने खड़ी हैं। भ्रष्टाचार व शासन की समस्याएं राजनीतिक क्षेत्र में घुस गई है, विशेषकर भारतीय संदर्भ में जाति, रंग, लिंग के आधार पर भेदभाव, परिवार की प्रतिष्ठा के कारण हत्याएं रोज-मर्रा की बातें हो गई है, आर्थिक तौर पर संसार उत्तरी व दक्षिण गुटों, विकसित व विकासशील देशों, जिनके पास है और है नहीं, अमीर और गरीब, सम्पन्न और विपन्न के बीच बंटा हुआ है नहीं, अमीर और गरीब, सम्पन्न और विपन्न के बीच बंटा हुआ है, सांस्कृतिक तौर पर पाश्चात्य मूल्यों, संस्कृति, विचार व दृष्टिकोण, भाषा इत्यादि का वर्चस्व है और यें स्थानीय संस्कृतियां, परम्पराओं, रीति-रिवाजों व व्यवहारों को नकारात्मक रुप से प्रभावित कर रहे हैं। हम विकास व प्रगति के अन्तर्विरोधी व झूठे विचारों में रह रहे है।[3]

ये समस्याएं केवल आज की ही नहीं है। ये 19वीं और 20वीं शताब्दी में भी थी। परन्तु इनकी प्रकार, प्रकृति, व मात्रा उस समय भिन्न थी। उन दिनों हम औपनिवेशक प्रजा थे, औपनिवेशक शासन के अधीन रह रहे थे। संसार ने देखा कि उपनिवेशों का भौतिक व व्यावसायिक लाभों के लिए संसाधनों का दोहन करके बहुतायात धन को उपनिवेशों से शासक राष्ट्रों को भेजा जा रहा था और महत्वपूर्ण बात यह थी कि यें उपनिवेश अपनी सम्प्रभुता खो चुके थे। आज के युग में हम एक नए प्रकार के नव-उदारवाद के चंगुल में फंसे गए हैं। यह सम्प्रभु राष्ट्रों को निर्देशित करता है कि घरेलू नियमों और आर्थिक ढांचे को किस तरह बनाया जाए।

जैसा कि जवाहर लाल नेहरु ने कहा है, गांधी एक आशा की किरण के रुप में आए। इस राष्ट्र के लोगों ने जो आशाएं व आकांक्षाएं उन्हें सौंपी, उन्होंने उनको झूठा सिद्ध नहीं होने दिया। उन्होंने स्वयं को एक घाघ नेता सिद्ध किया जिसने बहुत ही प्रभावशाली ढंग से अहिंसा का प्रयोग किया और यह अहिंसा दुर्बल के अस्त्र के रुप में नहीं बल्कि वीर के अस्त्र के रुप में पहचानी गई।

इंग्लैण्ड में एक छात्र के रूप में उन्होंने स्वतंत्रता और स्वाधीनता जैसे मूल्यों का अनुभव किया और दक्षिण अफ्रीका में उन्हें रंग भेद के कारण पीड़ाओं से गुजरना पड़ा, ये दोनों घटनाएं हमारे सामने दो पृथक-पृथक अन्तर्विरोध प्रस्तुत करती हैं। वें लोगों के न्यायसंगत अधिकारों, स्वतंत्रताओं और स्वाधीनता के लिए लड़े। भारत में, वें एक साफ छवि वाले नेता थे। गांधी ने स्वयं को राजनीतिक नेतृत्व करने तक ही सीमित नहीं किया। उन्होंने भारत के सामाजिक,

आर्थिक और सांस्कृतिक पुनरुद्धार को भी सामने रखा। सम्पूर्ण देश का व्यापक भ्रमण करने के बाद उन्होंने यह अनुभव किया कि भारत को सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता की ही आवश्यकता नहीं है, परन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्रता की आवश्यकता है।

इसलिए वे समय समय पर विभिन्न विषयों पर अपने विचार रखते थे। प्राय: उनके विचारों को समर्थन मिलता, कुछ संदर्भ में उनके विचारों को समर्थन मिलता, कुछ संदर्भ में उनके विचारों को ठुकराया भी जाता या अव्यावहारिक कहा जाता। उन्होंने, उदाहरण के लिए, उपनिवेशवाद और इससे उत्पन्न बुरे प्रभावों से घृणा की। वे शोषण के विरुद्ध थे। उन्होंने सादा व सरल जीवन बिताया। व्यक्ति के बारे में उनके स्वयं के विचार थे। यह व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सम्पन्न है। उन्होंने राजनीतिक संस्थाओं पर चर्चा की, सांस्कृतिक एकता व सौहार्द के बारे में विचार रखे, उन्होंने महिला सशक्तीकरण की बात कही और महिलाओं को स्वतंत्रता आन्दोलन से जोड़ा, उन्होंने पिछड़े लोगों को मुख्य धारा से जोड़ने का समर्थन किया, उन्होंने इनके उत्थान के बारे में कहा, उन्होंने विज्ञान व तकनीक पर अपने विचार रखे और किस प्रकार ये समाज के लिए वरदान और अभिशाप बन सकते है, इस पर भी कहा, उन्होंने मीडिया का व्यापक रुप से प्रयोग किया, स्वयं पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन किया, संघर्ष निवारण में सत्य और अहिंसा का समर्थन किया, बताया कि इनका प्रयोग हर कोई कर सकता है, और इनसे विरोधी को अपना बनाया जा सकता है।

जिस प्रकार गांधी के समय में यें समस्याएं थी, वें आज भी व्याप्त हैं। और हम इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हम कोई से भी साधन, चाहे हिंसक हों, का प्रयोग कर रहे हैं। हमने उन कारगर तकनीकों को दूर किनार कर दिया है जो हमें दीर्घ-कालीन समाधान प्रदान कर सकती थी। फिर भी, समय समय पर गांधी को याद कर लिया जाता है और कुछ चर्चाओं और वाद-विवादों में 21वीं शताब्दी में उनके विचारों की प्रासंगिकता पर बहस की जा रही है। हम इस मतैक्यता पर पहुंचे है कि वे अपने विचारों और दृष्टिकोणों में सही थे और हमें वर्तमान संदर्भ और समस्याओं के विषय को ध्यान में रखते हुए उनके विचारों को अपनाना चाहिए।

इस संसार में उत्तर-औपनिवेशिक युग में, बहुत से देशों ने अहिंसक दृष्टिकोण से उसी ढंग से लाभ उठाया है जिस प्रकार भारत में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में इस दृष्टिकोण को अपनाया गया था। अधिकांश देशों में विउपनिवेशीकरण पूरी तरह से प्रकृति में अहिंसक था और संसार ने इसके महत्त्व को अनुभव किया है। शीत युद्ध के युग में अहिंसा निरंतर शान्त रही और इस शीत की समाप्ति के बाद नई समस्याओं की बाढ़ सी आ गई। सभी स्तरों पर विचार कार्य और शब्द में हिंसा जीवन का एक ढंग बन गई है। संसार में व्याप्त अधिकांश समस्याओं के समाधान के लिए हिंसक दृष्टिकोणों को अपनाया गया। इस युग में अहिंसा की कारगरता को पहचाना जा सकता था, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसका परिणाम हुआ अंतहीन हिंसा और जीवन, राष्ट्रों और सभ्यताओं का व्यापक विध्वंस होता रहा।

इसी प्रकार से, संसार भर में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से विश्व का आर्थिक परिदृश्य व्यापक रुप से बदल गया है। गांधी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में जिस आधुनिक सभ्यता की कटु आलोचना की है, वह अब पूरे संसार में अपनी जड़ें जमा रही है। भारत भी इसका कोई अपवाद नहीं है क्योंकि वह भी संसार में आ रहें क्रान्तिकारी परिवर्तन का एक भाग है। वह राष्ट्र जो अब तक आत्म-संतोषी था; सरल जीवन पर पूरी तरह टिका रहा, वह अब संसार में एक तेजी से बढ़ती अर्थव्यस्था और सूचना व तकनीक क्रान्ति का केन्द्र बनता जा रहा है। बहुत ही कम समय में निरंतर उपभोगतावाद और अत्यधिक भौतिकतावाद ने जनसंख्या के दृष्टिकोण को बदल दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि चारों ओर- बड़े उद्योग घरानों, संस्थानों, लोगों, अमीर-गरीब व अन्यों के बीच प्रतियोगिता नजर आती है। अब हम जीवन के सब क्षेत्रों और समाज में सब समूहों के बीच चौड़ी होती खाई को देख रहे हैं।

गांधी ने स्वतंत्र भारत के लिए सामाजिक पुनरुद्धार कार्यक्रम का एक खाका खींचा था। काफी समय से इसे उपेक्षित किया जाता रहा, यद्यपि राष्ट्रपिता को सम्मान देने के लिए यह अधिकारिक नीति व कार्यक्रम के दस्तावेज में दृष्टिगोचर होता है। केवल कुछ अपवादों को छोड़कर गांधी का सादा जीवन, संसाधनों का मितव्ययी प्रयोग, अन्यों के लिए त्याग का समर्थन और सार्वभौम सद्इच्छा व विश्वास का समर्थन अब दिखाई नहीं देता है। भ्रष्टाचार जीवन का ढंग बन गया है और यह जनता में बेचैनी पैदा कर रहा है, ऐसे में इस व्यवहार के उन्मूलन के लिए गांधी को विचार व भावना में व्यक्त किया जा रहा है। नागरिक समाज लोगों में विश्वास की भावना पैदा कर रहा हैं कहा जा रहा है कि आज के समाज में गांधी की विचारधारा और व्यावहारिक तरीकों की अभी भी प्रासंगिकता है। भारत में सामाजिक परिदृष्य मिश्रित परिणाम लिए हुए है। गांधी को विचार व भावना में व्यक्त किया जा रहा है। नागरिक समाज लोगों में विष्वास की भावना पैदा कर रहा है। कहा जा रहा है कि आज के समाज में गांधी की विचारधारा और व्यावहारिक तरीकों की अभी भी प्रासंगिकता है। भारत में सामाजिक परिदृश्य मिश्रित परिणाम लिए हुए है। गांधी के विचार और इसके बाद संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार, हाशिए पर खड़े समाजों ने काफी प्रगति देखी है। यें समुदाय अपने अधिकारों और सुविधाओं के लिए अत्यधिक मुखरित और हठधर्मी हुए हैं। और सभी सम्भावित मंचों से अपनी प्रगति के कारण के लिए समर्थन जुटा रहे हैं। यद्यपि दूर-दराज के गांवों में इस दिशा में प्रगति होना अभी बाकी है। फिर भी अधिकांश गांवों ने वह प्राप्त कर लिया है जो उचित रुप से उनका ही था। अपवाद भी हैं। या तो वहां पुरातनपंथी का जोर है या फिर अपने अधिकारों के लिए लड़ने की भावना में कमी का होना है। गैर सरकारी संगठन सक्रिय रुप से भाग ले रहें हैं और नागरिक

समाज इन प्रयासों के समर्थन के लिए आवाज उठा रहा है, इससे भारत में सामाजिक स्थितियां काफी ऊंचाई पर पहुंच गई हैं। कई बार देखा गया है राजनीतिक वर्ग या नागरिक समाज गांधी के दृष्टिकोण का हवाला देते नजर आते हैं। वे मानते हैं कि यह दृष्टिकोण समाज में परिवर्तन लाने का उपयुक्त तरीका है। समाज में अन्तर्विरोधी स्थिति होने के बावजूद गांधी अभी भी जनता के मस्तिष्क को प्रभावित करता है। इन अन्तर्विरोधों में किसी भी तरीके से आत्म-संतोष नहीं नजर आता हैं। परन्तु ये तो प्रतिबिम्ब है जिनकी भारत अपनी समस्याओं को सुलझाने में कमी अनुभव कर रहा है, वह है नेतृत्व की कमी।

अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह परिस्थितिकी आन्दोलन ही है जिसने गांधी से अपना महानतम व अधिकतम समर्थन का स्त्रोत प्राप्त किया। मुख्यत: बिन्दु जो केन्द्र में थे महिलाओं से जुड़े मुद्दे, उनका सशक्तीकरण, आने वाली पीढ़ियों की आवष्यकता को ध्यान में रखकर प्राकृतिक संसाधनों का न्यायसंगत प्रयोग और सबकी संतुष्टि के लिए संसाधनों में समान रुप से भागीदारी।

इन सभी आन्दोलनों-चिपको आन्दोलन, अपिको आन्दोलन, शान्त घाटी, पलाचिमादा मामला, हरित पट्टी आन्दोलन इत्यादि- में गांधी के अहिंसक तरीके की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। एक युगद्रष्टा के रुप में गांधी ने मानवता को चेतावनी दी कि वह लालच वृत्ति का त्याग कर दे, और दृढ़ रुप से अपरिग्रह व्रत का समर्थन किया जिससे कि लालच पर काबू पाया जा सके। गांधी को आम तौर पर परिस्थितिकी, पर्यावरणीय साहित्य और आन्दोलनों में काफी उद्धृत किया जाता है ताकि जोरदार ढंग से उनका संदेश जनता को पहुंचे। विरोध के अहिंसक तरीके, घेराव, अपनी मांग के समर्थन में पर्चे बांटना, सरकार को वर्तमान स्थितियों की समीक्षा के लिए मजबूर करना, उससे वार्ता करना ये कुछ ऐसे प्रभावशाली तरीके हैं जिनका प्रयोग आन्दोलनकारी समय समय पर करते आ रहे हैं। गांधी की विचारधारा ने एक प्रभावशाली रुप ग्रहण कर लिया है। इस विचारधारा को संसार की समस्याओं से छुटकारा दिलाने वाली रामबाण समझा जाता है।

स्वदेशी आन्दोलन

स्वदेशी के सम्बन्ध में गाँधी जी की धारणा व्यक्ति के जीवन को धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक धरातल पर बाँधती है। गाँधी ने इसे धार्मिक अनुशासन मानते हुए कहा है, ''स्वदेशी एक धार्मिक अनुशासन है। इसे प्राप्त करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति को शारीरिक कष्टों की भी अवहेलना करनी चाहिए। स्वदेशी का विरोध जो इस बात पर करते हैं, कि स्वदेशी अपने सम्पूर्ण रुप से सम्भव नहीं है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि प्रत्येक वस्तु के लिए प्रयास करते रहना हमारा ध्येय होना चाहिए। हम अपने ध्येय के प्रति जागरुक रहें, भले ही हम केवल कुछ ही वस्तुओं के लिए स्वदेशी सिद्धान्त लागू करें और उन वस्तुओं का उपयोग अस्थायी रुप से कम से कम करें जो हमारे देश में उपलब्ध नहीं होती है।[5]

गाँधी ने स्वदेशी को स्वराज्य तथा स्वालम्बन का पर्यायवाची सिद्धान्त बताया है। स्वदेशी का अभिप्राय उनके अनुसार विषद् अर्थ में यही है कि, ''विदेशी वस्तुओं का परित्याग और गृह निर्मित वस्तुओं का प्रयोग, ताकि गृह उद्योग का संरक्षण हो एवं विशेष रुप से उन उद्योगों का जिनके अभाव में भारत वर्ष भिक्षुक बन जायेगा, हमारा अवश्यमेव संरक्षण उद्देश्य है।[6]''

गाँधी ने स्वदेशी की अत्यधिक आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की उन्होंने तो आत्मा के लिए शरीर को भी परदेशी बताया तथा आत्मा को स्वदेशी बताया क्योंकि वे मानते हैं आत्मा को दूसरी आत्माओं से एकता साधने में शरीर रोकता है। अत: जो व्यक्ति स्वदेशी धर्म को जानता तथा मानता है वह उनके अनुसार देह का भी त्याग कर देगा। उन्होंने अपने पास के लोगों का सेवा में लगे रहना तथा उनके प्रति प्रेम होना भी स्वदेशी धर्म बताया है। स्वदेशी का अर्थ वह भावना है जो व्यक्ति को दूर की वस्तु के लिए त्याग तथा अपने इर्द-गिर्द के वातावरण के प्रयोग तथा उसकी सेवा के लिए मर्यादित करती है। हमें अपने निकट के पड़ोस की अवहेलना तथा दूरस्थ पड़ोसी की सेवा नहीं करनी चाहिए। स्वदेशी आत्मिक शैली की बहुमुखी देशभक्ति है। गाँधी की स्वदेशी विचारधारा सांस्कृतिक, दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक तथा आर्थिक सभी क्षेत्रों को अनुप्राणित करती है।

गाँधी ने स्वदेशी को अहिंसा के साथ जोड़ते हुए कहा, ''स्वदेशी में स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। अपने विशुद्ध रुप में स्वदेशी सब की सेवा का सर्वोत्तम रुप है। स्वदेशी का सच्चा समर्थक कभी भी किसी के भी प्रति विरोधी भावनाओं से प्रेरित नहीं होगा। स्वदेशी घृणा का सिद्धान्त नहीं है। यह नि:स्वार्थ सेवा का सिद्धान्त है जिसकी जड़ें विशुद्ध अहिंसा या प्रेम में है।[7]''

स्वदेशी के विभिन्न तत्व

स्वदेशी के व्रत या सिद्धान्तों को अपनाने में हमें कई तत्वों को भी अपनाना होगा, जो अप्रत्यक्ष रुप से स्वदेशी के ही स्वरुप हैं, ये तत्व है-

मातृभाषा

गाँधी ने यह आग्रहपूर्वक कहा कि वे स्वराज्य सिद्धान्त के प्रतिस्थापना के समय अपनी मातृभाषा का प्रयोग करेंगे। उन्होंने विदेशी माध्यम की आलोचना करते हुए कहा, ''विदेशी माध्यम ने हमारे बालकों को अपने ही देश में लगभग विदेशी बना डाला है वर्तमान पद्धति का सबसे बड़ा दु:खद परिणाम यह है कि विदेशी माध्यम ने हमारी देशी भाषाओं के विकास को रोक दिया है।[8]''

उन्होंने अत्यन्त दु:ख के साथ कहा कि हम स्वराज्य की बात भी पराई भाषा में करते हैं। उन्होंने कहा, ''यह क्या कम अन्याय की बात है कि

अपने देश में अगर मुझे इंसाफ चाहिए हो तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना पड़ेगा।[9]''

गाँधी ने स्वदेशी भाषा के प्रयोग पर बल दिया। उन्होंने कहा जो लोग अंग्रेजी पढ़े हुए हों उनकी सन्तानों को भी मातृभाषा सिखानी चाहिए। बालक जब पुख्ता उम्र के हो जाएँ तब भले ही वे अंग्रेजी शिक्षा पाए और वह भी उसे मिटाने के इरादे से न कि उससे पैसे कमाने के इरादे से।[10]''

गाँधी ने सबसे पहले धर्म या नीति की शिक्षा तथा फिर हर पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी का अपनी भाषा का जिसमें हिन्दू को संस्कृत, मुसलमान को अरबी, पारसी को फारसी व सबको हिन्दी का ज्ञान होना आवश्यक माना। इन्होंने स्वदेशी धर्म के पालन में स्वदेशी भाषा के प्रयोग को आवश्यक तत्व के रुप में माना।

ग्राम उद्योग

गाँधी ने विदेश में बनने वाले माल की तुलना में स्वदेशी में निर्मित माल को महत्त्व दिया। उन्होंने छोटे-छोटे उद्योगों को महत्वपूर्ण बताया और साथ ही यह कहा कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता की सामग्री स्वयं ही पैदा करे, तो एक दिन इस देश का प्रत्येक व्यक्ति स्वावलम्बी होगा।

उन्होंने कहा, ''स्वदेशी व्रत का पालन करने वाला हमेशा अपने आस-पास निरीक्षण करेगा और जहाँ-जहाँ पड़ोसी की सेवा की जा सकती है अर्थात् जहाँ-जहाँ उनके हाथ का तैयार किया हुआ आवश्यक माल होगा, वहाँ-वहाँ वह दूसरा छोड़कर उसे लेगा, फिर क्यों न ऐसा हो। लेकिन जो वस्तु स्वदेश में नहीं बनती अथवा महाकष्ट से बन सकती है, वह परदेश द्वेष के कारण अपने देश में बनाने बैठ जाए तो उसमें स्वदेशी धर्म नहीं है। स्वदेशी धर्म का पालन करने वाला परदेशी का भी द्वेषी नहीं है। यह प्रेम में से, अहिंसा में से पैदा हुआ सुन्दर धर्म है।[11]''

गाँधी ने स्वदेशी में निर्मित वस्तुओं के उत्पादन तथा उपयोग को स्वदेशी व्रत से जोड़ते हुए कहा, ''स्वदेशी का अर्थ है कि मुझे अनेक पड़ोसियों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए और उद्योगों की कमियों को दूर करके उन्हें ज्यादा सम्पूर्ण और सक्षम बनाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। अगर भारत में व्यापार की कोई वस्तु विदेशों से न लायी गई होती तो हमारी भूमि में दूध और मधु की नदियाँ बहती होती। भारतीय अपने जीवन का उत्तम निर्वाह तभी कर सकता है जब वह अपने प्रयत्न से या दूसरों की मदद लेकर अपनी आवश्यकता की सारी वस्तुएँ अपनी सीमा में उत्पन्न करने लगे। उसे नाशकारी प्रतिस्पर्धा के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।

स्वदेशी धर्म के अनुसार प्रत्येक भारतवासी को भारत में बने हुए कपड़े पहनने चाहिए और भारत में ही पैदा हुआ अन्न खाना चाहिए, स्वदेशी धर्म अपनाने पर वे कोई दूसरे कपड़े पहनने या दूसरे अन्न खाने से इन्कार कर देंगे। उन्होंने कहा कि अपनी सम्पति का उपयोग हम इस तरह करें कि उससे पड़ोसी को कोई कष्ट न हो।[12]''

परन्तु गाँधी के उपरोक्त वाक्य कहने का यह अर्थ नहीं था कि वे विदेशी चीजों से घृणा करने के लिए कहते थे। गाँधी जी तो मानव मात्र की सेवा की बात करते थे। स्वदेशी का सच्चा उपासक कभी भी विदेशी से घृणा नहीं कर सकता। कोई चीज विदेशी है इसलिए उसका बहिष्कार नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उन वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार किया जाना चाहिए जिनके आयात से तत्सम्बन्धित स्वदेशी हितों को नुकसान पहुँचने की सम्भावना हो।

खादी

गाँधी ने खादी को स्वदेशी का अति महत्वपूर्ण हिस्सा बताया और इसी उद्देश्य से गाँधी ने खादी का इतना अधिक प्रचार किया। खादी गाँधीजी के विचार में एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके कई कारण हैं- एक तो यह कि हमारा देशी गृह उद्योग है इसलिए इसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए। दूसरे हमारे किसान अपने फुरसत के समय को यों ही न गँवा दें इसलिए भी खादी आवश्यक है। इन्हीं कारणों से गाँधी ने खादी को अपने स्वदेशी सिद्धान्तों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना था। उन्होंने कहा, ''इसे धर्म के पालन से परदेशी मिल वालों को कोई नुकसान होता है, ऐसा कोई न माने। अगर चोर को चुराई हुई चीज लौटानी पड़े या चोरी करने से रोका जाये, तो उसमें उसे नुकसान नहीं है, लाभ है। अगर पड़ोसी शराब पीना या अफीम खाना छोड़ दे तो उसमें अफीम दुकानदार को नुकसान नहीं लाभ है, अयोग्य ढंग से जो अर्थ साधते हो उनके उस का अगर नाश हो, तो उससे उन्हें और जगत को लाभ है।[13]'' साथ ही खादी पहनकर स्वदेशी का दिखावा करने वालों के लिए उन्होंने कहा, ''वे लोग जो चरखे से सूत जैसे-जैसे कातकर और खादी पहन-पहनकर यह मान लेते हैं कि स्वदेशी धर्म का पूरा पालन हो गया वे मोह में डूबे हुए हैं। खादी सामाजिक स्वदेशी की प्रथम सीढ़ी है, वह स्वदेशी धर्म की आखिरी हद नहीं है। ऐसे खादीधारी देखे गये हैं जो और सब चीजें परदेशी खरीदते हैं। वे स्वदेशी धर्म का पालन नहीं करते। वे तो सिर्फ चालू बहाव में बह रहे हैं।[14]'' उन्होंने खादी ग्रामोद्योग का अर्थ बताते हुए कहा- ''खादी का मूल उद्देश्य प्रत्येक गाँव को अपने भोजन एवं कपड़ों में स्वावलम्बी बनाना है।[15]'' मिल और खादी दोनों के साथ चलने के बारे में वे कहते हैं- ''सूत मिल के साथ-साथ चरखे न चल सकने के लिए कोई कारण नहीं है। जिस तरह घर का रसोईघर भी चलता है और होटल भी चलता है, उसी तरह ये दोनों साथ-साथ चल सकते हैं।[16]'' गाँधी ने इस खादी के वस्त्र पहनाकर एक सिपाही के रुप में अपने देश को स्वावलम्बी बनाया तथा स्वराज्य की प्राप्ति की। स्वदेशी धर्म में अपने देश के धर्म, इसकी भाषा, राजनैतिक पद्धति और उपयोग की वस्तुओं को अंगीकार करना आवश्यक माना जाता है।[17]'' परन्तु स्वदेशी की धारणा बहिष्कार वाली धारणा नहीं है तथा इसमें कोई घृणा का भाव नहीं है। यह कोई स्वार्थ अन्तर्निहित है, जो वह उच्च कोटि का स्वार्थ है जो उच्चतम कोटि के परार्थ से भिन्न नहीं है।

विशुद्ध अर्थ में यह सार्वभौम सेवा का शिखर है।[18] क्योंकि पड़ोसी धर्म के पालन करने पर एक-दूसरे के प्रसंग में समस्त जगत की सेवा हो जाती है।

स्वदेशी व्रत के अनुसार सभी प्रकार के विदेशी सामानों का त्याग न कर उन्हीं वस्तुओं का त्याग किया जाता है जिनका उत्पादन अपने देश में होता है तथा जिनके उपयोग के बिना हमारे समाज के कुछ अंग अपनी आजीविका खो देते हैं। हम अपनी आवश्यकता की चीजों को विदेशों से मँगा सकते हैं, विदेशी पूँजी और प्रतिभा का प्रयोग कर सकते हैं, शर्त केवल इतनी ही है उससे अपने देश के नागरिकों की प्रगति अवरुद्ध न हो और उसका नियंत्रण भारत द्वारा हो।[19]

गाँधी का स्वदेशी व्रत संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ प्रतिद्वंद्विता और भौतिकता आदि दोषों से मुक्त है। यह अहिंसा और प्रेम का ही पर्याय है। इसके पालन से समाज की अर्थव्यवस्था टिकाऊ बनती है। गाँधीजी ने जब भारतीय उद्योगों की दुर्दशा देखी तो उन्हें अत्यधिक दुःख हुआ। प्रत्येक भारतीय अपने खान-पान, वेशभूषा तथा नित्य उपयोग की वस्तुओं में विदेशी वस्तुओं का उपयोग करने लगा था। तब गाँधी ने तुरन्त अपनी प्रार्थनाओं में स्वदेशी व्रत को जोड़ दिया तथा वस्तुओं का बहिष्कार प्रारम्भ किया।

सर्वप्रथम उन्होंने कपड़े जो विदेशी थे उनका बहिष्कार किया जो हमारी वस्त्र बनाने की क्षमता व कारीगरी को नष्ट कर रहा था। उन्होंने विदेशी वस्त्र को बायकाट करके अपने देश की कारीगरी को दिखाया और सभी को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास किया। उनकी इस कार्यप्रणाली व स्वदेशी चिन्तन से राष्ट्रीय भावना जागृत हुई तथा लोगों के आपसी सम्बन्ध सुदृढ़ हुए। उन्होंने स्वदेशी में केवल वस्त्र ही नहीं लिया, अपितु खाने-पीने की चीजें, उत्पादन की व्यवस्था, उसमें लगी पूँजी तथा लगी कुशलता सभी को स्वदेशी व्रत में ले लिया।

निष्कर्ष

गाँधीजी का ऐसा विचार था कि यदि भारतीय समाज को शान्तिपूर्ण मार्ग पर सच्ची प्रगति करनी है, तो अनेक वर्ग को निश्चित रुप से स्वीकार कर लेना होगा कि किसान के भीतर भी वैसी ही आत्मा है जैसी उनके भीतर है और अपनी दौलत के कारण वे गरीबों से श्रेष्ठ नहीं है। जैसा जापान के उमरावों ने किया उसी तरह उन्हें भी अपने आपको संरक्षक मानना चाहिए। उनके पास जो धन है और यह समझकर रखना चाहिये कि उसका उपयोग उन्हें अपने संहरक्षित किसानों की भलाई के लिए करना है। उस हालत में वे अपने परिश्रम के कमीशन के रुप में वाजिहब रकम से ज्यादा नहीं लेंगे। इस समय धनिक वर्ग के सर्वथा अनावश्यक दिखावे और फिजूलखर्ची में तथा जिन किसानों के बीच वे रहते हैं उनके गंदगी भरे वातावरण और कुचल डालने वाले दारिद्र्य में कोई अनुपात नहीं है। इसलिये एक आदर्श जमींदार किसानों का बहुत कुछ बोझा, जो वे अभी उठा रहा है, एकदम घटा देगा। वह किसानों के गहरे संपर्क में आयेगा और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये वह स्वयं अपने को दरिद्र बना लेगा। वह अपने किसानों के बच्चों के साथ-साथ अपने खुद के बच्चों को भी पढ़ायेगा वह गाँव के कुओं और तालाब को साफ करायेगा। वह किसानों को अपनी सड़कें और अपने पाखाने खुद आवश्यक परिश्रम करके साफ करना सिखायेगा। वह किसानों के लिए अपने बाग-बगीचे निःसंकोच भाव से खोल देगा, ताकि वे स्वतन्त्रता से उनका उपयोग करें या कर सकें। जो गैर-जरुरी इमारतें वह अपनी मौज के लिये रखता है, उनका उपयोग अस्पताल, स्कूल या ऐसी ही अन्य बातों के लिए करेगा।

यदि पूँजीपति वर्ग काल का संकेत समझकर सम्पत्ति के बारे में अपने इस विचार को बदल डालें कि उस पर उनका ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है, तो जो सात लाख धूरे आज गाँव कहलाते हैं उन्हें आनन फानन में शान्ति, स्वास्थ्य और सुख के धाम बनाया जा सकता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यही पूँजीपति जापान के उमरावों का अनुसरण करें, तो वे सचमुच कुछ खोयेंगे नहीं और सब कुछ पायेंगे। केवल दो मार्ग हैं जिनमें से उन्हें अपना चुनाव कर लेना है। एक तो यह कि पूँजीपति अपना अतिरिक्त संग्रह स्वेच्छा से छोड़ दें और उसके परिणाम स्वरुप सबको वास्तविक सुख प्राप्त हो जाय। दूसरा यह कि अगर पूँजीपति समय रहते न चेतें तो करोड़ों जाग्रत किन्तु अज्ञान और भूखे लोग देश में ऐसी गड़बड़ मचा दें, जिसे एक बलशाली हुकूमत की फौजी ताकत भी नहीं रोक सकती। मैंने यह आशा रखी है कि भारतवर्ष इस विपत्ति से बचने में सफल रहेगा। उत्तर प्रदेश के कुछ नौजवान ताल्लुकेदारों से हुयी भेंट के आधार पर गाँधीजी ने ये विचार प्रकट किये और आशान्वित हुये।[20]

गाँधीजी का ऐसा विचार था कि वे जमींदारों और दूसरे पूँजीपतियों का अहिंसा के द्वारा हृदय परिवर्तन करना चाहते थे। यही कारण है वर्ग युद्ध की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते। कम से कम संघर्ष का रास्ता ही गाँधीजी के अहिंसा के प्रयोग का एक आवश्यक हिस्सा है। जमीन पर मेहनत करने वाले तथा अपने पसीने की बूँद बहाने वाले कृषक तथा मजदूर क्यों ही अपनी ताकत (अन्त: व वाह्य) पहचान लेंगे, त्यों ही यह निश्चित हे कि जमींदारी की बुराई का बुरापन दूर हो जायेगा। अगर वे लोग कह दें कि उन्हें सभ्य जीवन की आवश्यकता के अनुसार बच्चों के भोजन-वस्त्र और शिक्षा आदि के लिये जब तक काफी मजदूरी नहीं दी जायेगी, तब तक वे जमीन को जोतेंगे-बोयेंगे ही नहीं तो जमींदार बेचारा कर ही क्या सकता? सच तो यह है कि मेहनत करने वाला जो कुछ पैदा करता है उसका वहीं मालिक है। यदि मेहनत करने वाले बुद्धिमता पूर्वक एक हों जायें तो एक ऐसी ताकत बन जायेंगे जिसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। इसीलिये गाँधीजी वर्ग-युद्ध की कोई जरुरत नहीं देखते हैं। उनका ऐसा मानना था कि यदि वे उसे अनिवार्य मानते तो उसका प्रचार करने में और

लोगों को उसकी तालीम देने में मुझे कोई संकोच नहीं होता।[21]

किसानों का वे भूमिहीन मजदूर हों या मेहनत करने वाले जमीन-मालिक हों-स्थान पहला है। उनके परिश्रम से ही पृथ्वी उपजाऊ और समृद्ध हुयी है और इसीलिये सच कहा जाय तो जमीन उनकी ही या होनी चाहिये, जमीन से दूर रहने वाले जमींदारों की नहीं। लेकिन अहिंसक पद्धति में मजदूर या किसान इन जमींदारों से उनकी जमीन बलपूर्वक नहीं छीन सकता। उसे इस तरह काम करना चाहिये कि उसका बलपूर्वक नहीं छीन सकता। उसे इस तरह काम करना चाहिये कि उसका शोषण करना जमींदार के लिये असंभव हो जाय। किसानों में आपस में घनिष्ट सहकार होना नितान्त आवश्यक है। इस हेतु की पूर्ति के लिये जहाँ वैसी समितियाँ न हों वहाँ आवश्यक होने पर उनका पुनर्गठन होना चाहिये। किसान ज्यादातर अनपढ़ हैं। स्कूल जाने की उमर वालों को और बालिगों को शिक्षा दी जानी चाहिये। शिक्षा पुरुषों और स्त्रियों दोनों को ही जानी चाहिये। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की मजदूरी इस हद तक बढ़ायी जानी चाहिये कि वे निश्चित रुप से सभ्य जीवन बिता सकें। यानी उन्हें संतुलित भोजन और आरोग्य की दृष्टि से जैसे चाहिये वैसे घर और कपड़े मिल सके।[22]

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *पसरिचा, आसु, ''गांधी इन ट्वन्टी फर्स्ट सेन्चुरी, दीप एन्ड दीप पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2011*
2. *सीबी के जोसेफ, जॉन मूलाक कट्टू, भारत महोदया (सम्पा.) नॉन वायलेन्ट स्ट्रगल्स ऑफ द ट्वन्टीएथ सेन्चुरी : रेट्रोस्पेक्ट एन्ड प्रोसपेक्ट, इन्स्टीटयूट ऑफ द सेन्चुरी : रेट्रोस्पेक्ट एन्ड प्रोसपेक्ट, इन्स्टीटयूट ऑफ गांधीयन स्टडीज, वर्धा एण्ड गांधी पीस फाउण्डेशन, नई दिल्ली-2008*
3. *दधीच नरेश, ''नॉन वायलेंस, पीस, एण्ड पोलटिक्स, अण्डरस्टेंडिंग गांधी, अविष्कार प्रकाशक व वितरक, जयपुर 2003*
4. *गुहा रामचन्द्र, ''इन्डिया आटर गांधी: द हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्डस लारजेस्ट डेमोक्रेसी, मैकमिलन, लन्दन 2007*
5. *गाँधी, एम.के. : सोशल थॉट ऑफ हिज राइटिंग्स एण्ड ऑफ स्पीचेज, पृष्ठ संख्या 343*
6. *यंग इंडिया : 17 जून, 1936.*
7. *श्री प्यारेलाल का लेख : गाँधी जी की विदेश यात्रा।*
8. *यंग इंडिया : 1 सितम्बर, 1921.*
9. *गाँधी, एम.के. : हिन्द स्वराज, पृष्ठ संख्या 75.*
10. *गाँधी, एम.के. : हिन्द स्वराज, पृष्ठ संख्या 75-76.*
11. *गीता : बोध मंगल प्रभात, पृष्ठ संख्या 105.*
12. *स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ मिषनरी कांफ्रेंस मद्रास : 14 फरवरी, 1996, पृष्ठ संख्या 336.*
13. *मंगल प्रभात : पृष्ठ संख्या 57.*
14. *मंगल प्रभात : पृष्ठ संख्या 57.*
15. *यंग इंडिया : 14 अक्टूबर, 1920.*
16. *यंग इंडिया : 26 जुलाई, 1920.*
17. *प्रभु आर.के., राव, यू.के. : द माइण्ड ऑफ महात्मा गाँधी, पृष्ठ संख्या 410-41, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई*
18. *प्रभु आर.के., राव, यू.के. : द माइण्ड ऑफ महात्मा गाँधी, पृष्ठ संख्या 258.*
19. *प्रभु आर.के., राव, यू.के. : द माइण्ड ऑफ महात्मा गाँधी, पृष्ठ संख्या 413.*
20. *यंग इण्डिया, 5-12-29.*
21. *हरिजन, 5-12-36.*
22. *दि बाम्बे क्रानिकल, 28 -10-44.*

भारत-चीन : बनते बिगड़ते रिश्ते

अनिल कुमार शर्मा
शोधार्थी, महात्मा ज्योतिराव फूले विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

पश्चिमी साम्राज्यवाद के उदय से पहले भारत और चीन एशिया के महाशक्ति थे। चीन का अपने आसपास के इलाकों पर भी काफी प्रभाव था। चीनी राजवंशों के लम्बे शासन में मंगोलिया, कोरिया, हिन्द-चीन के कुछ इलाके और तिब्बत इसकी अधीनता मानते रहे थे। भारत के भी अनेक राजवंशों और साम्राज्यों का प्रभाव उनके अपने राज्य से बाहर भी रहा था। भारत हो या चीन इनका प्रभाव सिर्फ राजनैतिक नहीं था। यह आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक भी था पर चीन और भारत अपने प्रभाव क्षेत्रों के मामले में कभी नही टकराये थे। इसी कारण दोनों के बीच राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रत्यक्ष सम्बन्ध सीमित ही थे। परिणाम यह हुआ कि दोनों देश एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह से नहीं जान सके और जब बीसवीं सदी में दोनों देश एक-दूसरे से टकराये तो दोनों को ही एक-दूसरे के प्रति विदेश नीति विकसित करने में मुश्किलें आई।

अंग्रेजी राज से भारत के आजाद होने और चीन द्वारा विदेशी शक्तियों को निकाल बार करने के बाद यह उम्मीद जगी थी कि ये दोनों मुल्क साथ आकर विकासशील दुनिया और खास तौर से एशिया के भविष्य को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे। पं. जवाहर लाल नेहरू 1954 में चीन गये और पंचशील को आधार बनाकर कई समझौते किये। हिन्दी-चीनी भाई-भाई का नारा भी लोकप्रिय हुआ। सीमा विवाद पर चले सैन्य संघर्ष ने इस उम्मीद को समाप्त कर दिया। आजादी के तत्काल बाद 1950 में चीन द्वारा तिब्बत को हड़पने तथा भारत-चीन सीमा पर बस्तियाँ बनाने के फैसले से दोनों देशों के बीच सम्बन्ध एकदम गड़बड हो गये। भारत और चीन दोनों देश अरुणाचल प्रदेश के कुछ इलाकों और लद्दाख के अक्साई चीन क्षेत्र पर प्रतिस्पर्धी दावों के चलते 1962 में दोनों देशों के मध्य युद्ध हुआ।

1962 के युद्ध में भारत के सैनिकों को पराजय झेलनी पड़ी और भारत-चीन सम्बन्धों पर दीर्घकालिक असरहुआ। 1976 तक दोनों देशों के मध्य कूटनैतिक सम्बन्ध समाप्त ही रहे। चीन का रुख भारत के प्रति सीमा विवाद के चलते कभी अच्छा नहीं रहा है। आज भी दोनों देशों के मध्य किसी ना किसी बात को लेकर विवाद होता रहता है। अमेरिका के साथ बढ़ती भारत की नजदीकियों से चिन्तित चीन अपनी ताकत को बढ़ाने के लिये व पाकिस्तान ने कश्मीर के लिये दोनों देशों के मध्य में अनेक समझौते किये हैं। ताकि चीन भारत को घेर सके। चीन पाकिस्तान में निवेश के बहाने काशगर (चीन) से ग्वादर (पाकिस्तान) तक आर्थिक कॉरिडोर बनाकर चीन दक्षिण एशिया में अपनी ताकत बढ़ाने के साथ भारत को भी साधने की कोशिशों में जुटा है। चीन व पाकिस्तान का आर्थिक कॉरिडोर चीन के लिये यह अर्थिक बेल्ट है। इसलिये चीनी नजरिये से बहुत अहम है। इसके पीछे चीन का पहला मकसद मलक्का जलडमरु मध्य की दुविधा से पार पाना जिसका ज्यादातर इस्तेमाल उर्जा आपूर्ती के लिये होता है। मलक्का अमेरिका द्वारा नियंत्रित होता रहा है। इसका तोड़ निकालने के लिये यह कॉरिडोर अहम होगा। इसका मकसद इसके जरिये भारत के खिलाफ संतुलन स्थापित करना है। चीन की समुद्री नीतियाँ हमेशा से ही अपने हित साधने वाली रही हैं चाहे वो

दक्षिण चीन सागर विवाद हो या जापान के साथ द्वीप समूहों का मसला। भारत ने चीनी पनडुब्बी के हिन्द महासागर में उतारने पर अपनी आपत्ति जताई है। चीन ने भारत को चेतावनी वाले लहजे में जवाब दिया कि भारत हिन्द महासागर को ''आँग समझने की धारणा परेशानी का सबक बन सकती है। भारत ने अपने पड़ोसी देशों में जहाँ-जहाँ 'वैक्यूम (जगह) छोड़ा वहाँ-वहाँ चीन ने अपने पांव जमाने शुरु कर दिये। भारत ने श्रीलंका को भी नजरंदाज किया। हमारे पास वहाँ बंदरगाह बनाने का प्रस्ताव था लेकिन पहल नहीं की गई तो चीन ने कमान सम्भाल ली। इसी तरह म्यांमार के साथ पाइपलाइन बिछाने की बात हुई थी उसमें भी भारत ने दिलचस्पी नहीं दिखाई और वहाँ चीनी पहुँच गये।चीन ने नेपाल के साथ भी अपने सम्बन्ध स्थापित किये हैं।

भारत ने भी ईरान में आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ाने के लिये चाबाहर पोर्ट का संचालन शुरु किया है। यह भारत के सामरिक लिहाज से भी अहम है। चाबाहर पोर्ट भारत के लिये अफगानिस्तान और सेंट्रल एशिया के दरवाजे खोलता है। भारत यहाँ से पाकिस्तान और चीनी गतिविधियों पर बराबर नजर बनाये रख सकता है। इसके बाद धीरे-धीरे दोनों के बीच सम्बन्धों में सुधार हुआ। 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में चीन का राजनीतिक नेतृत्व बदला। चीन की नीति में भी अब वैचारिक युद्धों की जगह व्यवहारिक युद्ध प्रमुख होते गये। इसलिये चीन भारत के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिये विवादास्पद मामलों को छोड़ने को तैयार हो गया। 1981 में सीमा विवादों को दूर करने के लिये वार्ताओं की श्रृंखला भी शरु की गई।

शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद से भारत-चीन सम्बन्धों में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। अब इसके सम्बन्धों का रणनीतिक ही नहीं, आर्थिक पहलू भी है। दोनों ही खुद को विश्व-राजनीति की उभरती शक्ति मानते हैं और दानों ही एशिया को अर्थव्यवस्था और राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना चाहेंगे।

दिसम्बर 1988 में राजीव गांधी द्वारा चीन का दौरा करने से भारत-चीन सम्बन्धों को सुधारने के प्रयासों को बढ़ावा मिला। राजीव गांधी 19 से 23 दिसम्बर 1988 तक चीन की यात्रा की और विज्ञान व तकनीक में सहयोग सहित कुछ समझौते किये। सीमा विवाद को आपसी सहमति से सुलझाने का वादा किया गया। इस प्रकार भारत व चीन के मध्य आपसी रिश्तों में काफी सुधार हुआ।

व्यापार के लिये सीमा पर चार पोस्ट खोलने के समझौते भी किये हैं। दोनों देशों के मध्य आपसी रिश्तों की बर्फ को पिघलाने के लिये 1993 में नर सिम्हा राव ने चीन की यात्रा के दौरान सीमा पर शांति बनाये रखने का समझौता किया। 2003 में अटल बिहारी वाजपेयी की चीन यात्रा भी कई मायने में ऐतिहासिक कही जायेगी कि इस यात्रा के दौरान वाजपेयी ने पूरे सीमा विवाद को नया मोड़ देने की कोशिश की। भारत और चीन के बीच विशेष राजनीतिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति हुई जिन्हें इस पूरे सीमा विवाद का अध्ययन कर अपनी राय देनी थी। भारत की ओर से ये विशेष प्रतिनिधि अब तक राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार रहे हैं। इन विशेष प्रतिनिधियों के बीच अब तक 17 राउंड की बातचीत हो चुकी है। इस सारी कवायद का लब्बोलुआब यह है कि सीमा विवाद का हल किसी मैप या इतिहास से नहीं राजनीतिक इच्छाशक्ति से ही हो सकता है। 17 राउंड की बैठकों के बावजूद सीमा विवाद का हल तो नहीं हो सका लेकिन संतोष की बात यह है कि सीमा पर घुसपैठ की तमाम खबरों के बावजूद आज तक किसी के हताहत होने की खबर नहीं है।

2008 में मनमोहन सिंह की चीन यात्रा भी काफी सकारात्मक कही जा सकती है। 2013 में भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की चीन यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच में बॉर्डर एग्रीमेन्ट हुआ था। जिससे सीमा पर दोनों देशों की फौजों के द्वारा बरते जाने वाले प्रोटोकॉल पर जोर दिया गया था। 1996 में चीनी राष्ट्रपति च्यांग जमिन पहली बार किसी चीनी राष्ट्रपति ने भारत की यात्रा की। आपसी सहयोग से पुराने विवाद समाप्त किये जा सकते हैं। चीनी राष्ट्रपति च्यांग जमिन की यात्रा को सफल कहा जा सकता है। क्योंकि पहली बार चीनी राष्ट्रपति ने पाकिस्तान को जम्मू कश्मीर का मुद्दा आपसी बातचीत से सुलझाने की सलाह दी। 2006 में चीनी हू चिंयाओं ने भारत में कहा कि सीमा विवाद को एक तरफ रख अन्य क्षेत्रों में आपसी सहयोग की दिशा में तेजी लाने का आश्वासन दिया। रक्षा क्षेत्र में सहयोग का समझौता किया गया। नाभिकीय उर्जा के क्षेत्र में सहयोग का संकल्प किया। दानों देशों के बीच व्यापार के लिये नाथुला दर्रा खोला गया जो कि भारत चीन के युद्ध के समय से बंद पड़ा था। भारत और चीन के आपसी सम्बन्धों को सुलझाने के लिये भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी व शी चिनफिंग की 2014 की भारत यात्रा को दोनों देशों के महज बीस से अधिक समझौते है। शी चिनफिंग छह लाख करोड़ रुपये निवेश का प्रस्ताव दिया है। दोनों देश सीमा विवाद के मुद्दे को अलग रखकर भारत और चीन दोनों देश दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थायें हैं। दोनों के बीच व्यापार 2015 तक 100 अरब डालर के रिकार्ड स्तर को छूने की उम्मीद है। भारत व चीन 2006 से ही ब्रिक्स के संस्थापक सदस्य हैं। हाल में ब्रिक्स देशों में क्रेडिट की समस्या को हल करने के लिये ब्रिक्स विकास बैंक की स्थापना की गई। इसका पहला प्रमुख भी भारतीय बनाया गया है। ब्रिक्स में भागीदारी से दोनों के बीच सम्बन्ध गहरे होंगे। दोनों देश दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक हैं और सदियों से परस्पर सह अस्तित्व की भावना के साथ रहते आये हैं। भारत से बौद्ध धर्म का चीन में प्रसार। बौद्ध धर्मवालियों की बड़ी आबादी दोनों देशों में है। परम्परागत उपचार की सुदृढ़ व्यवस्थायें हैं। ये सांस्कृतिक सूत्र भी दोनों देशों में सम्बन्ध सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। चीन के पास बुलेट ट्रेन और लघु उधोग स्तरीय तकनीक है तो भारत ने भी सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में विशेष स्थान हासिल किया है। यह भी सम्बन्ध सुधारने में काफी सहायक हो सकते हैं।

दोनो देश नाभिकीय ऊर्जा तथा बायोटेक्नॉलोजी के क्षेत्र में सक्रिय

सहयोग कर रहे हैं। 2015 में भारतीय प्रधानमंत्री की चीन यात्रा भी काफी महत्वपूर्ण साबित हुई। इस यात्रा के तहत चीन भारत में स्मार्ट सिटी बनाने में सहयोग का आश्वासन दिया है। ये दोनों देश जानते हैं कि अगर हम कुछ विवादित मुद्दों को पीछे नहीं छोड़ेंगे तो हम आर्थिक उन्नति नहीं कर सकेंगे। क्योंकि दोनों ही देश विश्व में दो महाशक्तियों के रुप में उभर रहे हैं। चीन जानता है कि अपना सामान भारतीय बाजार में बेच सकता है। इसलिये वह भारत से सम्बन्ध सुधारना चाहता है। अब दोनों देशों को समझ आ गया है कि भारत चीन के रिश्तों में पड़ी धुंध आपसी सहयोग से ही छटेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *Challenge & Strategy राजीव सीकरी*
2. *Indian's Foreign policy पृष्ठ सं. 32-33 सुमित गांगुली*
3. *India-2015 पृष्ठ सं. 15 &20 &Publication Division*
4. *History of Morden India बिपिन चन्द्र*
5. *Social Problems in India पृष्ठ सं. 45-50 राम आहूजा*
6. *राजस्थान पत्रिका पृष्ठ सं. 1-2 05-07-2015*
7. *राजस्थान पत्रिका पृष्ठ सं. 1 26-03-2015*
8. *दैनिक भास्कर पृष्ठ सं. 1 15-08-2014*
9. *राजस्थान पत्रिका पृष्ठ सं. 1-2 14-09-2015*
10. *Indian National Security पृष्ठ सं. 56-58 कान्ति पी वाजपेयी*
11. *Indian's Security एस. सी. दुबे*

मदनमोहन मालवीय की शैक्षिक विचारधारा

दिनेश कुमार गुप्ता
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ. साजिदा सादिक
प्राचार्या, एम.के.बी. महिला बी.एड. महाविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

युग प्रवर्तक धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ पं. मदनमोहन मालवीय हिन्दू धर्म तथा समाज के प्राण थे। उनकी प्रतिभा बहुआयामी थी, उन्होंने भारतवर्ष की सेवा कई रुपों में की है यथा - कवि, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी तथा शिक्षा शास्त्री। उनकी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना केवल एक नयी विद्या संस्था की स्थापना मात्र नहीं थी। यह बौद्धिक और साँस्कृतिक मुक्ति का राष्ट्रव्यापी आन्दोलन था। मालवीय जी एक कर्मयोगी महापुरुष थे, जिनमें अद्भुत उत्साह, आत्मविश्वास, कर्तव्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा तथा त्याग बलिदान था। जिसका ज्वलन्त उदाहरण विश्व की महान संस्था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है, जिसमें विश्व के कोने-कोने से विभिन्न विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त करने प्रतिभाशाली छात्र आते हैं।

यद्यपि मालवीय जी ने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर अन्य पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों की भाँति अलग से कोई विचार नहीं व्यक्त किया, परन्तु उन्होंने अपनी विचारधाराओं का मूर्त रुप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दिया है। उसी से उनकी शैक्षिक विचारधाराओं का पता लगाया जा सकता है।

1. शिक्षा के उद्देश्य - मालवीय जी की सनातन धर्म में अटूट आस्था थी। वे इसे संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे। सनातन धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन के चार उद्देश्य हैं - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। मालवीय जी शिक्षा द्वारा इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति पर बल देते थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रथम आवश्यकता स्वस्थ शरीर है। अत: शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य मनुष्य का शारीरिक विकास होना चाहिए। इनके अनुसार स्वस्थ शरीर के बाद दूसरी आवश्यकता है ज्ञान, बुद्धि और विवेक की, अत: शिक्षा द्वारा इनका विकास भी होना चाहिए। मालवीय जी सच्चे समाज सेवक और अपनी संस्कृति के सच्चे अनुयायी थे। ये शिक्षा द्वारा संस्कृति की रक्षा पर बहुत बल देते थे। चरित्र को ये मनुष्य का अति आवश्यक गुण मानते थे। अत: शिक्षा के द्वारा उसके विकास पर भी बल देते थे। ये शिक्षा द्वारा मनुष्य को अपनी रोजी रोटी कमाने योग्य भी बनाना चाहते थे। ये सच्चे राष्ट्रभक्त थे और शिक्षा द्वारा बच्चों में राष्ट्रीयता के विकास की बात करते थे। आत्मिक उन्नति को तो ये मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मानते थे। मालवीय जी मनुष्य जीवन के लौकिक व पारलौकिक दोनों पक्षों को समान महत्व देते थे। इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के दोनों पक्षों का विकास करने पर बल दिया। इन्होंने शिक्षा के जो उद्देश्य निश्चित किए वह इस प्रकार हैं -

1. शारीरिक विकास
2. मानसिक एवं बौद्धिक विकास
3. सामाजिक विकास
4. साँस्कृतिक विकास
5. नैतिक व चारित्रिक विकास

6. व्यावसायिक व आर्थिक विकास
7. राष्ट्रीयता का विकास
8. राजनैतिक जागरुकता
9. आध्यात्मिक उन्नति

2. शिक्षा की पाठ्यचर्या – मालवीय जी ने शिक्षा की पाठ्यचर्या की कोई क्रमबद्ध रुपरेखा तो प्रस्तुत नहीं की परन्तु उसके निर्माण के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिए हैं। इनके अनुसार पाठ्यक्रम हमारे धर्म व संस्कृति पर आधारित होना चाहिए। इन्होंने स्पष्ट किया कि हमें हमारे धर्म व संस्कृति का सही ज्ञान संस्कृत साहित्य से होता है, इसलिए भारतीयों को संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य रुप से करवाना चाहिए। हिन्दी इस देश के बहुसंख्यक वर्ग की भाशा है, अत: इसे राष्ट्रभाषा घोषित करना चाहिए। विज्ञान व तकनीकी ज्ञान के लिए अंग्रेजी भाषा जानना आवश्यक था इसलिए इन्होंने अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर भी बल दिया। उन्होंने पाठ्यक्रम में कला-कौशल, विज्ञान एवं तकनीक व व्यावसायिक शिक्षा को स्थान दिया। मालवीय जी कलाप्रेमी थे, ये कला को जीवन का अनिवार्य अंग मानते थे इसलिए इन्होंने शिक्षा की पाठ्यचर्या में कला को स्थान दिया। उन्होंने भौतिक व आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय अपने पाठ्य संगठन में किया है। उनका विचार था कि कोरी आध्यात्मिकता से मनुष्य का जीवन सुखी नहीं बनाया जा सकता है, इसके लिए भौतिक ज्ञान भी आवश्यक है।

3. शिक्षण विधियाँ – मालवीय जी परम्परावादी व्यक्ति थे अत: प्राचीन शिक्षण विधियों को उत्तम मानते थे। श्रवण, मनन और निदिध्यासन को तो ये अध्ययन-अध्यापन की सर्वोच्च विधि मानते थे। ये स्वयं अध्यापक रहे थे और प्राचीन व अर्वाचीन दोनों शिक्षण विधियों को कुछ अपने ही तरीकों से प्रयोग करते थे। मालवीय जी ने अलग-अलग विषयों के लिए अलग-अलग शिक्षण विधियों के चुनाव पर बल दिया है। यथा – धर्म व दर्शन पढ़ने के लिए मनन, चिन्तन तथा व्याख्या विधि को महत्वपूर्ण मानते थे। वैज्ञानिक व व्यावहारिक विषयों को पढ़ने के लिए क्रियात्मक व प्रयोग विधि को अच्छा मानते थे। मालवीय जी ने अन्वेषण को वैज्ञानिक विषयों के शोध के लिए आवश्यक माना है।

4. अनुशासन संकल्पना – मालवीय जी शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन का होना आवश्यक मानते थे, परन्तु ये अनुशासन से अर्थ आत्मानुशासन से लेते थे। दण्ड के भय से स्थापित व्यवस्था को ये अनुशासन नहीं मानते थे। वे प्रभावात्मक अनुशासन पर बल देते थे। वे कहते थे कि शिक्षक के व्यक्तित्व की ऐसी छाप विद्यार्थी पर पड़नी चाहिए कि उसके समस्त गुणों को वह सीख सके। वे अनुशासन के लिए दैनिक क्रियाओं को नियमित करने पर बल देते थे यथा - सन्ध्या, उपवास, व्रत, पूजा आदि। इन क्रियाओं के द्वारा आत्मा की शुद्धि व आत्मानुशासन की भावना विकसित होती है।

5. शिक्षक संकल्पना – मालवीय जी का दृष्टिकोण शिक्षकों के विषय में आदर्शवादी था। वे प्राचीन गुरुओं के समस्त गुण अध्यापक में देखना चाहते थे। उनका विचार था कि शिक्षक को विषय का पण्डित, छात्रों से पिता तुल्य स्नेह रखने वाला, उसकी कठिनाईयों को समझने वाला, संयमी, अध्यवसायी, चरित्रवान, मृदुभाषी, सहनशील, भौतिकता से परे होना चाहिए। मालवीय जी धर्म, कर्म व त्याग अध्यापकों में आवश्यक मानते थे। उन्होंने अध्यापक को भावी समाज का निर्माता स्वीकार किया है। अत: उसे शिक्षा प्रक्रिया में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है।

6. शिक्षार्थी संकल्पना – मालवीय जी शिक्षार्थियों से ब्रह्मचर्य पालन की अपेक्षा करते थे। ये अपने शिष्यों को प्रात:काल उठने, नित्य संध्यावन्दन करने, बड़ों का आदर करने, शिक्षकों में श्रद्धा रखने और उनकी आज्ञा का पालन करने व प्राणी मात्र की सेवा करने का उपदेश देते थे। उन्होंने सादा जीवन उच्च विचार पर बल दिया है। इस सम्बन्ध में वे कहते थे ''सादा जीवन उच्च विचार आदर्श मत भूलो। स्त्री जाति का आदर करो, मन को विमल बना लो। आत्मा को शुद्ध कर लो। संसार में जहाँ जाओगे मान के अधिकारी होंगे।''

विद्यार्थी का कर्तव्य बताते हुए उन्होंने लिखा है ''सामान्य दशा में विद्या का अभ्यास करना, चरित्र को पुष्ट करना देश के हित अनहित बातों का ज्ञान सब प्रकार से बढ़ाना और अपनी बुद्धि, वाणी व शरीर को पुष्ट करना और इस प्रकार से स्वयं को देश की सेवा के लिए तैयार करना विद्यार्थी का परम धर्म है।''

7. विद्यालय संकल्पना – विद्यालय की तुलना भारतीय विचारधारा में तपोवन से की गई है। इसी विचार से महामना ने विश्वविद्यालय की स्थापना एक सुरम्य वातावरण में की थी। उन्होंने लिखा है ''हिन्दू विश्वविद्यालय की यह फैली हुई भूमि, हरी मखमली दूब से भरे सुहावने बड़े-बड़े खेल के मैदान, स्वच्छन्द उन्मुक्त वायु, माँ पतितपावनी गंगा का पुनीत पावन तट, संसार मे कहीं भी ऐसा दूसरा स्थान तुम्हारे लिए नहीं। प्रकृति के साथ जीवन को मेल मे लाने वाला इतना विशाल क्षेत्र संसार में अन्यत्र है तो मुझे मालूम नहीं।''

मालवीय जी ने अपने एक दीक्षान्त भाषण में संकेत किया था कि 'मैं यह आशा करता हूँ कि आप सब लोग मिलकर भगवान से यह प्रार्थना करेंगे कि ये विद्या मन्दिर अधिक संख्या में विशेषकर भारतीय जनता में नवज्योति व नवजीवन संचार के साधन बने तथा संसार के अन्य राष्ट्रों के सामने भारत के लुप्त गौरव का पुनरुत्थान करें।' इससे स्पष्ट है कि मालवीय जी शिक्षालय को समाज व राष्ट्र के नवजागरण का साधन बनाना चाहते थे, जैसाकि आज के युग में सभी जनतांत्रिक देशों में हो रहा है।

उपसंहार – पं. मदनमोहन मालवीय बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने तत्कालीन भारत के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक सभी क्षेत्रों में भाग लिया, नेतृत्व संभाला और डूबते हुए भारत को बचाने में बहुत बड़ा योगदान दिया। इन्होंने जीवन भर हिन्दी, हिन्दू व हिन्दुस्तान के उत्थान के लिए संघर्श किया। ये आदर्शों

के भी आदर्श थे। इन्होंने तिलक और गोखले जैसे राष्ट्रभक्त तैयार किए। उस समय इनके पीछे गुणवानों का एक समूह था, ये उनके मार्गदर्शक थे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कुछ पंक्तियाँ इनके ऊपर लिखी है -

भारत को अभिमान तुम्हारा, तुम भारत के अभिमानी।
पूज्य पुरोहित थे हम सब के, रहे सदैव समाधानी।।
तुम्हें कुशल याचक कहते हैं, किन्तु कौन तुम सा दानी।
अक्षय शिक्षा सत्र तुम्हारा है, हे ब्राह्मण ब्रह्म ज्ञानी।।
स्वयं मदन मोहन की तुममें तन्मयता है समा गई।
कल्याणी वाणी जन-जन के हित में धूनी रमा गई।।

मालवीय जी शिक्षा के क्षेत्र में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक के रुप में जाने पहचाने जाते हैं। इन्होंने उस समय भारतीय धर्म दर्शन में आस्था रखते हुए भी पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की शिक्षा की शुरुआत की थी। यह उस शुरुआत का ही परिणाम है कि देश में इंजीनियरिंग व तकनीकी शिक्षा का तेजी से विकास हुआ और हम अपना आर्थिक विकास कर सके। शिवपूजन सहाय के अनुसार- 'मालवीय महाराज इस युग के महर्षि थे। उनके बिना भारतीय संस्कृति आज अनाथ दीख पड़ती है।'

तपस्वी, ऋषियों, मुनियों, सन्तों, कवियों की काशी नगरी आज आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के मनीषियों की नगरी बन चुकी है। विष्वविद्यालय में देश तथा विदेश से प्रख्यात वैज्ञानिक, साहित्यकार, कलाकार आकर अपने व्याख्यानों द्वारा आधुनिकतम ज्ञान का संचार करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *गुप्त, लक्ष्मीनारायण व मदनमोहन (2005), ''महान भारतीय शिक्षा शास्त्री'', न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.- 191-213*
2. *ग्रोवर, इन्द्रा (2001), ''संसार के महान शिक्षा शास्त्री'', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं.- 264-281*
3. *लाल, रमन बिहारी व तोमर, गजेन्द्र सिंह (2008),'' विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक'' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ। पृ.सं.- 325-344*
4. *मंजु 'मन' (2014), ''महामना पं. मदन मोहन मालवीय,''प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.- 72-74*
5. *पाठक, समीर कुमार (2013), ''मदनमोहन मालवीय : विचार यात्रा,'' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली।*
6. *पाण्डेय, रामशकल (1999), ''विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ.सं. 271-280*
7. *पाण्डेय, रामशकल (2008), ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय पृष्ठ भूमि,'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ.सं.- 243-252*
8. *श्री वास्तव, यमुना प्रसाद (1961), ''महामना मालवीय'', अशोक पुस्तक मन्दिर, वाराणसी।*
9. *सिंह, ओ.पी. (2004), ''शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री'' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ.सं. 207-216*
10. *वर्मा, ईश्वरप्रसाद (2002), ''मालवीय जी के सपनों का भारत'', आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली।*

सूचना के अधिकार अधिनियम-2005 के अन्तर्गत लोक सूचनाधिकारियों के कर्त्तव्य एवं बाध्यताएँ

shodhshree@gmail.com

रोमा यादव
शोधार्थी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, जयपुर

स्वतन्त्र भारत में लोकतान्त्रिक संस्थानों को सुदृढ़ बनाने, राष्ट्र को विकास एवं प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करने, आम जनता को अधिकार युक्त बनाने, भ्रष्टाचार को पूर्ण रुप से समाप्त करने एवं देश के विकास में नागरिकों की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा ''सूचना का अधिकार अधिनियम-2005'' पारित किया गया।

सूचना से तात्पर्य :

सूचना के अन्तर्गत किसी भी स्वरुप में किसी भी प्रकार की सामग्री को सम्मिलित किया जाता है। इसमें इलेक्ट्रानिक रुप से धारित अभिलेख, दस्तावेज, ज्ञापन, ई-मेल, मत, सलाह, प्रेस विज्ञप्ति, परिपत्र, आदेश, लॉगबुक, संविदा, रिपोर्ट, कागजपत्र, नमूने, मॉडल, आंकड़ों सम्बन्धी सामग्री शामिल है। इसमें किसी निजी निकाय से सम्बन्धित ऐसी सूचना भी शामिल है जिसे लोकप्राधिकारी उस समय लागू किसी कानून के अन्तर्गत प्राप्त कर सकता है।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 नागरिकों को किसी भी ''लोक-प्राधिकरण'' से सूचना प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है। नागरिकों को सूचना उपलब्ध कराने में किसी भी लोक प्राधिकरण का लोक सूचना अधिकारी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

लोक सूचना अधिकारी :

आवेदकों को वांछित सूचना प्रदान करने के लिए लोक प्राधिकरण द्वारा अपनी प्रशासनिक इकाईयों या कार्यालयों में मनोनीत अधिकारी, लोक सूचना अधिकारी हैं। लोक प्राधिकरण आवश्यकतानुसार लोक सूचना अधिकारी मनोनीत करेंगे। केन्द्रीय कार्यालयों में उन्हें केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी और राज्य के कार्यालयों में राज्य लोक सूचना अधिकारी कहा जायेगा।

लोक सूचना अधिकारी के कर्त्तव्य :

1. लोक सूचना अधिकारी सूचना प्राप्ति के लिए किये गये आवेदनों पर विचार करेगा तथा आवेदन को लिखित रुप में प्रदान करने के लिए आवेदक की सहायता करेगा।
2. यदि वांछित सूचना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा धारित है, अन्य किसी लोक अधिकारी के कर्त्तव्यों से सम्बद्ध है तो लोकसूचना अधिकारी पाँच दिनों के अन्तर्गत उस लोक सूचना अधिकारी के समक्ष सूचना आवेदन को अन्तरित करेगा तथा उन सूचनाओं को आवेदक को प्रदान करेगा।
3. लोक सूचना अधिकारी अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए किसी भी अन्य लोकप्राधिकारी की सहायता प्राप्त कर सकता है।

4. लोक सूचना अधिकारी आवेदन के 30 दिनों के अन्तर्गत सूचना प्रदान करेगा। सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा (8) और धारा (9) इन दोनों में विनिर्दिष्ट कारणों से आवेदन को अस्वीकृत कर सकेगा। इन धाराओं में प्रकटन से अभिमुक्त सूचनाएँ दी गई हैं

5. यदि वांछित सूचना किसी व्यक्ति के जीवन और स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है, तो आवेदन प्राप्ति के 48 घंटों के अन्तर्गत वह सूचना प्रदान करेगा।

6. यदि लोक सूचना अधिकारी के द्वारा निर्धारित समय के अन्तर्गत सूचना प्रदान नहीं की जाती है, तो वह आवेदन की अस्वीकृति मानी जायेगी।

7. आवेदन के अस्वीकरण की स्थिति में लोक सूचना अधिकारी अस्वीकृति का कारण, अस्वीकृति के विरुद्ध अपील की अवधि की तथा लोकप्राधिकारियों की विशिष्टियों की सूचना आवेदक को प्रदान करेगा।

8. लोक सूचना अधिकारी आवेदक को उसी रुप में सूचना प्रदान करेगा, जिसमें वह माँगता है। तथापि, यदि किसी विशेष स्वरुप में माँगी गई सूचना की आपूर्ति से लोकप्राधिकरण के संसाधनों का अनपेक्षित ढंग से विचलन होता है या इससे रिकार्डो के संरक्षण या सुरक्षा में कोई हानि की सम्भावना होती है, तो उस रुप में सूचना देने से मना किया जा सकता है।

9. यदि किसी ऐसी सूचना के लिए आवेदन प्राप्त होता है, जिसके कुछ भाग को तो प्रकटीकरण से छूट मिली हुई है, लेकिन उसका कुछ भाग छूट के अन्तर्गत नहीं आता है, तो लोक सूचना अधिकारी आवेदक को निम्न प्रकार से सूचित करेगा –

   (क) वांछित सूचना या अभिलेख के प्रकटन से अभियुक्त भाग को पृथक्करण के बाद ऐसी सूचना उपलब्ध कराई जा रही है, जिसे प्रकटन से छूट प्राप्त नहीं है।

   (ख) उस निर्णय का कारण, जिसमें किसी भी तथ्य के सारभूत प्रश्न में कोई भी निष्कर्ष सम्मिलित है।

   (ग) निर्णय लेने वाले अधिकारी का नाम और पदनाम।

   (घ) उस शुल्क का विवरण, जिसका आकलन किया गया है तथा आवेदक जानना चाहता है।

   (ङ) सूचना के प्रकटन से अभियुक्त भाग से सम्बद्ध निर्णय के पुनर्विलोकन से सम्बन्धित अधिकारी, प्रभारित शुल्क तथा प्रदत्त प्रारुप की सूचना।

10. यदि आवेदक तृतीय पक्ष से सम्बन्धित ऐसी सूचना माँगता है, जिसे तृतीय पक्ष गोपनीय मानता है, तो लोक सूचना अधिकारी को उस सूचना को प्रकट करने या न करने पर विचार करना चाहिए।

11. तृतीय पक्ष से सम्बन्धित सूचना होने पर लोक सूचना अधिकारी आवेदन के पाँच दिनों के अन्तर्गत तृतीय पक्ष को लिखित में सूचना प्रदान करेगा तथा उसके प्रतिवेदन पर विचार करेगा। तृतीय पक्ष को प्रकटन के विरुद्ध प्रतिवेदन के लिए दस दिन का समय प्रदान करेगा।

लोक प्राधिकारियों की बाधाएँ :

1. प्रत्येक लोक प्राधिकारी –

   (क) अपने सभी अभिलेखों को सम्यक् रुप से सूचीबद्ध, अनुक्रमणिकाबद्ध, और कम्प्यूटरीकृत करेगा, जिससे कि उसके सभी अभिलेख लोगों के लिए आसानी से प्राप्त हो सकेंगे।

   (ख) इस अधिनियम के 120 दिनों के अन्तर्गत –

   (i) अपने संगठन की विशेषताओं, शक्तियों और कर्त्तव्य

   (ii) अपने अधिकारियों तथा कर्मचारियों की शक्तियाँ और कर्त्तव्य

   (iii) आवेदन के विनिश्चयन की निश्चित प्रक्रिया, जिसमें पर्यवेक्षण और उत्तरदायित्व के माध्यम सम्मिलित हैं,

   (iv) अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए स्थापित नियम,

   (v) स्वयं के तथा अपने अधीन व आधारित अपने कर्मचारियों के कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए प्रयुक्त नियम, विनियम, निर्देशिका, अनुदेशन और अभिलेख

   (vi) उनके द्वारा धारित और उनके नियन्त्रण अधीन प्रतिवेदनों के प्रवर्गों का विवरण

   (vii) लोगों के परामर्श के लिए स्थापित व्यवस्था की विशेषताएँ तथा संरचना

   (viii) उन परिषदों, संगठनों, समितियों तथा अन्य निकायों का विवरण जिनमें लोगों को सूचना प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों को नियुक्त किया गया है

   (ix) अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की निर्देशिका

   (x) अपने अधिकारियों और कर्मचारियों को प्राप्त पारिश्रमिक का विवरण, आयकर विवरण सहित

   (xi) सभी योजनाओं पर प्रस्तावित व्यय, संवितरण इत्यादि को दर्शाने वाले आवंटित बजट का विवरण

   (xxi) स्वयं द्वारा प्रदत्त अनुज्ञापत्रों और प्राधिकरणों को

प्राप्त करने वालों की विशिष्टियाँ,

(xiii) सूचना प्राप्ति के लिए नागरिकों को उपलब्ध सुविधाओं की विशिष्टियाँ, जिसमें किसी पुस्तकालय अथवा वाचनालय के कार्य करने के घंटे सम्मिलित हैं,

(xiv) लोक सूचना अधिकारियों के नाम, पदनाम और अन्य विशिष्टियाँ,

(xv) अन्य विहित सूचनाएँ।

इन सभी का प्रकाशन करेगा, तत्पश्चात् इन प्रकाशनों को प्रत्येक वर्ष अद्यतन करेगा।

(ग) लोगों को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण नीतियों के निर्माण और लागू करने के समय, उनके सभी तथ्यों को प्रकाशित करेगा।

(घ) अपने प्रशासनिक व न्यायिक कार्यों को निश्चित करने के लिए प्रभावित लोगों को उनके औचित्य का कारण बतायेगा।

2. प्रत्येक लोक प्राधिकारी का यह प्रयास होगा कि वह अपनी प्रेरणा से लोगों के लिए नियमित अन्तराल पर संसूचनाओं के विभिन्न साधनों के माध्यम से अधिकाधिक सूचनाओं की उपलब्धि करायेगा।

3. प्रत्येक सूचना को विस्तृत रुप में, तथा ऐसे प्रारुप में प्रसारित करायेगा, जिससे लोगों को आसानी से प्राप्त हो सकें।

4. लोक सूचना अधिकारी सभी सूचनाओं को प्रभावशीलता के, स्थानीय भाषा में, उस क्षेत्र में संसूचनाओं को अत्यन्त प्रभावी पद्धति के आधार पर प्रसारित करायेगा, जो उचित शुल्क के माध्यम से उपलब्ध होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. *चौपड़ा जितेन्द्र, ''सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005'' यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 2007.*
2. *कान्त डॉ. नीलम, ''सूचना के अधिकारी की विधि,'' ओरियन्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2010.*
3. *भारतीय सूचना आयोग की वार्षिक रिपोर्ट*
   www.cic.gov.in/annual report.
4. *www.righttoinformation.info.*
5. *www.rit.india.gov.in./hindi.*
6. *www.rti.india.gov.in.*

The Element of Pathos in Chekhov's Vanka and Tagore's The Home - Coming

Dr. Jagriti Upadhyaya
Assistant Professor, Sardar Patel University of Police,
Security and Criminal Justice, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

The Glossary of Literary Terms by M.H. Abrams and Geoffery Galt Harpham defines 'Pathos' as- pathos in Greek meant the passions, or suffering, or deep feeling generally, as distinguished from ethos, a person's overall dispositionor character. In modern criticism, however, pathos is applied in a much more limited way to a scene or passage that is designed to evoke the feelings of tenderness, pity or sympathetic sorrow from the audience."(2012.p.270)

Both Chekhov(Russian playwright and short story writer-1860-1904) and Tagore(Indian poet, dramatist, story writer and Nobel Laureate-1861-1941) have depicted the protagonists in their short stories namely Vanka and Pathik with a rare sensitivity and understanding of the working of the inner turmoil in the hearts of children. Told in an epistolary manner Vanka is the story of a nine year old orphan who is apprenticed to a shoemaker because his grandfather now cannot take care of him. Chekhov describes the plight and poverty of Vanka who wants grandfather to rescue him from the cruel clutches of his master in the very first paragraph thus "He waited till his master and mistress and the senior apprentices had gone to church, and then took from the cupboard a bottle of ink and a pen with a rusty nib, spread out a crumpled sheet of paper, and was all ready to write.."(1979.p 35) He is afraid of being caught and he glances several times at the door. Chekhov poignantly shows the inhuman atrocities perpetrated by a cruel master on Vanka , a defenceless and vulnerable child, writing thus to his grandfather, " Andyesterday I had such a hiding. The master took me by the hair and dragged me out into the yard and beat me with a stirrup- strapbecause by mistake I went to sleep rocking their baby."(1979.p.36). The story is set in a time when poverty and child slavery were common occurrences. Children from destitute family were often forced to work as apprentices or household sweeps at a very tender age and were mistreated, underfed, and abused by their masters very often. Chekov brings out the pathos in the story when he depicts Vanka pleading to his grandfather to take him away from that hellish confinement. Tormented and constantly beaten by his master Vanka narrates his plight, "and there is nothing to eat. They give me bread in the morning and gruel for dinner and in the evening bread again but I never get tea or cabbage soup. They gobble it all up themselves. And they make me sleep in the passage and when their baby cries I don't get any sleep at all I have to rock it. Dear Granddad for the dear Lords sake take me away from here, take me home to the village I can't bear it any longer. Oh Granddad I beg and implore you and I will always pray for you do take me away from here or I'll die..."(1979.p.37) Charles Dickens' classic novel Oliver Twist also highlights such treatment of orphans very realistically. In the novel eight year old Oliver is sent to Mr. Bumble's workhouse peopled by destitute, orphans and paupers. The children are maltreated, abused and starved. They are ladled out thin gruel at meal times in which each inmate receives a porringer and no more. The boys polish the bowls clean, suck their fingers till the last remnants of gruel are devoured and would keep staring hungrily at the copper from which the gruel was handed out. Dickens describes the starved inmates thus,"Oliver Twist and his companions suffered the tortures of slow starvation for three months; at last they got so voracious and wild with hunger, that one boy, who was tall for his age ... hinted darkly to his companions , that unless he had another basin of gruel per diem, he was afraid he should some night eat the boy who slept next him, who happened to be weakly youth of tender age."(2003.p.14)

The irony in Vanka's situation is that a nine year old boy who himself should be sleeping in the warm cocoon of his loving family or kin is mercilessly beaten and abused by a cruel master and the child feels guilty when he states that by mistake he went to sleep as if getting a decent night's sleep was the prerogative of the rich only.

Nostalgically Vanka remembers the good times he had shared with his grandfather in his village, his pet dogs Kashtanka and Eel, the Christmas celebrations they used to have and the love showered on him by Pelageya, his mother before she died and left him an orphan and the mistress Miss Olga Ignatyevna who used to give him sweets, teach him to read and write and even dance the quadrille. Chekhov describes how Vakna reminisces with fondness when he was a blithe, care free child," He remembered his grandfather going to get a Christmas tree for the gentry, and taking his grandson with him. Oh, what happy times those had been! Grandfather would give a chuckle, and the frost –bound wood chuckled, and Vanka following their example, chuckled too."(1979 p.38).In a very subtle manner Chekov traces the class divide between the affluent, landed gentry and the impoverished class working as menial labour on their estates where they could watch and partake of the celebrations from the periphery. Chekov also uses a mild irony when in the story we find that Miss Olga Ignatyevna teaches Vanka to read and write not to educate him but to 'amuse herself'. (1979 p. 38)

The element of pathos is again highlighted in the following lines of Vanka's letter. "Come to me dear Grandad, "continued Vanka. "I beg you for Christ's sake take me away from here. Pity me unhappy orphan they beat me all the time and I am always hungry and I am so miserable here I can't tell you. I cry all the time ... I have such a miserable life worse than dogs."(1979 p. 38) A hopeful Vanka writes grandad's name on the envelope but we know that his pathetic plight and his desperate cry for manumission will not reach his grandfather because in his childish innocence he doesn't know that letters need addresses to reach and he has written "KONSTANTIN MAKARICH THE VILLAGE" and posted it. The reader is not given a definite end of the story but is left to contemplate on Vanka's fate. Sergei Zalygin in his Notes on the Work of Anton Chekhov in the chapter titled 'The Art of Tact states," Chekhov's artistic principle was the art of condensation combined with simplicity in delineation. Old or young, sick or healthy, rich or poor, good or bad, simple or complicated none of them(His characters) are never two- faced. They are always themselves."(1979 p.224) Chekhov's art of observation is manifest in the beautiful delineation of the dogs in the story which merits mention. "After him, with drooping heads, went old Kashtanka and another dog called Eel, on account of his black coat and long, weasel like body. Eel was wonderfully respectful and insinuating, and turned the same appealing glance on friends and strangers alike, but he inspired confidence in no one. His deferential manner and docility were a cloak for the most Jesuitical spite and malice."(1979 p. 36). Chekhov helps the reader to walk into the inner spaces and minds of his characters. Edgar Allan Poe, the celebrated American writer of the macabre required that everything the writer put in the story be directed towards the unified effect whereas Chekhov was concerned with what was left out of the story and its effect in the outcome; he believed that in the interest of compression a certain amount of subjectivity must be left out to the reader who participates by supplying what the author leaves out. He reiterates the short stories' incompleteness time and again in his works and that is why he is called the master of irresolute endings but despite their necessary incompleteness the unity of effect is achieved by how the elements in a story are organised to interact with each other and enhance each other resulting in a total effect on the reader. The reader is left wondering whetherVanka would be rescued by his grandfather to find happiness again in his village or not and this intensifies the feeling of pathos generated in the reader.

In the short stories of Tagore one can find the influence of man, nature and the mysteries of the supernatural. Tagore's short stories are often set in rural Bengal villages and are peopled by characters from the underprivileged of society. As a short story writer Tagore was a practitioner of psychological and social realism underscored by him through the humanistic approach to his characters. His stories depict poignant human relationships with a simple, relatively uneventful plot –a pageant of rural and urban lives, family conflicts, the travails of love, superstitions and rational values of humanism with the Bengal of his time as the backdrop .His stories essentially involve not complex and intricate narratives but the simple joys and sorrows, hopes and frustrations, love and separation... and he infuses them all with his essential lyricism- a part of his temperament. Hariom Prasad thus opines,"The phenomenon of the combination of lyricism with the realism in his short story is unique. We perceive in them rich emotionalism and at the same time a realistic portrayal of the poor and middle class people in the villages and small towns."(2004.p.211)

Tagore uses the mode of pathos as a point of entry into an analysis of his awareness of society and the inner consciousness of the child in his story Home- coming. Pathik is a fourteen year old fatherless boywho loves playing truant from school and playing all sorts of pranks and indulging in mischief with his equally desultory gang of friends. His mother considers him a perpetual nuisance and constantly worries that Pathik would someday injure his younger brother, Makhanand when her elder brother offers to take Pathik with him to Calcutta she is mightily relieved. "It was an immense relief to the mother to get rid of Pathik. She had a prejudice against the boy and no love was lost between the two brothers."(2003 p.891)Initially Pathik is excited about going to Calcutta as all children find going to a new place an adventure into the unknown and keeps pestering his uncle as to when they would leave for Calcutta. Here Tagore blends romanticism and psychological realism with his insight into the behaviour of an adolescent. "He was on pins and needles all day long with excitement and lay awake,most of the night. He bequeathed to Makhan, in perpetuity, his fishing rod, his big kite and his marbles. Indeed at this time of departure his generosity towards Makhan was unbounded."(2003 p.891)Robert Scholes is of the opinion that realism and romance are not absolutely different. He says, "Many important works of fiction are rich and complicated blends of romance and realism. In fact, it is possible to say that the greatest works are those that successfully blend the realist's perception and the romancer's vision, giving us fictional worlds remarkably close to our sense of the actual, but skilfully shaped so as to make us intensely aware of the meaningful potential of existence."(Scholes2003 p.125). And this juxtaposition of the two is described on Pathik's arrival in Calcutta. On reaching Calcutta he finds that he is an unwelcome burden to his aunt who is very displeased with this 'unnecessary addition' to her family.' Tagore very beautifully delves into the nuanced mindscape of an adolescent boy and society attitude towards him when he observes,"In this world of human affairs there is no worse nuisance than a boy at the age of fourteen. He is neither ornamental, nor useful. It is impossible to shower affection on him as on a little boy; and he is always getting in the way. If he talks in a childish lisp he is called a baby, and if he answers in a grown-up way he is called impertinent. In fact any talk from him is resented."(2003 p. 891)

Tagore brings out the pathos in the yearning of a young boy for recognition and love at this age but states that no one indulges him with open love because it would spoil him and so thus neglected, and scolded at the least opportunity ' he becomes very much like a stray dog that has lost its master.'(2003 p.892) Tagore then describes how living in a strange house, feeling unloved and unwanted, Pathik like Vanka is tormented by the thoughts of his village and the unfettered freedom he had enjoyed there.Much like Vanka who wants to escape the hell of his master's house Pathik too feels claustrophobic and stifled in his aunt's house. Tagore brings out the anguish of Pathik'stortured soul in these lines."The cramped atmosphere in his aunt's house oppressed Pathik so much that he felt he could hardly breathe. He wanted to go out in the open country and fill his lungs and breathe freely but there was no open country to go to. Surrounded on all sides by Calcutta houses and walls, he would dream night after night of his village home, and long to be back there. He remembered the glorious meadow where he used to fly his kite all day long; the broad riverbankswhere he would wander about the livelong day singing and shouting for joy; the narrow brook where he could go and dive and swim at any time he liked. He thought of his band of boy companions over whom he was a despot; and above all the memory of that tyrant mother of his, who had such a prejudice against him, occupied him day and night."(2003 p.892) This nostalgia is the same as Vanka's for his grandfather and his dogs and Chekhov's description of the village is as vivid as that of Tagore- "and the weather was glorious. The air still, transparent, fresh. It was a dark night, but the whole village with its white roofs, the smoke rising from the chimneys, the trees, silver with rime, the snow drifts could be seen distinctly. The sky was sprinkled with gaily twinkling stars, and the Milky Way stood out as clearly as if newly scrubbed for the holiday and polished with snow..."(1979 p36). Both writers have used beautiful imagery of nature to juxtapose the despondence and anguished longing for love and warmth of the protagonists in their stories.

Vanka's pathetic supplication to his grandfather is echoed in Pathik's longing for his mother by Tagore in some very moving lines."A kind of physical love like that of animals; a longing to be in the presence of the one who is loved; an inexpressible wistfulness during absence; a silent cry of the inmost heart for the mother, like the lowing of a calf in the twilight; this love which was almost an animal instinct, agitated the shy, nervous, lean, uncouth and ugly boy. No one could understand it but it preyed upon his mind continually."(2003 p. 893) His uncle tells him that he can go home when the holidays come.Here Tagore fixes the pathos in his story through sheer lyricism and invokes in his readers a rare feeling of compassion and suddenly we find that the ugly boy, ridiculed and rejected by his cousins, is but a miserable caricature of his former self and the readers heart is cut to the quick reaching out to this helpless boy in sympathy and love. Pathik's humiliating treatment at the hands of his aunt and his cousins who constantly ridicule and deride him is no less than the atrocities heaped by his cruel master on Vanka. So one day having lost his notebook and having been severely reprimanded by his aunt for being 'a great, clumsy ,country lout', Pathik, burning with a raging fever starts out for his village in a torrential downpour to escape being a nuisance to his aunt. A search finds him thoroughly drenched, 'his face and eyes flushed with fever and his limbs trembling all over'.(2003 p. 894) A delirious Pathik keeps calling out for his mother asking whether the holidays had come or not. The next day he is conscious for a short time, his vacant gaze searches for his mother, he turns his face to the wall sighing in disappointment and later his condition becomes very critical. He starts calling out the cry of the sailors that he has heard on the river steamers of his village,"By the mark! –three fathoms, By the mark! –four fathoms. Now he was himself plumbing an unfathomable sea."(2003p. 895)Pathik's mother enters like a whirlwind crying out for her darling but 'Pathikvery slowly turnedhis head and, without seeing anybody, said: "Mother, the holidays have come."(2003 p. 895) The reader is left with a lump in his throat as he contemplatesPathik's fate. Tagore has critiqued the fettering of the independent spirit of a child with a rare insight. Pathos is a recurrent theme in most of the short stories of Tagore. SrinivasIyengar commenting on Tagore's stories says,"The recurring theme of the stories is the 'tears in things,' the heartaches at the core of life..."(2001 p.71)

Like Chekhov, Tagore too believed that the endings of the stories should have an element of incompleteness. Having read the story the reader must feel that though the story ended with the last sentence signifying the end,but the story actually did not end there but lingered on in the subconscious of the reader to ponder and ruminate over the larger condition of humanity and its vicissitudes.

References:

1. *A Glossary of Literary Terms-M. H Abrams and GeofferyGalt Harpham.Cengage Learning, India(2012)Tenth Edition*
2. *Anton Chekhov –Selected Works in Two Volumes, Volume One- Stories, translated from the Russian by Ivy Litvinov, Progress Publishers, Moscow, 1979.*
3. *Rabindranath Tagore Omnibus I –Rupa Publications India Pvt. Limited. New Delhi, 2003.*
4. *Elements of Literature- Edited by Robert Scholes Nancy R. Comley, Carl H. Klaus and Michael Silverman, Oxford University Press, New Delhi, 1991.*
5. *Oliver Twist- Charles Dickens, Edited with an Introduction and Notes by Philip Horne, Penguin Books, London, 2003.*
6. *Indian Writing in English- K. R. SrinivasaIyengar, Sterling Publishers, New Delhi, 2001.*
7. *Tagore's Short Stories: A Critical Study by Hariom Prasad in Studies on Rabindranath Tagore Vol. II Ed. Mohit K. Ray. Atlantic Publishers and Distributors, New Delhi, 2004.*

Supremacy of Rule of Law and Democracy

Prashant Chauhan
Assistant Professor, Shri Ram College of Law
Muzaffarnagar (Uttar Pradesh)

shodhshree@gmail.com

Rule of Law in and important and fundamental pillar of Indian Constitution and judiciary is assigned the rule of implementing this Rule of Law.

The rule is not merely public order, the rule of law is social justice based on public order. It exists to ensure proper social life which allows individual to live in dignity and develop himself. This rule of law has to maintain balance between society's need for political, independence, social equality, economic development and internal order and on the one hand and the needs of the individual, his personal liberty and his human dignity on the other hand and it is the duty of the Judge to protect the concept of Rule of Law.

Everyone is equal before law and it is now transforming over a period of time. In modern form the function of the legislature in free society under the rule of Law is to create and maintain the conditions which it will uphold and individual as it is mentioned in conference which is organized by the International Commission of Jurists in New Delhi in January, 1959 known as Delhi Declaration. Another aspect is the existence of effective Government capable of maintaining Law and order and of ensuring adequate social and economic conditions of life for the society and most important aspect declared is an independent judiciary.

As independent judiciary is prerequisite requirement of the Rule of Law, because of this courts are empowered to refuse to enforce a statute because it grants wide arbitrators power and absence of arbitrary powers on the part of Governmental authorities is primary feature of Rule of Law and according to Rule of Law the final interpreter of the law should be the court and not the legislature or the executive.

Democracy in Our Country

Our democracy depends on two aspects

1. Sauer eighty of the people it manifests itself in majority rule.
2. Substance or liberal democracy that.
3. Dignity and quality of all human beings good governance.

Balance has to be maintained between them. Power of the majority commands legislature supremacy whereas as liberal democracy enshrines supremacy of values, principles and human rights. It is the duty of court to achieve balance is the final arbiter in the matter of dispute.

Spirit of our Constitution

Our Constitution lays emphasis on providing equal opportunities to grow as a human being, irrespective of race, caste, religion, community and social status.

The most important gift given by our Constitution is "Fundamental rights" which are our human rights also and according to this every person is entitled to equality before the law and equal protection of law as rightly mentioned in National Human Rights V/s State of Arunachal Pradesh. In State of Karnataka V. Rangnatha Reddy, the Supreme court observed.

A judge is a social Scientist in his role as a constitutional invigilator and fails functionally if he forget this dimension in his complex duties.

In Dettatraya Govind Mahajan V/s State of Maharashtra the Spirit of our Constitution was explained in which it is mentioned that our founding fathers, aware of our social realties and the inner working of history and human relations, forged our fighting, faith, integrating justice in its social, economic and political aspects. While contemplating the meaning of the Articles of the organic Law, the Supreme Court shall not disown social Justice.

Rule of law is expressed through the axiom that no one is above the law. The rule 'of' law is different from the rule 'by' law under rule by law, law is instrument in the hand of law government whereas under rule of law nobody is Supreme everybody is equal. The rule of law not only guarantees the liberty of citizens but also limits the arbitrariness of the government thus the basic principle of opportunity to all and the principle of affirmative action to redness educational and social backwardness.

Rule of Judiciary

An ideal constitution would have adequate provision not only for Separation, of Powers, independent judiciary but ensuring good governance. Judiciary is assigned the role of upholding the rule of law and while doing so, it is to protect the democracy as well as the constitution. A judge is supposed to decide the cases according to the law of the land and while deciding the cases do not merely State the law but at times create it too. Indian Courts have endeavored to protect the constitution and democracy. Which can be discussed under following aspects:-

1. Protection of Human Rights and its expansion.
2. Equality and justice to all Section of Society including vulnerable section.

Protection and Expansion

Anything which is not just, fair and reasonable is to be treated invalid. Article 14 of Constitution talks about equality and it been expanded in Article 21 which includes 'life' 'Liberty' and 'Law' the Supreme court laid emphasis that the children in jail is entitled to Special treatment as mentioned to (Sheela Barse V/s Union of India (1986)3SCC596), and Supreme Court has comprehended other diverse aspects also like health hazard due to pollution (Mehta M.C.V. Union of India beggars interest in housing (Kalidas V/s State of Jammu Kashmir (1987)3 SCC430), right of speedy trial, handcuffing of prisoner, delay in execution of death sentence, immediate medical aid to the injured persons, starvation deaths, the right to know, right to open trial, inhuman conditions in after-care homes.

Because of this expansion of article 21 the non-justiciable Directive Principles have been resurrected as enforceable fundamental right by judicial activism, playing on Article like.

1. Right to pollution-free water and air (Subhash Kumar V/s State of Bhiar)
2. Right to food (Supra note 14), clothing, decent environmental (Supra note 20) and

protection of Cultural heritage (Ram Sharan Autyanuprasi V/s UOI, AIR 1989 SC549)

3. Right to education (Mohini Jain V/s State of Karnataka.
4. Right of every child to a full development (Shantistar Builders V/s Narayan Khimalal Totame)

Deprived is used in Article 21 which is considered as negative language and it was supposed to impose upon the state the negative duty not to interfere with life or liberty of an individual without the sanction of law.

In Vincent Panikurlangara V/s UOI it imposed positive obligation on the state to take steps for ensuring individual a better enjoyment of his life and dignity:-

1. Maintenance and improvement of public health.
2. Elimination of water and air pollution.
3. Rehabilitation of bonded labourers.
4. Providing human conditions if in prisons and protective homes.
5. Providing hygiene condition in slaughter-house.
6. Improvement of means of communication.

Thus, there should be development of citizen in all respect. Democracy requires us to respect and develop human dignity, viewing this as human development, By democracy we can raise the living standard of the people by giving opportunities to every individual to develop his or her personality justice to vulnerable section.

Basically human right apply universally to all but there are certain group who are vulnerable and lacks full enjoyment of human rights like in education, health and political participation due to discriminator and exploitation of these group. Before understanding this aspect we should know what are these vulnerable people the vulnerable groups that faces discriminate are:-

- Women
- Scheduled Caste
- Schedule Tribes
- Children
- Aged
- Disabled
- Poor Migrants
- Transgender
- People living with HIV/AIDS
- Sexual Minorities

PILs are plays very important role in enforcement of rights of such people by interpreting, innovating method of welfare legislature so that justice to be provided to such persons for the sake of there well being and there human development as a whole.

Good Governance

In the field of good governance and in the role of PIL the Supreme Court held in the case of State of uttranchal V/s Balwant Singh Chauhal & others Scanned the position relating to PIL's following in different countries including U.S.A., England, Nepal, Australia and Srilanka. The Supreme Court has divided the PIL in three categories.

The Ist Category deals with the protection of Fundamentals rights under Article 21 of the groups and section of Society who are in the periphery due to poverty, illiteracy and inability to approach Supreme court and High Courts.

IInd Category:

It deals with the cases relating to the protection preservation of the ecology, natural environmental etc.

IIIrd Category

It relates to all the orders given by the court to maintain transparency, integrity and probity in governance.

The Supreme Court upheld the importance of governance as a basic feature of the Constitution in Keshawnand Bharti V/s State of Kerala the PIL is very essential for good governance as it keeps the government on its toes and the government is accountable for all its decisions and activities. As India is largest democracy in the world elections are the sole of democracy. The Election Commission of India was empowered for preparation and conduct of elections in the country the Supreme court held in M.S. Gill U Chief Election Commission (1978) that free and fair elections is the sole of democracy and Election Commission is accountable for free and fair elections.

The Supreme Court of India has given few land mark Judgments to improve the efficiency of administration and to free the society from corruption. The following judgments are as Follows:-

1. Dr. Subramanian Swamy V/s Dr. Man Mohan Singh
2. Lily Thema V/s Union of India (2013)
3. Ramdethmalani V/s Union of India (2011)
4. Dr. Subramanian Swamy V/s E.C.I (2013)
5. P. Venugopal V/s Union of India (2008)

Conclusion:

To Sum up, to provide good governance with judicial activism is a challenging task. It is always an issue of debate whether the principle of Separation of Powers was practically implemented which can ensure that the legislature, executive and judiciary are not interfering in each other work. There is a perception among common people that nowadays when the society is divided into caste, religion and other is no solidarity among common people. Most of the politicians are involved in criminal cases and corruption with no feeling or goal to serve the society. Moreover beurocracy is also indulged to protect their own interest and not concentrating to provide good administration. The only rays of hope were seen in the role of judiciary to pressurize government to give good governance to the people and uphold the democratic values.

References:

1. *The International Commission of Jurist in New Delhi 1959*
2. *AIR 1996 SC 12345*
3. *AIR 1978 SC 215*
4. *AIR 1977 SC 915*
5. *(1986) 3 SCC 596*
6. *(1987) 4 SCC 463*
7. *(1987) 3 SCC 430*
8. *Constitution of India*
9. *AIR 1991 SC 420*
10. *AIR 1989 SC 549*
11. *AIR 1992 2 SC 1858*
12. *AIR 1990 SC 630*
13. *AIR 1987 SC 1990*
14. *JT 2010(1) SC 329*
15. *(1973) 4 SCC 225*
16. *(1978) 1 SCC 405*
17. *(2012) 3 SCC 64*
18. *(2013) 7 SCC 653*
19. *(2011) 8 SCC 1*
20. *(2013) 10 SCC 500*
21. *(2008) 5 SCC 1*

Working Capital Management of Small Scale Industries: With Special Reference to Ajmer District

shodhshree@gmail.com

Vijay Kumar
Lecturer, S. P. C. Govt. College, Ajmer

As we know that small scale industries are second largest employment sector for of human resources after agriculture in India as well as in Rajasthan. In Ajmer lots of units of small scale industries are working. in spite of odd condition. Ajmer District is situated in the centre of Rajasthan State lying between 25°38" and 26°58" North Latitudes and 73°54" and 75°22" East Longitudes. The district has no natural division. Its boundaries are territorial and composed of twelve sub-divisions namely Ajmer, Beawar, Kekri, nasiraba, rupangarh, pisangan, tatgarh, sarwar, pushkar, bhinai, masuda and Kishangarh. There is large number of small scale industries in Ajmer. 20577 units of small scale industries are working in Ajmer during 2014-15 and it is providing employment to 100003 people in Ajmer. According to data its certainly that small scale industries of Ajmer is playing major role in Rajasthan economy but in other side Ajmer there are so many units are sick due to utilization of working capital .This paper shows the direction and fluctuation of working capital with special reference to Ajmer district small scale industries .

Limitation of the study.

- This study is based on secondary data .(provided by RIICO. AJMER, DIC AJMER)
- Based on survey in which a was made a questionnaire, the respondents were asked about the investment in current assets.
- Assumed working capital in terms of current assets .(i.e. Gross working capital)
- Study related with merely small scale industries of Ajmer district.

Meaning & importance of working capital

Every industry needs working capital to runs day to day business activities. Without working capital we can`t imagine small scale industries. Working capital includes current assets and current liabilities and the formula is

Working capital = current assets – current liabilities

In this study assumed working capital is calculated in terms of current assets .the components of current assets are cash, receivables, stock (inventory) and others.

I have taken the hypothesis that :

Working capital= current assets

Size of investment and %of working capital:

Table (1) present s the information about the size of investment in working capital and its percentage (%) of total assets for small scale industries of Ajmer . In this table we see that the working capital or gross working in absolute term stood 8854 (in thousands) in 2005 and it is 42167 in the last year of study i.e. 2014-15. It shows the major variation in working capital. The Working capital was increasing year to year during 2005-06 to 2012-13 and decreasing after 2012-13 to 2014-15. The percentage of working capital which was around 25.107% of total assets in the beginning of the study ,and it`s highest level was 43.06% by the year 2011-12 and the lowest percentage of working capital 20.98% was in 2008-09,after 2011-12 it is coming down to 27.53 % in 2014-15.if we calculate the range of working we will find it is near about 22.073%.

$$\text{Range of working capital} = \text{highest level} - \text{lowest level.}$$
$$= 43.057-20.983$$
$$\text{Coefficient of range} = \frac{\text{Highest level} - \text{lowest level}}{\text{Highest level} + \text{lowest level}}$$
$$\text{Coefficient of range} = \frac{43.057-20.983}{43.057+20.983} = .359$$

When we analyze the Range and coefficient of Range, we found that the series of percentage of working capital are irregular and major fluctuation are there. The variation in the % of working capital is in large scale. The table shows that there is no consistence rise or fall in working capital..

Industry wise size of current assets

Table 2. shows the industry wise current assets in the small scale industries units of Ajmer .for the study small scale industries have been divided in various type of industry viz. food product, beverages, tobacco, cotton textile, wool silk, jute hump, textile product ,wood and wood product, paper and paper product ,leather, rubber, chemical, minerals, basic metal, metal product, machinery ,electrical machinery, appliances, transport equipment, medical & health and other mfg. industries. This table

Is based on survey made by questionnaire , the respondents were asked about the percentage of investment in current assets .For industrial wise current assets we studied five year duration i.e. 2010-11 to 2014-15. When we analysis the industries wise current assets we will find that highest current assets 27.79 % invested by the year 2014-15 and lowest one 25%in year 2011-12 .According to the table the overall average of industry wise current assets is 26.06%.It means highest and lowest industry wise current assets is near about average current assets. But we bifurcate in industry wise we found that the current asset is mainly invested in cotton industry and mineral industry these industry kept high % of current assets 35.8 and 35.2 for day to day transaction and other side rubber and metal product indifference about it with the lowest investment 18.8% and 19%.other industries current assets are around average.

Working capital components:

Table 3. gives information about the components of current assets .It can be seen that structure of working capital was dominated by inventory in most of the industry. From the table 4 . I observed the inventory component has 52.039 % and cash is about 31.47%,other is 3.8% . On other side inventory components is lower in case of food, Transport product and medical & Health services being 33.33% and 25.21%of total current assets .Receivables highest in case of cotton and textile i.e. 4.8% ,cash is highest in food product ,paper & printing , transport etc. Table 4 also shows that inventory is paying major part in current assets of small scale industries , Ajmer. After inventory cash is most important components .there are fluctuation in working capital but the components show trend in favor of inventory , inventory is the major components of current assets (52.039%) which mostly uses by small scale industries of Ajmer. it is presented in bar chart also.

Working capital management

Effectiveness of working can be checked with the help of ratio analysis. We have taken current assets as working capital and we have discussed about it`s components such as cash, inventory, receivable etc. So we use current ratio, liquidity ratio, absolute liquidity ratio to check their profitability.

Particular	Current Ratio	Quick Ratio	Absolute Liquidity Ratio
Industry Wise Components	5.2:1	2.33:1	1.63:1

For calculation of ratio it can be calculate as

$$\text{Current ratio} = \frac{\text{Current assets}}{\text{Current liabilities}}$$

$$\text{Liquidity ratio} = \frac{\text{Quick assets}}{\text{Current liabilities}}$$

(quick asets = current assets –inventory+ prepaid)

$$\text{Absolute liquidity ratio} = \frac{\text{cash}}{\text{Current liabilities}}$$

According to the table we get information about present working capital structure of small scale industries of Ajmer and we find that working capital structure is beneficial, small scale industries aware about their liabilities. . Current ratio, Quick ratio ,absolute quick ratio shows the average working capital is favorable.

Conclusion

The study is undertaken by taking 5 years data from secondary source. From the study, it has been found that the working capital is decreasing these years and its negative impact will effect the future working capital of small scale industries , Ajmer. There are fluctuation in working capital And other thing find that inventory components are mostly used by the small scale industries it is beneficial for short period but not in long run we will have to find new way for working capital management. The Small scale industries units are low capital based where investment on fixed assets found to be less . it is very difficult to solve the problem of working capital of small scale industries of Ajmer district for this local administration and financial institution must take initiative.

References :

1. *MSME, BRIEF industrial profile of Ajmer district*
2. *DIC Ajmer*
3. *Basher Matarneh, 2012 kingdom of Bahrain*
4. *Kuchhal, s.c (1976) corporation finance orincipals and progress*
5. *Agrawal. (2012) Ratio analysis. elements of financial managment*
6. *RBI. Finance of medium and large public limited campnies RBI bulletins*

Table 1 Investment and Percentage of Working Capital

Year	Unit	Total Assets	Working Capital	% of Working Capital
2005-06	14337	35264.9	8854	25.10711784
2006-07	15236	47057.62	11054	23.49035077
2007-08	15683	55925.44	11865	21.21574725
2008-09	16343	68406.39	14354	20.98341982
2009-10	17003	81404.16	23452	28.80933849
2010-11	17663	92797.54	22785	24.5534526
2011-12	18336	101613.56	43752	43.05724551
2012-13	19086	113585.93	48235	42.46564693
2013-14	19815	132515.42	44656	33.69871974
2014-15	20577	153155.15	42167	27.53221162
AVERAGE		80032.195	27117.4	29.09132506

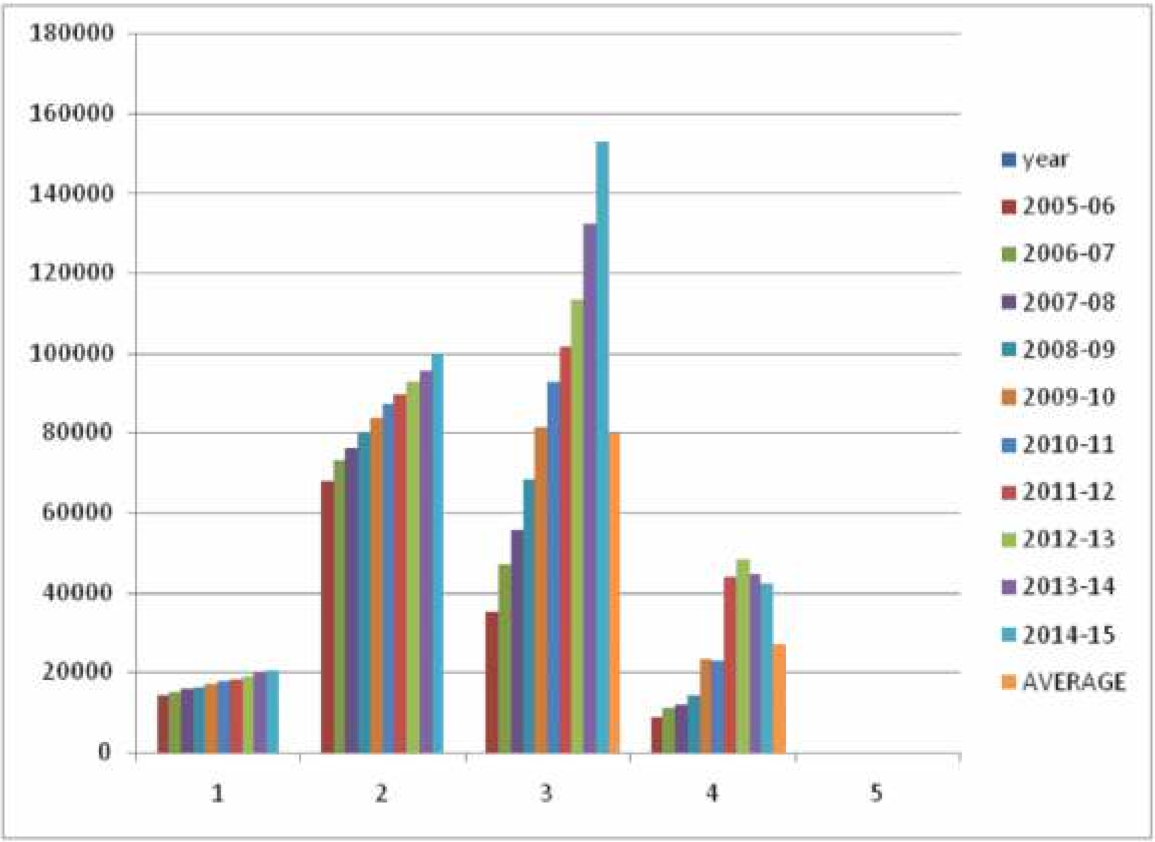

Table 2 Industry Wise Current Assets

S.No.	Type of Industry	2010-11	2011-12	2012-13	2013-14	2014-15	AVERAGE
1	Food products	30	32	28	25	35	30
2	Beverages, Tobacco & Tobacco products	22	25	31	25	28	26.2
3	Cotton textiles	38	33	32	36	40	35.8
4	Wool, Silk & Synthetic Fiber textile	22	18	26	25	29	24
5	Jute, Hump & Masta textiles	23	25	25	26	24	24.6
6	Textile product	22	27	34	27	32	28.4
7	Wood and wood products furniture & fixture	22	24	32	30	30	27.6
8	Paper & paper products & Printing	33	34	33	30	31	32.2
9	Leather & fur. Products (except repair)	23	27	28	27	25	26
10	Rubber, Plastic, Petroleum & Coal products	16	18	20	18	22	18.8
11	Chemical & Chemical products	22	21	25	27	28	24.6
12	Minerals base units	33	37	36	32	38	35.2
13	Basic metal & Alloys industries	21	22	19	28	23	22.6
14	Metal products & Parts e	16	18	22	21	18	19
15	Machinery, Machine tools &parts	22	21	22	24	25	22.8
16	Electrical Machinery	25	24	26	25	26	25.2
17	Transport equipment & parts	22	24	25	24	24	23.8
18	Other Mfg. industries	22	21	25	24	25	23.4
19	Medical & Health services	25	24	25	25	25	24.8
	Total	459	475	514	499	528	495
	Average	24.16	25	27.05	26.26	27.79	26.06

TABLE 3 : Industrial wise main components of current assets of small scale industries (2014-15)

S.No.	Components	Total	Cash & Bank	Stock	Receivables	Others
	Food products	30	15	10	4	1
1	Beverages, Tobacco & Tobacco products	26.2	4	16	4.1	2.1
2	Cotton textiles	35.8	7	24	4.8	_
3	Wool, Silk & Synthetic Fiber textile	24	5	18	1	_
4	Jute, Hump & Masta textiles	24.6	4	17	1.7	1.9
5	Textile product	28.4	8	16	4	0.4
6	Wood and wood products	27.6	7.6	15	4	1
7	Paper & paper products & Printing	32.2	14	16	1.2	1
8	Leather & fur. Products (except repair)	26	10	13.5	2.5	_
9	Rubber, Plastic, Petroleum & Coal p	18.8	8	9	1	0.8
10	Chemical & Chemical products	24.6	7	14	3	0.6
11	Minerals base units	35.2	9	17	8	1.2
12	Basic metal & Alloys industries	22.6	6	9	5	2.6
13	Metal products & Parts	19	3	9	7	_

14	Machinery, Machine tools & Part e	22.8	8	13	1.8	_
15	Electrical Machinery apparatus Appliances	25.2	7	14	4	0.2
16	Transport equipment & parts	23.8	13	6	4.8	_
17	Other Mfg. industries	23.4	7	12	2	2.4
18	Medical & Health services	24.8	9	15	0.8	_
19	Medical & Health services	24.8	12	7	5	0.8
	TOTAL	519.8	163.6	270.5	69.7	16

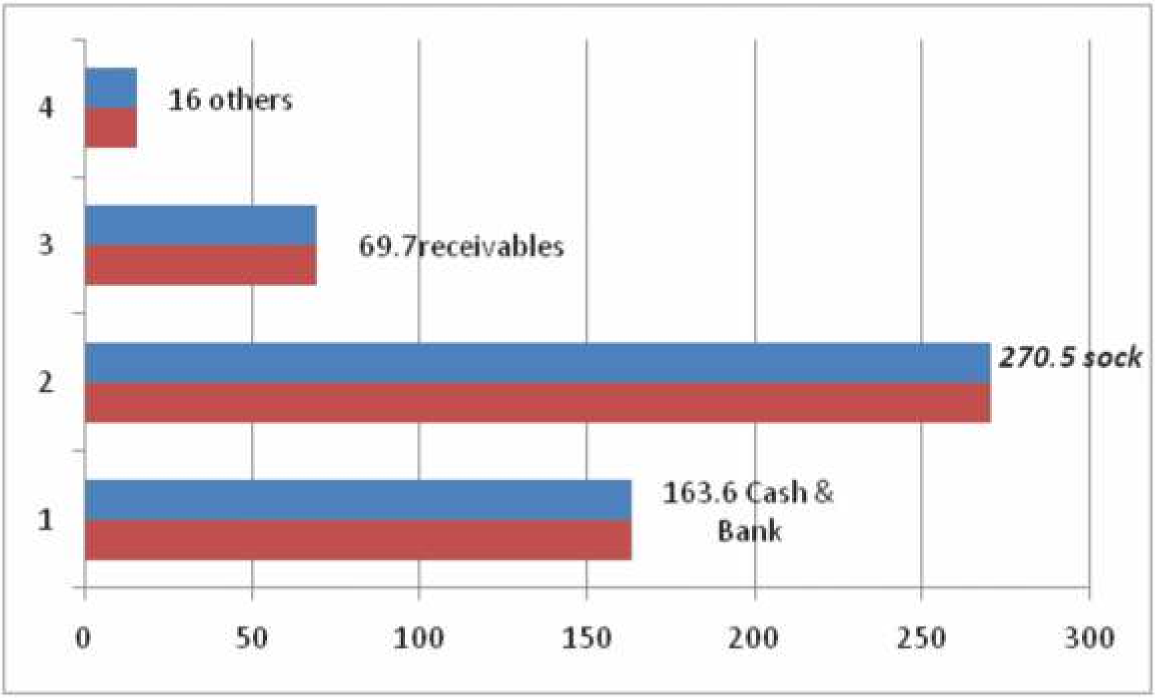

The Ricochet of Human Resource Development in Indian Banking Sector

Hem Prabha Purohit
Junior Research Fellow, Jai Narian Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

In the words of Alfred P. Solan, "Most businesses are alike except as to people". These words clearly reflect the significance that the human resource of a company holds, for the business organizations. Be it operating a business, evolving into a successful organization or standing out as a market leader; every milestone requires skilled and competent workforce. Investments in Money, Machines, Materials, Methods, go vain in the absence of a well built up 'Man' base. The rising competition has made human resources all the more vital for attaining sustainability and the corporate giants around the world have realized this quite unmistakably. It is unequivocal that a sky-scraping success in the present scenario shall require a robust endeavor in terms of development of the human resource, to make them capable to match the pace of changing demands.

Human Resource Development (HRD) has been one of the highly debated issues in terms of providing a complete definition. Considering several definitions of the concept, it can be somewhat summarized that, HRD is all about the introduction of organized as well as self-directed activities designed to increase knowledge, skills and competencies and improve behavior. In simple words, HRD refers to learning, performance, and change activities that bring about desired organizational effectiveness. (Gilley & Maycunich, 2000)

HRD and The Indian Banking Sector

HRD has received much interest in past few decades as the service industry has gradually taken over a large span of activities contributing heavily to the economy. Besides, the astounding development of the financial sector services round the world, have made it as one of the imperative service industry contributor to the world GDP. The banking industry is amongst the prominent service industries of Indian economy, and growing financial transactions pushed the need for an effectual and proficient service of the banks. This in turn, has drawn enough attention towards the optimum utilization of the human resources for better outcomes, as human resource of the sector is a vehicle for good service delivery.

Research Methodology

The research article has been developed through descriptive secondary information collected by data published in various like books, journals, reports of various organizations, etc. vis-à-vis 4 banks of the India banking sector, 2 public sector banks, i.e. SBI & Bank of Baroda and 2 private sector banks, i.e. ICICI bank & HDFC bank.

HRD and The Major Players of Indian Banking Industry

It has been over four decades the term Human Resource Development became popular in the country. It was in 1975 that the decision to start a dedicated department for promoting Human Resources Development was initiated in India at Larsen & Toubro Limited. After L&T accepted these recommendations in full and started implementing the State Bank of India the single largest Indian Bank and its Associates have decided to use the Integrated HRD systems approach and decided to create new HRD Department. Since then, by mid eighties a large number of organizations in India have established HRD Departments.

The next section discusses the HRD philosophy and interventions of some of the major players of the banking industry in India.

State Bank of India

The State Bank of India, the largest public sector bank of India is known as the pioneer bank which initiated a well stated effort towards establishing a HRD system in the banking industry in the late 1970s. SBI has a great story in the field of HRD. It has a well-structured HRD set-up and a wide spectrum of HRD activities, a brief portrayal of which is being discussed here.

Amongst the recent initiatives, on the advice of Boston Consulting Group to SBI for improving its appraisal system to make it a fair one and making the system career-oriented (Kurian, 2015) a new ***career development system***, known as ***Saksham*** was launched that rewards the performers and also helps in promotion decisions.

A performance linked scheme known as ***One Umbrella*** was launched. Besides, an initiative called ***SBI Aspirations*** has been put in place which shall encourage a two- way interaction of the employees of the bank for sharing ideas, enhancing knowledge, searching solutions of critical problems. ***Sabatical Leaves*** is another facility endowed upon women and single men with children or aged parents. Besides, ***SBI Pinkathon*** an all-women run event was organized in six cities across India. These initiatives helped attaining employee engagement.

Initiatives are taken for ***talent management and learning*** by activities like the competency development of young officers in basic banking, capability building through training intervention, seminar, workshop, making equipped in specialized areas, like credit, forex operations, marketing etc. Movement across verticals in the specialized area is also contemplated.

SBI's ***training and development*** system is known to be one of the best systems of the country. The first element of a well developed training process is its need assessment step and thus SBI undertakes gap analysis, to find out if any gaps exist between the expected KSAs and the existing situations.

SBI launched an e-learning portal called '***Gyanodaya***' consisting of learning modules for training new as well as existing employees. The portal can be accessed by all the employees who have their data in HRMS portal from anywhere and anytime. An initiative called '***Aarohan***' with 536 in-house e-lessons, 345 Mobile Nuggets and 350 e-capsules, was started for enhancing quality and professionalism in all the activities undertaken by the bank. The initiative being a mass communication program aimed at contributing through the development of the ***communication sub-system*** of organization along with the initiative SBI Aspirations.

A ***SMS Alerts*** facility was started that keeps the staff updated on all relevant matters, along with which text messages on current banking issues are being sent to employees on a daily basis.

Moreover, **off-the-job methods** like, case studies, projects, business simulation games, quiz competitions, workshops (like the cyber security workshop), leveraging of social media for updating of knowledge and e-publications are also used by the bank.

Apart from this a full-bodied infrastructure of ***Learning Centers*** is developed consisting of role based e-lessons, study courses, on-line courses from reputed international business schools etc. (State Bank of India, 2015)

The bank has been organizing online training programs for its senior management in collaboration with the Harvard Business School. Also, the bank has been seeking exposures through various events at reputed institutions like IIMs catering to the GMs and DGMs (Sengupta & Basu, 2012). Besides this, ***job rotation*** is a regular phenomenon in the bank. Employees are frequently subject to internal transfers within the same branch and thus they are exposed to multifarious functions existing in the bank. (Srinivasa & Chalam, 2014)

The bank has undertaken initiatives like project ***Parivartan*** in 2007 (a 100-day program to increase ***communication skills*** of its managers) and ***Citizen SBI*** in 2009 (aimed at attitudinal change and behavioral transformation of its employees by seeking more active role from the employees, where the facilitators identified by the consultant were to train the staff over the tenure of the project), to serve the purpose of a good HRD system. (Business Standard, 2009) After the successful launch of these initiatives SBI launched **"Udaan"** which aimed at making the employees aware of the outstanding achievements of the bank of the last few years and grooming them for their total transformation towards achieving the bank's aspirations. (The Times of India, 2010)

In all, it is very lucid that due to the never ending efforts and a well sated philosophy that bank maintains in terms of its HRD, it has been able to achieve such superior grade of performance in various banking activities it undertakes. Never the less, the bank needs to focus on some mechanisms that go un- noticed many a times but can contribute highly to the overall results.

Bank Of Baroda

Bank of Baroda has been making unremitting efforts since the establishment of its first HRD department in 1978. The bank has tried to leave no stone unturned, when it comes to its people, their development and advancement.

Under the chairmanship of Dr. Anil Khandelwal the bank has undergone a substantial transformation including enormous HRD efforts that have proven true-value drivers. In his book, *Dare to Lead*, Khandelwal has discussed the endeavors made by the bank in various areas.

Various initiatives were undertaken like the scheme called ***KHOJ* (search)** was started to unearth high potential people and put them on proper roles after proper grooming and development; a fast-track promotion policy aiming at retaining the high achievers for advancing the *career planning and development*; the functional heads helped in developing training strategies, coordinated with the principal of the staff college and also could nominate their officers to participate in programs conducted by national institute of bank management; the bank encouraged *employee engagement*, through written communication and open house discussions with the staff of as many centers as possible, like Pune, Chennai, Ahmedabad, Delhi, Jaipur, Lucknow, Baroda, Surat, Calcutta, Hyderabad, Banglore and Nagpur and the in-house journal BoB Maitri, helped communicate the bank's vision and the forthcoming changes to the employees. (Khandelwal, 2011)

Till date the bank has been undertaking a chain of initiatives for the development of its people, an outline of which is being discussed here.

To let HR Staff focus on developmental and employee engagement activities, t he bank formulated a centralized structure; ***HR shared services CPC*** to handle the routine HR. A *Human*

Resources Network for Employees Services (HRNes) platform was launched as a key enabler in the implementation and sustenance of various HR initiatives. Efforts have been made to craft the ***performance management*** system into an online one to make it more transparent. A performance linked incentive scheme was also introduced to encourage top performers.

Serving the purpose of ***reward and recognition*** and ***career development*** initiatives the bank rewards employees for their performance and carve out definite career paths by providing opportunities for both upward movements and horizontal movement to facilitate exposure across various functions.

The ***training and development*** subsystem of Bank of Baroda is a highly structured and an elaborate one. The ***Baroda Manipal School of Banking*** that has been developed on the principle of Train, Hire and Deploy. The bank in association with the Manipal Global Education has formulated this initiative to train students for a banking career in Bank of Baroda that encourages a first day first hour productive model, which generates a pool of trained officers, before they join as probationary officers.

The learning system popularly known as the ***Baroda Academy*** undertakes various innovations and path breaking initiatives. The academy aims at grooming staff in key banking areas like credit, forex, core banking etc along with the on-boarding programs for new entrants. Moreover, through **e-learning c**ourses that help functional and behavioral areas are available over the internet that can be accessed with ease and as per the convenience of the employees. Also, a mobile App, ***Mobile Snippets*** was launched to keep employees aware of all the daily news, circulars, announcements etc. Beyond the usual formal training programs, the bank undertakes ***Mind Gym Series*** that incorporates motivational lectures, video shows and group activities at the Baroda Corporate Centre.

The bank devised a training intervention; ***'Sang Sikhe, Sang Badhe'*** for the sub staff of all the regions in local languages for imbibing job related knowledge. Besides, in order to impart functional, behavioral and technology training to all clerical employees of the bank, the bank launched a project, ***'Project Utkarsh'***. The bank also launched mentoring programs like ***'Baroda Sarthy'*** for new entrants to help them get along with the new corporate life.

To develop an international outlook on banking, the bank sends them to reputed institutes abroad, like Kellogg School of Management, James L Allen Center, Center for Unified Biometrics, and the Center of Excellence in Information Systems Assurance Research and Education, The State of University of New York at Buffalo, Asian Institute of Management - Executive Education and Lifelong Learning Center, Manila and Center on Integrated Rural Development for Asia and the Pacific.

The talent management system focuses on developing team focus, communication skills, customer centricity, leadership skills, people skills, and strategic intent among the selected scale officers.

The bank undertakes ***Leadership Development Programs*** like equipping newly promoted GMs and Deputy GMs with strategic management skills at institutes of national repute. **(Bank of Baroda, 2015)**

Project Leap, was launched by the bank for systematic development of identified leadership competencies that follows an individualized assessment and gap analysis. ***Project 'Udaan'*** was launched that combined on-the-job and off-the-job training by organizing classroom sessions on leadership to be applied in practice and coaching session in between.

Along with this, ***Role Change Programs*** are conducted for newly promoted employees at bank's internal training establishments which give them inputs on behavioral issues, soft skills, team work, leadership etc.

An initiative christened as ***SEED***, the self efficiency and effectiveness development program is being run by the bank for frontline staff in order to improve their service skills and efficiency.

Apart from these, ***Executive Development Programs*** are being regularly conducted for newly promoted senior and top management people in conjunction with leading business schools like ISB, Hyderabad; MDI, Gurgaon; National Institute of Bank Management, Pune etc.

The bank encourages ***initiative*** and on these lines it initiated ***Baroda 'Sujhav'*** and ideaonline@bankofbaroda.com to elicit ideas from employees for which rewards for best ideas are also given away.

Moreover, the bank has incorporated HRD to its strategy, which is reflected in its model that aims at attaining organizational effectiveness majorly through competency development. (Bankofbaroda.co.in, 2015)

To summarize, the years that passed by have witnessed the transformative change the bank has undergone from the time the HRD department was established and to the state where a well planned Integrated HRD system has been put into practice. Some of the HRD mechanisms that aren't given formal consideration which if taken care of would multiply the benefits received from the system.

ICICI Bank

ICICI bank has been amongst top performers of the Indian Private Banking scenario. The bank, way back realized that in order to deliver quality services that would help reaching the vertex, the ones responsible for that delivery need to be taken care of. Accordingly, the bank has brought about various initiatives, a brief of which is being discussed here.

The bank launched ***'Saath Aapka'***, a philosophy cum promise to its employees in terms of what employees can expect from it. To explore further, a survey called, the *Employee Alignment Survey* was conducted by the bank which proved to be good achieving encouraging results.

In a global survey called 'Top Companies for Leaders' on organizations that have put in efforts to develop a leadership pipeline, conducted by AON Hewitt; ICICI was ranked among the top five organizations in the world.

The ***Branch Banking Academy*** of the bank conducts the ***Branch Leadership Program*** to train and certify eligible employees to assume leadership roles at branches. Another initiative developed by the bank to keep staff skills brushed up is ***Skill through Drill.*** It is an innovative video based program to equip the branch staff with requisite service skills to deliver better service.

Recently, the ***'STAR'*** (Sales Talent Acceleration and Recognition) program was instigated to serve as a structured career progression plan for high performing sales personnel. Under this, high performing sales personnel are selected as the Probationary Officers of the bank. A program, the ***Young Leaders Program*** was launched to undertake career planning for high performing employees at the Assistant Managerial level.

The bank also eggs on ***Industry-Academia Programs*** that make available pre-trained skilled manpower for specialized roles in the bank by combining, classroom sessions, internships with the bank, and a thorough briefing on bank's products, services and the work culture, like the Institute for Finance, Banking & Insurance for entry level jobs in customer service and operations for the banking and financial services sector; ICICI Bank Sales Academy for frontline customer acquisition roles; ICICI Manipal Academy for entry level managerial roles and ICICI Business Leadership Programs for roles in risk management, wholesale banking, treasury and IT.

The bank uses ***off-the-job training*** like, games and simulation to develop service and transaction processing skills in employees.

The bank launched ***'Business Companion'*** which includes smart phone or tab based performance support tools for employees across business groups which need real-time access to critical product and process related information.

Besides, employee welfare measures are also undertaken. Special holidays are given for adoption, childcare, fertility treatment and maternity in addition to privilege leave, casual leave and sick leave. It has also established an all time emergency helpline to support employees and their family members. The bank launched a ***Quick Response Team*** especially for women support while they are traveling.

Moreover, the bank values a care-driven culture in disposal of any work practice. The superiors and the subordinates are expected to come across as a well-behaved individual with a humane touch to whatever they do. (ICICI Bank, 2015)

The bank came up with a new concept of ***ICICI DNA*** that is meant to identify talent as a part and parcel of the performance management system of bank. To start with, the Performance Management Process identifies consistently good performers and these employees in the top performing category were then profiled on the basis of 9 leadership anchors, known internally as the ICICI DNA. These anchors were defined in terms of specific behavior and also some were defined to be 'stoppers' i.e. unacceptable behaviors that go against the anchor, were to be considered. (People Matters, 2010)

In all, the bank has been doing continuous efforts for the betterment, in a way that the employees are able to develop both as an individual and as the part of an organization. The result of which, ICICI has been reaping and which is quite evident in its soaring customer and the financial base.

HDFC Bank

Heading in the race of private banking industry HDFC bank considers HRD a vital element in attaining the strategic goals of the bank. The bank makes efforts to develop abilities and productivity of the staff.

To start with, the bank maintains a ***HR Department*** which is responsible for, regular review and development of human resource; periodic review of the work priorities to determine skill requirements needed to meet the bank's strategic plan; determination of an organizational structure that will facilitate and improve teamwork; and appointment and promotion of staff on merit and to ensure that the treatment of all employees is fair and equitable.

The bank adheres to its HR policy to deal with the people issues. The HR value framework incorporates four key principles being are communication, opportunity, innovation and individual.

A two way ***Communication System*** is maintained for the purposes of recognition, solving interpersonal conflicts, gathering feedback, and exchange of information can be achieved. ***Opportunity*** for improved work practices, supporting one another to achieve personal and career growth and engaging in self development is emphasized. The ***Innovation principle*** emphasizes encouraging initiatives. And finally the ***Individual principle*** focuses the acknowledgement of individual's contribution to the bank by recognizing their qualities, strengths and abilities and sharing these across the bank.

The ***training and development*** sub-system at HDFC is based on up gradation of competencies and skills. Besides the mandatory training that financial consultants have to undergo prior for attaining license, the bank has developed training modules that cover diverse areas like product knowledge, selling skills, objection handling skills etc. New training imparting includes Lead Management, Rural Housing and Cross Selling of financial products guidance. Also, training programs on Personal Effectiveness, Leadership Excellence and Art of Living are delivered by Guest Lecturers. (Chahal, 2013)

Besides, the bank follows a comprehensive ***performance management system***. Performance management forms the basis of the bank's Reward philosophy. Thus, the bank pursues the idea of higher rewards for higher levels of performance. The ***rewards*** arrangement plays a key role in attracting, retaining and further engaging employees.

Apart from rewards, this sub-system also allows for identification of training and development needs for employees. Employee development and growth is realized through an array of functional and behavioral programs conducted throughout the year as well as ***on-the-job training***. Further the bank lays emphasis in ***rotating key talent*** for professional development and growth and building a leadership pipeline for the future.

Along with the standard compensation the bank also has a well institutionalized ***recognition program*** called ***'Star Awards'*** to recognize the contribution of employees on an ongoing basis.

For encouraging **employee engagement**, the bank took a number of initiatives during the last year. The bank conducted comprehensive sports activities like ***Josh Unlimited*** a multi city multi discipline sports event held across 26 cities. ***Stepathlon***-a race around a virtual world which was a unique initiative creating an ecosystem that promotes corporate health, fitness and productivity. The voice hunt contest in association with Shankar Mahadevan Academy, Sensations- the bank's ***in- house musical band contest*** and the ***Corporate Photography Contest*** were some of the other prominent engagement initiatives. Also, last year the bank introduced the ***Corporate Online Library*** in partnership with ***India Reads.com*** which was done to help the employees update themselves and impel a culture of self learning. (HDFC Bank, 2015)

In all, it is apparent that the bank is making efforts to improve the productivity and performance of its human resource. The bank is on its way to implement different initiatives year by year in order to reap the benefits of HRD.

Conclusion

Banking being one of the major contributors to the growth of the service sector and its people being at its heart of customer management, HRD gained all the more importance in this area from the academia and industry.

Its echo in the Indian Banking Sector is quite evident in the efforts undertaken and initiatives being launched year by year by the major players of the industry, be it the public or private sector ones. The banks under study show that the concept of HRD has been able to make a place amongst the prominent strategic issues. However, the development of the system has not been equal in the banking industry. While some public sector banks like SBI and Bank of Baroda have developed a giant HRD set-up and are towards mastering the system, others are evolving in this area and the efforts at present are quite generalized and aren't much resounding to be put as separate HRD mechanisms. The private banking sector efforts to gain advantage of HRD have geared pace but still the top performers are not as good as the top performers of the public sector. However, it can be seen that the training and development sub-system is the one that has attracted a lot of attention. The performance and potential appraisal is also somewhat satisfactorily taken care of. Employee engagement is a sub-systems recently gaining popularity in the banking industry. The sub-systems like employee welfare, rewards, feedback etc are also fairly taken care of.

In all, be it elaborate or by simplistic measures the industry has taken a step towards HRD and is all prepared to use it for a dazzling lustrous future of the employees and the organization, in totality. What is needed is achieving a seamless HRD system extended to the entire sector unanimously.

References :

1. *Bank of Baroda,. (2015). Annual Report (pp. 93-97). Retrieved from http://www.bankofbaroda.co.in/download/Annual_Report_2014_15.pdf*
2. *Bankofbaroda.co.in,. (2015). HR Initiatives. Retrieved from http://www.bankofbaroda.co.in/hr_initiatives.aspHRInitiatives*
3. *Business Standard,. (2009). SBI launches fresh HR initiative. Retrieved from http://www.business-standard.com/article/finance/sbi-launches-fresh-hr-initiative-109090200055_1.html*
4. *Chahal, A. (2013). A study of training need analysis based training and development: Effect of training on performance by adopting development based strategy. International Journal of Business and Management Invention, 2(4), 41-51.*

5. Gilley, J., & Maycunich, A. (2000). Organizational Learning, Performance, and Change: An Introduction to Strategic Human Resource Development. Cambridge, MA: Perseus Publishing.

6. HDFC Bank,. (2015). Annual Report (pp. 28-29). Retrieved from http://www.hdfcbank.com/aboutus/cg/annual_reports.htm

7. ICICI Bank,. (2015). Annual Report (pp. 83-84). Retrieved from http://www.icicibank.com/managed-assets/docs/investor/annual-reports /2015/ICICI-Bank-Annual-report-FY2015.pdf.

8. Khandelwal, A. (2011). Dare to Lead: The Transformation of Bank of Baroda. New Delhi: SAGE India.

9. Kurian, V. (2015). New staff appraisal system in the works at SBI. Business Line. Retrieved from http://www.thehindubusinessline.com/money-and-banking/new-staff-appraisal-system-in-the-works-at-sbi/article6979003.ece

10. People Matters,. (2010). Grooming leaders for adaptive challenges - The ICICI way. Retrieved from https://www.peoplematters.in/article/2010/01/12/leadership/grooming-leaders-for-adaptive-challenges-the-icic-way/245

11. Sengupta, D., & Basu, S. (2012). Public sector banks, including Punjab National Bank, IDBI, SBI and Bank of India set out on a talent drive. The Economic Times. Retrieved from http://articles.economictimes.indiatimes.com/2012-0831/news/33521168_1_public-sector-banks-psbs-employee-engagement

12. State Bank of India,. (2015). Annual Report (pp. 56-60). Retrieved from http://www.sbi.co.in/portal/documents/41076/10365480/State+Bank+of+India+-+unabridged+Annual+Report+2014-15-English.pdf/abc0ab55-a749-4c95-ac67-baa8b9d86606

13. Srinivasa, L., & Chalam, G. (2014). Employee's perceptions and attitudes towards HRD climate (A study of selected branches of State Bank of India in Andhra Pradesh). International Journal of Trade and Commerce, 3(1), 17-29.

14. The Times of India,. (2010). SBI launches 'Udaan', p. 22. Retrieved from http://epaper.timesofindia.com/Repository/getFiles.asp?Style=OliveXLib:LowLevelEntiyToPrint_ASCENT&Type=text/html&Locale=english-skin-custom&Path

Nitrate Contamination In The Ground Water of Hindoli Block, Bundi District, Rajasthan, India

Dr. Vandana Ankodia
Lecturer, Govt. P.G. College, Bundi

shodhshree@gmail.com

Groundwater is the most indispensable and precious natural resources, expected to be free from pollution. There are many factor affecting the drinking water quality and cause of fresh as well as ground water pollution. Pollution of groundwater is an important aspect of environmental pollution with the fast industrialization and urbanization in the world[1,2]. The principle sources of contaminates of ground water are mines, petroleum processing units, smelter plants, pulp paper and agriculture industries etc.

Nitrogen, an element considered to be the most abundant in the atmosphere, composing nearly 80%[3] can be found in many forms, the major ones being N_2, N_2O, NO, NO_2, NH_3[4]. Nitrate is a part of the nitrogen cycles in nature and it represents the most oxidized chemical form of nitrogen found in the natural system. Nitrate are formed, when micro organisms break down fertilizers, decaying plants manures or other organic reside visually plants take up these nitrates. But some time rain or irrigation water can leach them into groundwater. Nitrate occurs naturally in water at law concentrations. Nitrates are also present as a result of human activities, such as the use of fertilizer, and manure or irrigated from field that can run off and seep Into wells. Nitrate contaminated water can also be due to improper management of form animal (i.e. cow) waste, leaky sewage pipes, and septic system failures.

Experimental

A survey was conducted in 33 villages during Jan, 2014 to 2015 in Bundi district, Rajasthan, for the analysis, Bundi district is divided into 41 Gram panchayat of Bundi District. Sample were collected from well, tube well, hand pump and other source present in this area. The ground water samples which collected from different sources analyzed as per standard procedures to know the chemical status of ground water.

Nitrate Concentration Analysis of Ground Water

S.No.	Source	Gram Panchayat	Total No of sample	NO_3
1	Handpump	Bud Gaon	2	98 - 110.00 Mg/L.
2	P.W.S.	Bud Gaon	2	105-120.00 Mg/L.
3	Well	Bud Gaon	1	118.00 Mg/L.
4	Other	Bud Gaon	4	100- 117.00 Mg/L.
5	Handpump	Karad Kheri	4	108-139.00 Mg/L.
6	P.W.S.	Karad Kheri	2	121-142.00 Mg/L.
7	Well	Karad Kheri	1	140.00 Mg/L.
8	Other	Karad Kheri	3	131-147.00 Mg/L.

Result and Discussion

The minimum permissible limit of nitrate in drinking water is 45 ppm according to ISI and WHO Investigations show nitrate level ranges from 98-147 Mg|L . Nitrate is a naturally occurring form of nitrogen found in sail. Nitrogen is essential to all life. The nitrate ion is the stable form of combined nitrogen for oxygenated systems, although chemically uncreative, it can be reduced by microbial action high concentrations of nitrates in drinking water posses a small but well recognized risk to bottle-fed babies. Nitrate has also been linked with human cancer.

Hemoglobin in blood contains iron normally found in the ferrous state. Excessive nitrate or nitrites can alter the iron in haemoglobin to the ferric state, forming Methemoglobin (an abnormal form of haemoglobin which cannot bind oxygen) Methemoglobioemia results in poor tissue oxygenation and anoxia. Methemoglobinemia also know as "blue baby syndrome."

The main source of this nitrate pollution is attributed to the excessive use of nitrogenous fertilizers, as these areas are mainly agricultural areas, Moreover, plants absorb nitrate fertilizer through roots, which is then transformed in to micro organism. The compensation of nitrate is in significant in the soil environment and hence nitrate percolates in to ground water, some remedial steps can reduce the risk of nitrate contamination wells should be located uphill and at least 100 feet away from septic tanks, leach field, animal confinement areas and fertilized areas and reverse osmosis, ion exchange and biological denitrification method can be used to reduce nitrate concentration.

Nitrogen fertilizers or manure used on a sandy soil are more vulnerable to leaching to groundwater then nitrogen used on a clay soil. Water moves rapidly through sandy or other coarse-textured soils. Nitrates move along with the water in s soil. Nitrogen loss to the groundwater from clay soils is smaller than these for the coarse-textured soils. The negative chare on the clay particles retains ammonium ions. Retention of ammonium ions on clay particles protects them (ammonium ions) from leaching. Nitrate ions are negatively charged and are not retained by clay particles. Clay soils do not specifically retain nitrates. Water movement through clay soils is very slow and small. Water does not pass easily through clay soils so nitrates, which only move with water, do not leach to ground water. pore space in clay soils is often filled with water. Water – filled pores of clay soils lack oxygen. Locking oxygen, a group of soil bacteria, valled facultative anaerobes, substitute nitrates for oxygen for respiration. When bacteria use nitrates as a substitute for oxygen, they convert nitrates to nitrogen gas through a process called denitrification. More Nitrates are lost by denitrification in clay soils in sandy soils. Nitrate losses through denitrification in clay soils reduce the amount of nitrates that can potentially leach to ground water.

References:

1. *Central ground water board (July,1999), High incidence of arsenic in ground water in west Bengal, "world health organization sale water and global Health." WHO int. 2008-06-25.*
2. *Yadav, R.N. and Rajdeep " Aluminum nitrate as defluoridating agent in drinking water soil pots (vessels of earth on ware)" NEERI.2011*
3. *Berner E. And Berner R. , The global water cycle (pp 102-119). New Jersey. Prentice Hall (1987).*
4. *Gaillard J.F. , Feb. 1 lecture on nitrogen cycle as referred in nitrogen pollution of ground water prepared by Lee Haller et al (1995).*
5. *T.L. Stanton, nitrate poisoning, 1.610 (1992)*
6. *Gupta S., Kumar P., study of nitrate in ground water of jhunjhunu district of Rajasthan. A causative agent of methemoglobinemia. Int. J. Chem.. Sci: 11(1), 231-236.(2013)*
7. *Srinivasa RY., Reddy TVk., and naidu P.T., Ground water quality in the Niva River basin, chittor district, Andhra Pradesh, India. Environ Geol (1) : 56-63 (1997).*
8. *Srinivasa RY. Reddy TVK., and Naidu PT., Ground water quality in the Niva River basin chittor, district, Andhra Pradesh India. Environ Geal (1) : 56-63 (1997).*
9. *P.N. Soltanpour, I. Broner and R.H Follett, Nitrogen and Irrigation Management, 0.514 (1999)*
10. *L. Fewtrell, D.Kay and A.Godfree, The Microbiological Quality of Private Water Supplies, J.Chartered. Inst Water Environ. Manag.,12,98-100 (1998)*
11. *J.R. Self and P.N. Soltanporu, Soil Sampling, 0.500(1997)*
12. *A.A.Avery, Infantile Methemoglobinemia: Reexamining the Role of Drinking Water Nitrates, Enviro. Health Perspect, 107, 583-586 (1999)*
13. *P.N. Soltanporu and W.L. Raley, Livestock Drinking Water Quality,4.908 (1993)*
14. *J.R. Self,Domestic Water Quality Criteria, 0.513(1998)*
15. *Kendall,P.,Drinking Water Quality. 9.307 (1992)*

Desining - A Lucrative Career

Dr. Sabra Qureshi
Assistant Professor, Maulana Azad University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Designing is a creative indemnity and as a career offers wide job opportunities. It requires creativity, innovation and strong sense to visualize. The fashion market in domestic and global sectors is growing at a tremendous pace. More youngsters are opting for Designing courses as it reaps rich rewards, both momentarily and creatively.

Fashion Designing

Clothes reflects status, establish person's identity, express moral principles and convey the activity in which a person is engaged. To create new garments and costumes in fashion industry, many people work in coordination at various posts such as designers, sketches, stylists, production coordinators etc.

Courses and scope in fashion industry can be distributed under various categories given under:

1. **Fashion Designing**
2. **Fashion Manufacturing**
3. **Fashion Promotion**
4. **Media and Fashion**
5. **Fashion Retailing**

Fashion Designing

S. No.	JOB TITLE	DUTIES
1.	Designers	Generating the idea for a product and developing a sketch of it, selecting fabric, colour and accessories and assisting production.
2.	Assistant Designers	Assist the designer Researching in market and textile areas for new ideas and developments.
3.	Sketcher (Stylist)	Presents his imagination on paper with colours and textures.
4.	CAD Designer	Using computer, generates designs.

Fashion Manufacturing

S. No.	JOB TITLE	DUTIES
1.	Pattern	Converts the Designers sketch into a board pattern and plans for the most feasible means of construction.
2.	Dress Maker	Constructs the garments for original model and makes suggestion for best and most economical method of production.
3.	Production Supervisor	Directs production, and machine operation, keep records of employee's speed and efficiency.
4.	Grader	Does grading of sizes and develops patterns of different sizes.
5.	Spreader	Folds layers of fabric for cutting pattern pieces.
6.	Marker	Plans layout of patter pieces on material.
7.	Cutter	Cuts the pieces marked for production either manually or by machine.
8.	Machine Operator	Sews garments quickly with high speed.
9.	Finisher	Stitches buttons and labels, presses and packages.
10.	Sampling Garments	To monitor quality, examines random samples.
11.	Quality controller	Checks quality in manufacturing and services.

Fashion Promotion and Media

S. No.	JOB TITLE	DUTIES
1.	Graphic Artist	Translates ideas into Visual presentation.
2.	Art Director	Coordinates, supervises and develops merchandise ideas for sales promotion.
3.	Copy Writer	Creates promotional messages. Creates scripts for audio-visual material for shows and other events .
4.	Script Writer	Creates scripts for audio-visual material for shows and other events.

Fashion Relating

	JOB TITLE	DUTIES
1.	Sales Person	Arranges and presents merchandise to customer.
2.	Stock Person	Transfer merchandise from warehouse to departmental stock area.
3.	Departmental Manager	Supervisors sales activity.
4.	Fashion buyer	Purchases assortment of merchandise from manufacturer.
5.	Fashion Coordinator	Coordinates fashion image in displays and advertising.
6.	Display Director	Creates window and interiors display to portray fashion image of stores.

Career in Textile Industry

Textile is an important field providing understanding of aspects of fabric production and ornamentation by various means. It is the conversion of fibers to yarn to fabric and finally to processing. Textile industry provides a large humber of job opportunities to the students possessing diploma or a degree in textiles. They can serve as designers, printers , fabric analyzers, supervisors, quality controllers, laundry managers etc.

Textile Designing

S. No.	JOB TITLE	DUTIES
1.	Designer	Creates design for fabric either for weaving or for printing.
2.	Production Coordinator	Coordinates the activities of designer and production.

Production Unit:

It mainly comprises of three departments (I) spinning section (II) weaving section (III) processing section. All the three sections work under the orders given by the management.

Textile Designing

S. No.	JOB TITLE	DUTIES
1.	Spinning supervisor	Raw material purchase supervises machine and employees.
2.	Weaving supervisor	Planning for production of fabric according to the design selected.
3.	Quality Control In charge	Ensures the quality of production at all the three stages.

Processing Unit :

It consists of finishing operation converting grey fabric to finished goods. It includes various chemical grey fabric finished goods. If includes various chemical and mechanical finishes and dyeing and printing.

Textile Exports:

Export business can be started by a manufacture or a merchant exporter. The business can be started as a small proprietorship firm.

Handloom Emporium:

Can be set up as a sales outlet for textile related product.

Laundry Manager:

Can join up with various launderettes as managers, in hotels, airlines, etc.

These are the career opportunities for students opting for various courses in textile and clothing faculty.

Suggested Activities:

- Put on a class fashion show. Students should fill as many of the roles described in the Career Options sections of the Fashion and Textile Design and the Journalism segments that would be needed to make a successful show and then report on the event. Students can also participate by blogging about both the preparation and execution stages of the show.
- Interview the fashion journalist or fashion editor from your local paper regarding recent trade shows they have attended. Ask them to walk you through

one of the shows and then write a journal article about the experience as if you actually attended as the fashion journalist assigned to cover the show.

- Use the Internet to research local weavers or other textile designers, some of whom may have their work on display at local museums or shops. Try to contact them and ask if they would speak in your class.
- To gain an understanding of a real-life fashion buyer's responsibilities, visit some local boutiques to find out how they: determine what their customers like, order their items for each season, how early must they make their selections for the next season, how they determine which supplier has the right products for their customers' tastes.

References:

1. *Hebrero, Miguel (2015). Fashion Buying and Merchandising: From mass-market to luxury retail. London: Createspace. p. 64. ISBN 978-1517632946.*
2. *"Fashion Designers". Occupational Outlook Handbook. U.S. Bureau of Labor Statistics. Retrieved 13 May 2012.*
3. *"Designers". umsl.edu.*
4. *http://indiatoday.intoday.in/bestcolleges/2015/ranks.jsp?ST=Fashion&LMT=4&Y=2015*
5. *"India's Best Fashion Colleges 2013". India Today. 2013.*
6. *http://www.outlookindia.com/article/top-10-other-professional-colleges-in-2015/294706*
7. *"Resources: fashion graduate programs". ITAA. Retrieved July 28, 2014.*

Social Security Through Micro Insurance: Need of The Hour

shodhshree@gmail.com

Devika Agarwal
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

With Government of India finally taking a concrete step towards Social Security cover for BPL group through Pradhanmantri Jeevan Suraksha Yojana and Pradhan Jeevan Bima Yojana the importance of Micro insurance as a tool for social welfare and security is being realized. This paper tries to study various aspects of Micro Insurance with respect to Social Security of the poor in rural and urban India.

Microinsurance and the MDGs

The Millennium Development Goals, established by the United Nations in 2000, provide more than 40 quantifiable indicators to assess the progress made toward global economic and social development by 2015. The MDGs serve as a development framework, helping to focus the attention of policymakers, donors and development practitioners on the most critical objectives.

Certain MDGs would be more achievable if insurance were widely available among low-income households, including the following targets:

- Halve the proportion of people whose income is less than one dollar per day
- Halve the proportion of people who suffer from hunger
- Ensure that children everywhere, boys and girls alike, will be able to complete a full course of primary schooling
- Eliminate gender disparity in primary and secondary education
- Reduce by two-thirds the under-five mortality rate Reduce by three-quarters the maternal mortality ratio
- Halt and begin to reverse the spread of HIV/AIDS
- Halt and begin to reverse the incidence of malaria and other major diseases

SOURCE; UNO

Microinsurance in India

The market for microinsurance is enormous and remain untapped. Microinsurance in India given the greater policy stimuli, commercial interests and growing track record of local successes. India's Microinsurance Industry is going for rapid growth in the coming days. The UNDP study estimates the potential market size for microinsurance in India to be between Rs62000 and Rs84000 million. The potential for life insurance is estimated to range from Rs15393 to 20141 million. The population used for this estimation is 40-50 percent of the potentially economically active and earning less than US$1 a day. This is about to grow as microinsurance is better understood and demand grows with appropriate supply.

Introducion

Low-income persons live in risky environments, vulnerable to numerous perils, including illness, accidental death and disability, loss of property due to theft or fire, agricultural losses, and disasters of both the natural and manmade varieties. The poor are more vulnerable to many of these risks than the rest of the population.

According to the Consultative Group to Assist the Poor (CGAP) working group on microinsurance appointed by Government of India defined the term as "*the protection of low income households against specific perils in exchange for premium payments proportionate to the likelihood and cost of the risk involved.*"

Micro-insurance is the '*protection of low-income people against specific perils in exchange for regular premium payments proportionate to the likelihood and cost of the risk involved*' (Churchill, 2006). The main difference between microinsurance and regular insurance is that the first is specifically targeted at low-income people, who have limited financial resources and often irregular income flows. Thus, the product design is adapted to these people's needs and financial capabilities.

Microinsurance is the key element in the development of the people bottom of the pyramid. The poor face more risks than the well-off, but more importantly they are more vulnerable to the same risk. Usually, the poor face two types of risks

– idiosyncratic (specific to the household) and covariate (common, eg., drought, epidemic, etc.). To combat these risks, the poor do pro-active risk management – grain storage, savings, asset accumulation (especially bullocks), loans from friends and relatives, etc. However, the prevalent forms of risk management (in kind savings, self-insurance, mutual insurance) which were appropriate earlier are no longer adequate. Microinsurance especially designed for low income households and it is a critical tool to eradicate the poverty. Risks are common to all individuals. when compare to the risks with the common individuals poor experience the risks frequently with greater financial impact.

There is one big issue in the insurers business. Why the current insurance business models are not reaching the poor? How to develop the new business models particularly for making the microinsurance available to the vulnerable group?

Insurers will have to overcome the obstacles in reaching the poor on a large scale. The following are the some of the major points which should be considered when planning or designing the product for economically deprived section of the society:

I. **New understanding of price-performance relationship**

II. **Combine advanced technologies with existing infrastructure**

III. **Scale of operation**: Since the basis of return on investment is volume of sales insurers will have to concentrate in generating more sales through product pricing, coverage of risk pool and the product should be affordable to the poor.

IV. **Requires different functionality:** Products and services for the under served market cannot just be same as that for high income group.

V. **Process innovation:** When designing a product for the microinsurance, it is necessary to adapt the process as well as the product, taking into account the limited resources available for the poor.

VI. **Significant investments in educating customers:** Microinsurers can reach the poor very easily when they educate what is insurance. How they can be benefited from insurance? And how insurance works?

VII. **Designed for hostile conditions:** The products and services designed for the bottom of the pyramid people must take into consideration theie life circumstances also.

VIII. **User-friendly interfaces:** Serving this market requires careful consideration to make it easy for poor households to use the service. Make it easy in simplification of claims documentation and access benefits while protecting insurers from fraud.

IX. **Distribution:** Collaborate with another organization that already has financial transactions with low-income households so the insurer can leverage existing infrastructure to reach the poor.

X. **Challenge the conventional wisdom:** There is a viable market out there if insurers are willing to learn about that market and develop new paradigms for serving it.

Micro insurance for Social Protection Social protection generally consists of policies and programmes designed to reduce poverty and vulnerability by promoting efficient labor markets, diminishing people's exposure to risks, enhancing their capacity to protect themselves against hazards and interruption/loss of income.

In social protection in order to reduce the poverty we are diminishing people's risk and improving their capacity to protect themselves. Social protection refers to the benefits that society provides for its members including:

- unemployment and disability benefits,
- universal healthcare,
- maternity benefits,
- old-age pensions,
- Protection for children and the disabled.

Social Protection and effects on the poor

- Social protection reduces the poverty through its positive impact.
- It helps people to cope with important risks and loss of income.
- Used as a critical tool in managing change in the economy.
- It will stabilize the economy by providing replacement income.
- Enhancing the principles such as solidarity, dignity and equality.

Microinsurance for Social Security According to the ILO (2000), social security is the protection which society provides for its members through a series of public measures:

- To compensate for the absence or substantial reduction of income from work resulting from various contingencies (notably sickness, maternity, employment

  injury, unemployment, invalidity, old age and death of the breadwinner),
- To provide people with healthcare,
- To provide benefits for families with children.

Problems, issues and challenges in microinsurance

- The contemporary insurance marketing practices are not geared to serve the poor – high costs, restrictive access and low transparency being the chief reasons.
- Lack of unfamiliarity and trust on the service providers on the part of poor is another problem to be overcome.
- The penetration of microinsurance to the low income groups has not been successful and its promotion by MFIs has not yet realized its full potential.

- When it comes to insuring the poorest, two important issues are referred to often – Whose benefit should microinsurance target? and Who should pay the premiums?
- Lack of awareness of microinsurance.
- Difficulties in understanding technology introduced by the service providers.
- Delivery systems are poor when growing demand is there for microinsurance.
- Irregular cash flows of households where they are unable to pay the premiums.
- Big challenge in educating the market and overcoming the bias on insurance.
- For illiterates it is very difficult to understand the terms and conditions of the insurance policy.

What best can be done

- Increasing the partnerships between MFIs, Government, and other societies to reach the under covered market.
- Government Sponsored schemes should not only be launched but reach the poor effectively.
- Community based programmes that pools funds for collective security should be encouraged
- Customer focused approach at the time of new product design.
- Educating the market in their local languages through media, information kiosks, social meetings etc.
- Designing the product that is operated in the particular microinsurance environment.
- Minimizing the documentations and developing efficient, transparent claims processing systems.
- Product should be affordable to the poor.
- Flexibility in premium.

References:

1. *Anil Mehta, "Diversifying financial services – a case for microinsurance", Microfinance India summit conference report, 2008.*
2. *Craig Churchill, "What is insurance for the poor?" International Labour Organization 2006, ISBN 978-92-2-119254-1 (ILO).*
3. *Chriseten, R.Peck Rhyne, Elisabeth and Vogel, Robert C (1994) "Maximizing the Outreach of Microenterprise Finance: The Emerging Lessons of Successful Programs," IMCC, Arlington, Virginia.*
4. *James Roth, Craig Churchill, Gabriele Ramm and Namerta, "Microinsurance and Microfinance Institutions: Evidence from India", CGAP Working Group on Microinsurance Good and Bad Practices, Case Study No. 15, September 2005.*
5. *Microinsurance Conference 2007, "Microinsurance a pillar of India's strong Economic growth", Munich Re Foundation, Press Release, 14 November 2007.*
6. *M.Vishwanathan, "Microfinance in the eradication of poverty", Organizational Management ,VOLXXIV No.1 April- June 2008.*
7. *Rajeev Ahuja and Basudeb Guha-Khasnobis, "Micro-Insurance in India: Trends and strategies for further extension." Indian council for research on International Economic Relations", June 2005.*
8. *R. Sairam, "LIC targets 40,000 micro insurance policies from southern districts this fiscal ", The Hindu Madurai, September 6, 2009.*
9. *Tarun Bajaj, "Diversifying financial services – a case for microinsurance", Microfinance India summit conference report, 2008.*
10. *Thankom Arun, Susan Steiner, "Micro- Insurance in the Context of Social Protection",Brooks World Poverty Institute Working Paper 55, Oct., 2008. ISBN 978-1-906518-54-7.*
11. *Y. V. Reddy, "Micro-Finance: Reserve Bank's Approach ", Speech, Sep 14, 2005.*
12. *CGAP (2006): Good Practice Guidelines for Funders of Microfinance, Microfinance Consensus Guidelines, 2nd edition, Washington D.C. Can be accessedat:*

    http://www.cgap.org/p/site/c/template.rc/1.9.2746/
13. *CGAP Working Group on Microinsurance; IAIS (2007): Issues in Regulation and Supervision of Microinsurance, Basel.*
14. *Llanto, G.; Portula, D.; Wiedmaier-Pfister, M.; Wipf, J. (2008): GTZ Microinsurance Innovations Project Philippines Appraisal Mission Report, GTZ.*
15. *Llanto, G.; Geron, M.P.; Almario, J. (2008): Making insurance markets work for the poor: Policy,*

regulation and supervision: Philippines case study, RIMANSI research document prepared for the CGAP Working Group on Microinsurance.

16. *Hammond, A. L. et al (2007): The Next 4 Billion, Market Size and Business Strategy at the Base of the Pyramid, IFC, World Resources Institute (ed.).*
17. *McCord, M.J.; Roth, J.; Liber, D. (2007): The Landscape of Microinsurance in the World's 100 Poorest Countries, Microinsurance Centre (ed.). Can be accessed at:*

    http://www.microfinancegateway.org/
18. *Sinha, S.; Sagar, S., (2008): Making insurance markets work for the poor: Policy, regulation and supervision: India case study, M-CRIL research document prepared for the CGAP Working Group on Microinsurance.*
19. *Tran, N.; Yun, T. S. (2004): Good and Bad Practises Case Studies No.3. – TYM's mutual assistance fund Vietnam, CGAP Working Group on Microinsurance (ed.). Can be accessed at:*

    http://www.microfinancegateway.org/
20. *World Bank (2001): Attacking Poverty - World Development Report 2000/2001, The World Bank, Oxford University Press, New York.*
21. *World Bank (2008): Finance for All, Policies and Pitfalls in Expanding Access, A World Bank Policy Research Report. The World Bank, Washington, D.C.*

Employability through Handicraft Mega Cluster

Bhawna Sharma
Research Scholar, Jainarian Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

India rich in architecture and cultural heritage is also native place of various craft based industries. That is why handicraft became second largest employment provider sector after agriculture. In the beginning of economic journey of the country, cultivators utilize their vacant time in order to create another activity .However handicraft originate through rural India. Indian handicraft have different shades of life, according to their geographical and availability of resources. Before the British ruling India was contributed 26% in world economy. Due to British emperor roving strategies they destroy agriculture and the whole craft industry .As the time of independence the preposition of Indian trade was negligible in world economy. All of us know the fact that no single country can survive without the help of international trade. Degree could be different but every country want to increase their presence in global market.

After the independence the Central Government began to make efforts towards restoring age old crafts such as handloom, handicrafts, khadi, coir and other village industries to their past glory. With the object of chalking out measurers for the revival of cottage industries, the Union Ministry organised an Industries Conference in 1947. The main attention of the Conference was the problems faced by the cottage and small scale industries including handicrafts. The problems identified were:-

1. Lack of finance;
2. Outdated techniques of manufacturing;
3. Defective marketing;
4. Non-availability of raw materials and
5. Competition from mechanised goods whether imported or locally made.

Improvement steps

1. All India Handicrafts Board :

The All India Handicrafts Board's main function is to advise the Government of India on problems relating to handicraft industries and suggest measures for their improvement and growth. The Board is expected to carry on intensive surveys of the existing handicraft co-operatives, diagnose their ailments and suggest measures for their treatment. Organising training programmes for artisans to update their skill is also included as one of its important functions. The Board started 220 centres in different parts of the country by the year 1978. The Board started imparting training to the craftsmen in the four major export oriented crafts of hand - knotted woollen crafts, art metal ware, hand printed textiles and wood ware. A total of 1.4 lakh persons have been trained in these crafts up to the year 1980.

2. Development Commissioner (Handicrafts):

In the year 1980, The All India Handicraft Board has constituted two sections viz: Development Commissioner (Handicrafts) and the other is Development Commissioner (Handloom). These two wings come under the control of Ministry of Textiles (Central Government. The Office of Development Commissioner Handicrafts (D C H) is currently the nodal agency for the implementation of all the Central Government schemes on handicrafts. D.C.H is expected to assist the Government in the formulation and implementation of policies aimed at the development of crafts in the country. Its other functions are to identify the new lesser known languishing handicrafts, to identify the problems related to crafts men, to participate in the market promotional events and to provide marketing assistance. It has been entrusted with promoting the marketing of handicrafts through different market developmental programmes like: craft bazaars, market meets and product promotion programmes. Supplying paper designs, arranging training programmes, arranging credit, assisting the artisans in forming co-operatives and attending the trade enquiries from exporters are the main aims of D.C.H. This office is also responsible for formulation and implementation of several schemes for the development of handicrafts at central level and also at state level through co-operatives and apex federation at each state. A close examination of these functions of D.C.H indicates that it is performing the very same functions as those of Handicrafts Board. But by splitting it into divisions such as handicrafts and handloom, greater specialisation is expected to be achieved

Office of the Development Commissioner (Handicrafts) INTRODUCTION The Office of the Development Commissioner (Handicrafts) is an attached office of Ministry of Textiles, Government of India. Its Headquarters are at New Delhi. It is a central nodal office to work for

a Socio-economic upliftment of the artisans and

b Supplement the efforts of the State Governments for promotion and development of handicrafts within the country and abroad.

It has 6 Regional Offices at New Delhi, Kolkata, Lucknow, Chennai, Mumbai and Guwahati, and 5 Regional Design & Technical Development Centres at New Delhi, Mumbai, Kolkata, Banglore and Guwahati. There are 52 Handicrafts Marketing and Service Extension Centers at various places of country. Besides Development Centre for Musical Instruments at Chennai, Bamboo & Cane Development Institute, at Agartala (Tirpura) and Twelve Carpet Weaving-cum-Service Centres at Allahabad, Anantnag, Barelly, Baramulla, Barmer, Bhopal, Dehradun, Jammu, Patna, Pulwama, Varanasi and Warrangal are under its control. The following Institutions are also working for the Development of Handicrafts in association with this office.

Indian Institute of Carpet Technology, Bhadohi (UP).

National Center for Design Product Development (Society), New Delhi and Moradabad.

Metal Handicrafts Service Center (Society), Moradabad. I T

Implementation

- Background Government of India, Ministry of Textiles, Office of the Development Commissioner for Handicrafts propose to take up Bareilly, Lucknow and Kuttch & its adjoining areas as Mega Handicrafts Clusters in U.P. & Gujarat under Comprehensive Handicrafts Cluster Development Scheme (CHCDS). The each Cluster will be developed with an upper Government of India's share of Rs. 33.00 crores in a time frame of 5 years. *The guiding principle underlying the design of clusters would be to create modern infrastructure and to integrate the production chain in a manner that caters requirement of the handicraft artisans in the Clusters. In brief, the main objective of setting up this cluster is to assist the stakeholders in availing the facilities set up with modern infrastructure, latest technology, and adequate training and Human Resource Development (HRD) inputs along with appropriate market linkages.

- The Scheme is to be implemented through project specific Special Purpose Vehicle (SPV).
- In order to ensure targeted, speedy and efficient implementation of the projects/scheme, the services of competent professional agencies are proposed to be engaged by Office of the Development Commissioner for Handicrafts, as Cluster Management and Technical Agency (CMTA).
- Expression of Interest (EoI) are invited for appointment of a Cluster Management & Technical Agency (CMTA) for development of Bareilly, Lucknow and Kuttch & its adjoining areas as Mega Handicrafts Cluster in U.P. & Gujarat.. The CMTA will be selected through two stages of competitive bidding process i.e

1. Technical Bid and the Financial Bid.
2. Scope of work
   - The Handicrafts artisans:

i Due to lack of education,

ii In-adequate working capital and lack of market facilities etc. Are unable to meet the requirements of the ever-changing market demands. Coupled with this are cost affecting factors like low level of technology, poor infrastructure facilities viz dye houses, common facility centre, quality control labs, electricity, water, roads, etc. To overcome these bottlenecks and to enable institutional development, it would be essential to federate prominent stakeholders to form a Public Private Partnership (PPP) module. Mega Handicraft Cluster will be taken up for their holistic development, for which comprehensive development plans would be drawn up and implemented on PPP mode. Bareilly, Lucknow and Kuttch Mega Handicrafts Clusters will cover more than 2.00 lakhs Handicrafts artisans.

- Nature and level of assistance to each of the said clusters will be need based and would include the components that are necessary for meeting the objectives, such as, Skill Training, Design, Innovation & Product Development, Trade Facility Centre, Market Promotion Technology Upgradation & Facility Centre, Tool Kit for Artisans, Raw Material Bank Technology up-gradation, Product Diversification, Raw Material Bank, Interest Subvention, innovative ideas, etc.
- The above list is only illustrative yet not restrictive. There will be flexibility to suit the local requirements. The Project Approval & Monitoring Committee (PAMC) will decide on merit the inclusion or otherwise of a component/s in the project cost on cluster to cluster basis. III. Role of Cluster Management and Technical Agency (CMTA).
- The nature of the proposed project warrants proactive technical and managerial assistance on "concept" to "commissioning" basis, for which a

Cluster Management & Technical Agency (CMTA), having proven capability in terms of technical, managerial, financial, infrastructure and capacity building expertise that are required to design and execute cluster oriented interventions

- CMTA will proactively work with the cluster stakeholders and the SPV in implementation of the interventions. The list of responsibilities of CMTA is given below:
- Conducting diagnostic study.
- Preparing Detailed Project Report (DPR).
- Sensitizing and mobilizing the stakeholders to be part of the proposed project.
- Establishment and structuring of the SPV.
- Assisting the SPV/s in formulation of the DPR of the specific projects.
- Assisting the Ministry/SPV in releasing /mobilizing funds for the project. Such mobilization would involve preparation of proposals under relevant schemes of the Government apart from tying up loans from the banks.
- Assisting the SPV in obtaining requisite statutory approvals/clearances.
- Assisting the SPV in identification and engagement of service providers/ consultants for various services related to specific Handicrafts technology, processing, designing, skill development, marketing, financing etc, for implementation/execution of the interventions outlined in the DPR.
- Appraising the individual project submitted by the SPV.
- Providing interfacing support and linkages between the SPV and various other stakeholders, particularly the Government organizations, buyers and financial institutions.
- Providing periodical progress reports to the Ministry of Textiles with respect to achievements of the stated outcomes.
- CMTA will have its continuous presence in the clusters by setting up offices in the cluster with dedicated professionally qualified suitable manpower
- Agency will deploy one dedicated professional with qualification.
- CMTA will not charge any fee from the SPV for providing any kind of support.
- **Technical criteria:** The broad requirements to become eligible for CMTA are as follows:
- Should have proven and demonstrable experience, expertise and resources in providing consultancy/supervisory services for holistic and integrated development of clusters.
- Should have experience of working and development of the textile sector, preferably in the handicrafts/handlooms segment(s).
- Should have experience of cluster development approach, preferably in the Handicrafts.
- Should have professionals with expertise in textiles, legal, company secretariat, project financing, infrastructure planning, capacity building, technology up-gradation, market development, institutional development, etc.
- Should have reasonable experience in areas relating to arrangement of finance management of clusters, interaction with the Central and State Governments, etc.
- Should have either pan India presence or strong presence in the Cluster State/Area.

Key components of thee mega cluster:

1 Bareilly is a major center of handicraft in India. Major crafts of the cluster are:

- Zari & Zardozi products
- Bamboo and Cane products (furniture and

craft)

- Terracotta (Pottery)

These clusters are carrying forward the age-old tradition and skill sets. They are also providing significant employment opportunities. It may be noted that the above crafts/products also contribute significantly towards overall handicraft of the country.

Zari and Zardozi

Major tools being used in the cluster are:

Adda (Wooden Frame): It is a wooden adjustable frame consisting of four wooden bars. The cloth on which the embroidery is supposed to be done is stitched on the two horizontal bars and stretched. It is then fixed tightly and locked on the other two vertically parallel bars. This prevents the cloth to move while working and also enables clear vision and faster movement of the tools.

Aari (Needle): Needle is the main tool in the Zardozi embroidery. It has a hook at the tip and wooden handle at the back

Major constraints observed are as follows:

- The workplace of the Zari artisans is not conducive to production. Improper light, insufficient working space, insufficient storage space for raw material and finished products are major constraints in production.
- Improper tools leading to low level of productivity, quality concerns and long-term health issues
- Design Inputs are not competitive in respect of global market as the artisans do not have access to the design development facilities.
- Low level of skill and awareness to move into higher level of value realization

Bamboo and Cane Craft

The artisans are using traditional tools. Some of the constraints are as follows:

- Even though some training is being provided through NGOs, there is no provision for technical intervention and formal training.
- The designs are very old and bulky
- Bamboo used is untreated and unseasoned.
- Very old hand tools are utilised
- Joints are not proper and using metal nails
- Finishing is very crude

Teracotta

The terracotta artisans make traditional products and sell locally. They lack awareness in terms of latest designs, Market trends etc. Other constraints are as follows:

- The baking / firing of the products are traditional as they do not have any furnaces for firing and glazing.
- Less exposure of the artisans in domestic and international market.
- Lack of product range

2. Lucknow is the destination of handmade work. Lucknow is the hub of Chikankari in India. The 400-year-old art of Chikan embroidery in its present form was developed on Lucknow and it is the only place to preserve this art to this day. It is mainly practiced in and around Lucknow. Chikankari is famous as 'shadow work' and is a very delicate and artistic hand embroidery done using white thread on fine white cotton cloth usually fine muslin or chiffons.

   About 2500 entrepreneurs are engaged in manufacturing the chikan for local, national and international market. Lucknow is the largest exporter of Chikan embroidery garments. The four kinds of chikan work in Lucknow are: katao, where minute patterns of different materials are sewn into the muslin; murri, where designs are embossed upon the muslin with the use of thread; phanda, a design made of thread in chain stitich; and ail kholna, in which individual threads are carefully removed from material and re-used in the same place to form design. As the ultimate proof of recognition, Geographical Indication Registry (GIR) accorded the Geographical Indication (GI) status for chikankari in December 2008, which recognised Lucknow as an exclusive hub of chikankari.

Some of the constraints observed in the cluster are as follows:

- The workplaces are not suitable for proper production due to lack of electricity supply, working space , storage capacity for raw material and finished products etc. Are the major constraints in clusters.
- No facility for the improved washing techniques and ironing including the chemicals used for the washing and dyeing. There is a requirement of a proper effluent treatment plant.
- Stitching of garments is an important step in the value chain. However, there is a lack of quality machines/Common Facility Centre so that export quality products can be produced.
- Common facilities such as dyeing are absence in certain pockets of the cluster
- Block is an important element in Chikankari. However, the block maker artisans use primitive tools mostly and are not exposed to advanced tools available elsewhere in the country.
- Due to improper working conditions, health related issues are also prominent and there is no awareness about the health & safety measures especially the eye which get deteriorated day by day.
- The artisans follow old and traditional means of production leading to low productivity and quality.
- There is lack of innovation in the Design & product development since there is no Design Centre or Designers to provide them support.
- Training of the young person's including women is the biggest challenge as due to wage difference most of the young person's do not want to adopt this as a profession.
- Marketing both national as well as international is major constraint since Chikankari is not sold as Brand.

3 Bhuj having a unique position.

Major crafts of Bhuj include

- Clay Relief Work:
- Kachchhi Embroidery
- Mirror Crafts Of Bhuj
- Ajrakh And Block Printing
- Tie-Dye (Bandhani Or Bandhej)
- Kutch Embroidery
- Artistic Weaving (Woolen Shawls)
- Rogan Painting
- Wood Carving
- Copper Coated Iron Bell
- Leather Work
- Laquerware

Major constraints observed are as follows:

- Improper tools leading to low level of productivity, quality concerns and long-term health issues
- Design Inputs are not competitive in respect of global market as the artisans do not have access to the design development facilities.
- Low level of skill and awareness to move into higher level of value realization
- Processing facilities not adequate
- Traditional tools are being used
- Health related issues for Rogan Painting, Tie & Die Copper coated Iron bell craft artisan

Future Policy:

Giving a shot in the arm to indigenously produced textile, the finance ministry announced they decided to set up seven textile mega-clusters in the country. Three of the seven will be set up in Uttar Pradesh, at Varanasi, Bareilly and Lucknow. A budget of Rs 500 crore has been set aside for setting up the mega clusters. The decision, widely welcomed by domain experts is set to boost the local handicraft comprising the Benarasi silk, Lakhnavi Chikankari and zardozi and Bareilly's indigenous kite string, which has one of the largest markets in the country.

Direct export of Chikankari products, for example, generates more than Rs 100 crore annually, while indirect revenue generation through Chikan sales breach the Rs 300 crore level. The production, however, faces a tough challenge from the Chinese machine-made embroidery, available at cheaper rates. Benarasi silk, won a Geographical Indication status some years ago but faces competition from its Gujarati counterpart-the Surat silk. Bareilly's manjha market also faces tough challenge from the much cheaper Chinese products available in plastic variants compared to the considerably expensive cotton manjha. Domain experts also link the choice of Varanasi, Bareilly and Lucknow as largesse to BJP ministers' attempts at constituency appeasement.

In addition to these textile clusters, the Centre has also, in the current fiscal, set aside Rs 50 cr to set up a Trade Facilitation Centre and a Craft Museum to develop and promote handloom products of Varanasi. Apart from the textile clusters in Varanasi, Bareilly and Lucknow, outfits will be set up in Surat, Kutch, Bhagalpur and Mysore too.

Conclusion

It is most embassies project of Government of India, Ministry of Textiles, and Office of the Development Commissioner for Handicrafts. Based on social upliftment of artisan's this provides them sustainable development. Handicraft is labour intensive industry, fortunately we have massive population group belongs to working age group .We should adopt these kind of project for the sake of employability, directly related to living of standards. All means of employment like local, national and international will be generated through particular craft base industry. Employment has various dimensions like raw material procurement, post and pre shipment, documentation and credit institutions. Rural and urban both equally get benefited from mega cluster project. Our country gets valuable foreign currency and shows its present in global market.

References:

1. *Ibid.*
2. *R.V. Rao, Small Industries and the Developing Economy in India, Concept Publishing, New Delhi, 1979, p. no. 98*
3. *Vasant Desai, A Study of Rural Economics, Himalaya Publishing House, New Delhi,1983, p. no. 532.*
4. *V.A. Pai Panandiker and Arun Sud, Rural Industrialisation, Oxford and IBH Publications Private Ltd., New Delhi, 1986, p. no. 20.*
5. *Dr. Vivek Ranjan Battacharya, New Strategy of Development in Village India, Metropolitan Book Co. Pvt Ltd, New Delhi, 1982, p. no.139.*

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name ....

Designation ....

Name of Organization ....

....

Address ....

....

District ....

State

....

Pin ....

Tel. No. (R) ....

Mobile ....

e-mail ....

Date (Signature)

Frequency : Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.

Mode of Payment : Subscription fee can be deposit through online Banking.

Bank Details : Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur
SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672,
MICR Code 302022005
Subscription Fees 1200 Rs

Membership No. .... Date ....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I...

hereby declared that the paper entitled'...

....'is unpublished original paper which is not sent any where

for publication.

This paper is prepared by me/jointly with...

....which is

exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the

Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature ....

Name ....

Designation ....

Official Address ....

....

Residential Address ....

....

....

Phone No. .... Pin No. ....

e-mail Address ....

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)
ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531
54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year (Rs. 1000/-)	☐ 2 years (Rs. 1800/-)	☐ 3 years (Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs............. through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution ....

....

Address...

.... Pin Code...............................

Phone/Mobile No. ....

E-mail ID ....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. ___________ Date ___________

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : **Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma** ,OBC Bank,
Adarsh Nagar, Jaipur
SB A/C NO.06722151002965
IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. A separate list of references should be given at the end of the paper. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
3. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
4. Maximum word limit of research paper up to 1500 words.

5 Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

6. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
7. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
8. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर